श्री

जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी म. विरचिताऽऽचारम
मञ्जूषाऽऽख्यया व्याख्यया समलङ्कृत हिन्दी गूर्जर भाषा सहित

श्री दशवैकालिकसूत्रम्

[द्वितीयो भाग, अध्य० ६–१०]

नियोजकौ

साहित्यरत्न सुबोध पण्डितप्रवर मुनिश्री समीरमल्लजी महाराज,
संस्कृतप्राकृतज्ञ प्रियव्याख्यानी प मुनिश्री कन्हैयालालजी महाराजश्च,

– प्रकाशयित्री –

राजकोटवास्तव्य मेम्बरपदभूषित श्रीयुत् संघवी पीताम्बरदास गुलाबचन्दमहोदय
वितीर्ण त्रिसहस्र (३०००) द्रव्यसाहाय्येन

श्रीश्वे. स्था. जैनशास्त्रोद्धार समितिः।
राजकोट–(सौराष्ट्र).

आवृत्ति प्रथमा
प्रति– १०००

वीर संवत् २४७५
विक्रम संवत् २००५
ईस्वी सन् १९४९

मूल्य रू. ७॥

प्रस्तावना.
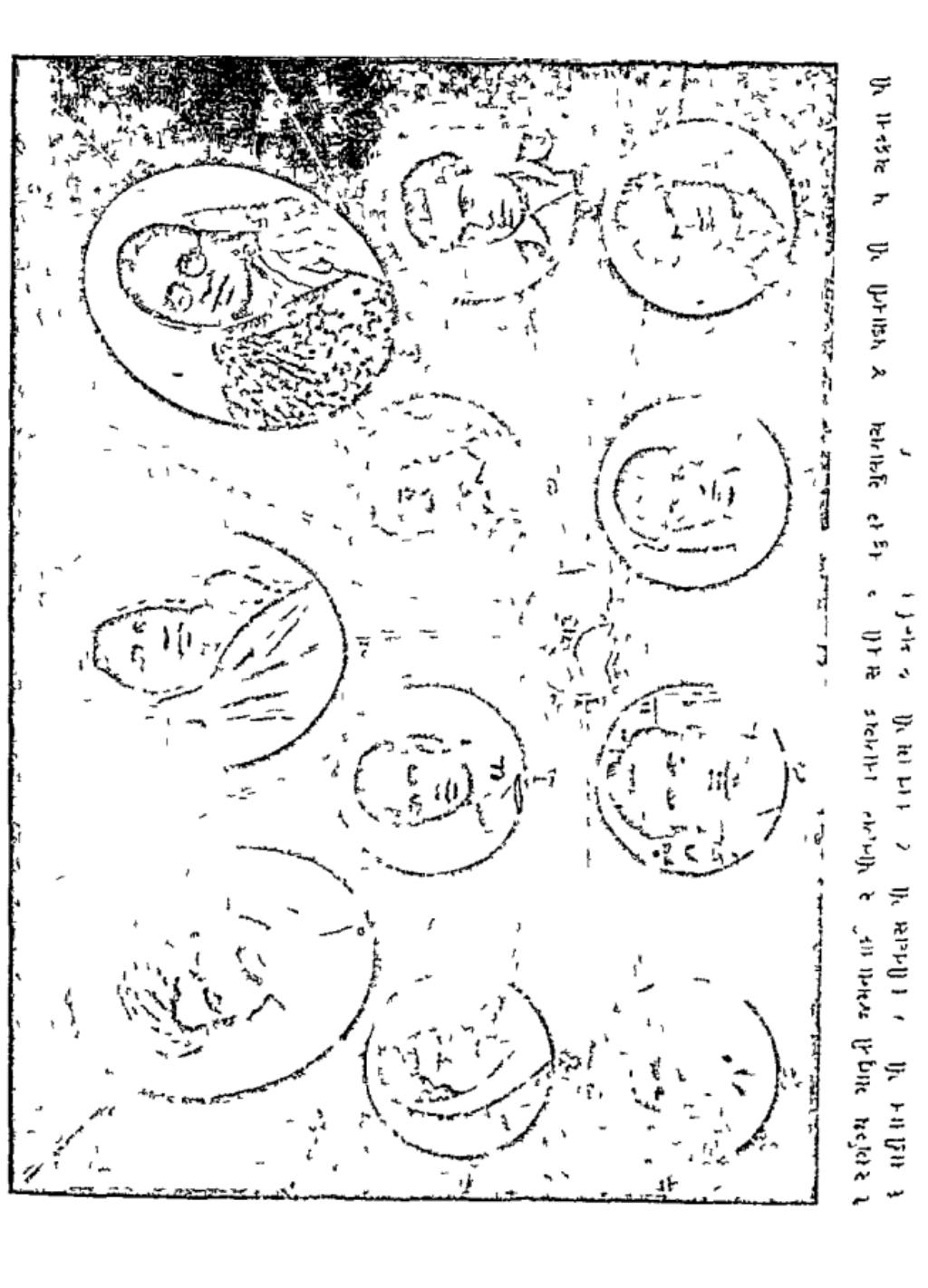
कपायलिप्त कर्मबन्ध से बन्धे हुए ससारी प्राणियों के हितार्थ जगत हितैषी भगवान् श्री वर्धमान स्वामीने श्रुतचारित्ररूप दो प्रकार का धर्म कहा है। इन दोनों धर्म की आराधना करने वाला मोक्षगति को प्राप्त कर सकता है इसलिये मुमुक्षु को दोनों धर्मों की आराधना अवश्य करनी चाहिये क्यो कि–"ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष" ज्ञान और क्रिया इन दोनों से मोक्ष होता है। यदि ज्ञान को ही विशेषता देकर क्रिया को गौण कर दिया जाय तो वीतराग कथित श्रुतचारित्र धर्म की आराधना अपूर्ण और अपग मानी जायगी, और अपूर्ण कार्य से मोक्ष प्राप्ति होना सर्वथा असभव है, एतदर्थ वीतराग प्रणीत सरल और सुबोध मार्ग में निश्चय और व्यवहार दोनों नयों को मानना ही आवश्यक है। कहा भी है–

"व्यवहार विना केचिद्–भ्रष्टा केवल निश्चयात्।
निश्चयेन विना केचित्, केवल व्यवहार त ॥१॥

द्वाभ्या दृग्भ्या विना न स्यात् सम्यग् द्रव्यावलोकनम्।
यथा तथा नयाभ्या चे,-त्युक्त स्याद्वादवादिभि ॥२॥

स्याद्वादके स्वरूप को निरूपण करने वाले भगवानने निश्चय और व्यवहार, इन दोनों नयों को यथास्थान आवश्यक माना है। जैसे दोनों नेत्रों के विना वस्तु का अवलोकन बराबर नहीं होता है वैसे ही दोनों नयों के विना धर्म का स्वरूप यथार्थ नहीं जाना जा सकता। और इसी कारण व्यवहार नय के विना केवल निश्चयवादी मोक्ष माग से पतित हो जाते हैं और कितनेक–व्यवहारवादी केवल व्यवहार को ही मानकर धर्म से च्युत हो जाते हैं।

आत्मा का ध्येय यही है कि सर्व कर्मसे मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करना परन्तु उसमें कर्मों से छुटकारा पानेके लिये व्यवहार रूप चारित्र क्रिया का आश्रय जरूर लेना पडता है, क्यों कि विना व्यवहार के कर्म क्षय की कार्यसिद्धि नहीं हो सकती। जो ज्ञान मात्रही को प्रधान मानकर व्यवहार क्रिया को उठाते हैं वे अपने जन्म को निष्फल करते हैं। जैसे पानी में पडा हुवा पुरुष तैरने का ज्ञान रखता हुवा भी अगर हाथ पैर हिलाने रूप क्रिया न करे तो वह अवश्य डूब ही जाता है, इसी प्रकार नाइट्रोजन और ओक्सीजन के मिश्रण विना विजली प्रगट नहीं होती उसी प्रकार ज्ञान के होते हुए भी क्रिया विना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, इसी लिए भगवानने इस दसवैकालिक सूत्र में मुनिको ज्ञान सहित अचार धर्म को पालन करनेका निरूपण किया है।

जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराज साहबनें **दसवैकालिक सूत्र की आचारमणिमञ्जुषा** नाम की टीका तैयार करके सर्व साधारण एव विद्वान् मुनियों के अध्ययन के लिये पूर्ण सरलता कर दी है, पूज्यश्री के द्वारा जैनागमों की लिखी हुई टीकाओं में **श्री दशवैकालिक सूत्रका** प्रथम स्थान है। इस के दश अध्ययन हैं—

(१) प्रथम अध्ययन में भगवानने धर्म का स्वरूप अहिंसा सयम और तप बतलाया है। इस की टीका में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति और शब्दार्थ तथा अहिंसा सयम और तप का विवेचन विशदरूपसे किया है। वायुकाय सयमके प्रसग में मुनि को सदा-रकमुखवस्त्रिका मुखपर बाधना चाहिये इस बात को भगवती सूत्र आदि अनेक शास्त्रों से तथा ग्रन्थों से सप्रमाण सिद्ध किया है। मुनि के लीए निरवद्य भिक्षा लेनेका विधान है। तथा भिक्षाके मधुकरी आदि छह भेदों का निरूपण किया है।

(२) दूसरे अध्ययन में सयम मार्ग में विचरते हुए नवदीक्षित का मन यदि सयम मार्ग से बहार निकल जाय तो उसको स्थिर करनेके लिये रथनेमि और राजीमती के सवाद का वर्णन है। एव त्यागी अत्यागी कौन है वह भी समझाया है।

(३) तीसरे अध्ययन में सयमी मुनि को बावन (५२) अनाचार्णोका निवारण बतलाया गया है, क्यों कि बावन अनाचीर्ण सयम के घातक हैं। इन अनाचीर्णों का त्याग करने के लिये आज्ञा निर्देश है।

(४) चौथे अध्ययन में—'जो बावन अनाचीर्णों का निवारण करता है वही छह काया का रक्षक हो सकता है' इसलिये छहकाय के स्वरूप का निरूपण तथा उनकी रक्षा का विवरण है। मुनि अयतना को त्यागे यतना को धारण कर यतना मार्ग वही जान सकता है जिसे जीव अजीव का ज्ञान है जो जीवादि का ज्ञाता है वह क्रम से मोक्ष को प्राप्त करता है पीछली अवस्था में भी चारित्र ग्रहण करनेवाला मोक्ष का अधिकारी हो सकता है।

(५) पाचवें अध्ययन में छहकाया का रक्षण निरवद्य भिक्षा ग्रहण से होता है, अत भिक्षा की विधि कही गई है।

(६) छठवें अध्ययनमें-'निरवद्य भिक्षा लेनसे अढारहस्थानोंका शास्त्रानुसार आराधन करता है, उन अढारस्थानों का वर्णन है। उनमें सत्य और व्यवहार भाषा बोलनी चाहिये'

(७) सातवें अध्ययन में 'अढारहस्थानो का आराधन करने वाले मुनिको कोनसी भाषा बोलनी चाहिये' इस के लिये ४ भाषाओं का स्वरूप कहा गया है। उन में सत्य और व्यवहार भाषा बोलना चाहिये।

(८) आठवे अध्ययन में–'निरवद्य भाषा बोलनेवाला पाच आचाररूप निधान को पाता है' अत उस आचाररूप निधान का वर्णन है।

(९) नववें अ'ययन में पाच आचार का पालन करने वाला ही विनयशील होता है' अत विनय के स्वरूप का निरूपण किया है।

(१०) दशवें अध्ययन में–'पहले कहे हुए नवों अ ययनों में कही हुई विधिका पालन करने वाला ही भिक्षु हो सकता है' इस लिए भिक्षु के स्वरूप का वर्णन किया है॥

निवेदक

समीर मुनि.

श्री दशवैकालिक सूत्रका सम्मति पत्र

॥ श्री वीर गौतमाय नम ॥

(सम्मति–पत्रम्.)

मए पंडियमुणि हेमचंदेणय पंडिय-मूलचन्द वासवारा पत्ता पंडिय-रयण मुणि घासीलालेण विरइया सक्कय हिंदी भासाहिं जुत्ता सिरि दसवेयालिय नाम सुत्तस्स आयारमणि मंजूसावित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाण अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ विउजणाण पायय जणाणय परमोवयारिया इमा-वित्ती दीसइ! आयार विसएवित्ती कत्तारेण अइसय पुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सुरूवं जे जहा तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेय विसयाण फुडरूवेण वण्णण कड, तहा मुणिणो अरहता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसयजुत्ता सिज्झइ! सक्कय छाया सुत्तपयाण पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णा सुणा इमावित्ती दट्ठव्वा। अम्हाण समाजे एरिसविज्ज–मुणिरयणाण सब्भावो समाजस्स अहोभग्ग अत्थि, किं? उत्तविज्ज मुणिरयणाण कारणाओ जो अम्हाण समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेर साहिच्च च लुत्तप्पायं अत्थि तेसिं पुणोविउद्धओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भविता पुणो निव्वाण पाविहिइ अओहं आयारमणि मंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि– ॥

वि स १९९० फाल्गुन शुक्लत्रयोदशी मङ्गले (अल्वर स्टेट)	इइ— उवज्झाय जइण-मुणी-आयारामो (पचनईओ)

શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર.

આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્ર સ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિ પત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ

મે તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજી એ પંડિત મૂલચંદ વ્યાસ (નાગોર મારવાડ વાળા) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની આચાર મણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુંદર બની છે તેમા પ્રત્યેક શબ્દનો અર્થ સારી રીતે વિશેષ ભાવ લઈને સમજાવવામા આવેલ છે

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે પરમ ઉપકાર કરવાવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો ઉલ્લેખ કરેલ છે જે આધુનિક મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપ ને નથી જાણતા, દયામા પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શુ વસ્તુ છે' તેનુ સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમા એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલ સૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદચ્છેદ સુબોધ દાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જીજ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઇએ વધારે શુ કહેવુ અમારી સમાજમા આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિ રત્નનુ હોવુ એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિ રત્નોના કારણે સુપ્તપ્રાય સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલુ સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે જેનાથી ભાવિતાત્મા મોક્ષ યોગ્ય બનશે અને નિર્વાણ પદને પામશે આ માટે અમો વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુક્લ તેરસ મંગળવાર (અલવર સ્ટેટ)	ઇઇ ઉવજ્ઝાય જઇણ મુણી આયારામો પંચનઇઓ

निरयावलिका सूत्रका सम्मति पत्र
आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र जैनाचार्य-पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुवा

सम्मति पत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाबचन्दजी पानाचंदजी । सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला ! निरयावलिका विषय पूज्यश्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होने से उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मति पत्र लिखदिया है आपको भेजरहे हैं ! कृपया एक कोपी निरयालिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ? !

भवदीय
गुजरमल-बलवंतराय जैन

॥ सम्मतिः ॥

(लेखक जैनमुनि प श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनी टीकया समलङ्कृतं हिन्दी गुर्जरभाषानुवादसहित च श्रीनिरयावलिका सूत्रं मेधाविनामल्पमेधसा चोपकारकं भविष्यतीति सुन्दं मेऽभिमतम्, संस्कृत टीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति। सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येक दुर्बोधपद व्याख्यायुतत्वाच टीकैषा संस्कृतसाधारणज्ञानवता मप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिमैमि। हिन्दी गुर्जरभाषानुवादावपि एतद् भाषाविज्ञाना महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि।

जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराजाना परिश्रमोऽयं प्रशसनीयो धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः। एवमेव श्री समीरमल्लजी– श्री कन्हैयालालजी मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौस्तः।

सुन्दर प्रस्तावना विषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्त. स्याचर्हि वरतर स्यात्। यतोऽस्यावश्यकता सर्वेऽप्यन्वेषक-विद्वासोऽनुभवन्ति।

पाठकाः सूत्रस्यास्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयाना परिश्रम सफलयिष्यन्तीत्याशास्महे। इति।

ગુજરાતી અનુવાદ

લુધીયાના, તા ૧૧ નવમ્બર ૧૯૪૮

શ્રીયુત ગુલાબચદ પાનાચદજી

સાદર જયજીનેન્દ્ર

આપનો પત્ર મલ્યો નિરયાવલિકા બાબતમા પૂજ્યશ્રીજીની તબીયત ઠીક ન હોવાને કારણે તેમના પડિત શિષ્ય શ્રી હેમચદ્રજી મ જે સમ્મપતિ પત્ર લખ્યુ છે જે આપને મોકલવામા આવે છે મહેરબાની ફરમાવશો

ભવદીય,

ગુજરમલ બલવન્તરાય જૈન

(સતમતિ પત્રનું ગુજરાતી અનુવાદ)

॥ સમ્મતિ ॥

(લેખક–જૈનમુનિ પ શ્રી હેમચદ્રજી મહારાજ)

આ નિરયાવલિકા સૂત્ર–સુન્દર બોધિની ટીકા જે હિન્દી–ગુજરાતી ભાષાનુવાદ સહીત છે તે વિદ્વાનો તેમજ સાધારણ બુદ્ધિના માણસોને માટે ઘણુ જ ઉપકારક છે એવી મારી દઢ માન્યતા છે

આની સસ્કૃત ટીકા સરલ, સુબોધ અને લલિત છે જેથી તેનું "સુન્દર બોધિની" એવું ગુણ નિષ્પન્ન નામ સર્વથા બરોબર છે

આ ટીકા સુસસ્કૃત-સુગમ અને પ્રત્યેક કઠિન પદોની સુચારૂ-સવિસ્તૃત-વ્યાખ્યા યુકત હોવાથી વિદ્વાનોને તો શું પણ સાધારણ સસ્કૃત જાણનાવાળા ઓનેપણ ઘણુ ઉપયોગી છે

હિન્દી ગુજરાતી ભાષાનો સરલ અનુવાદ પણ હિન્દી ગુજરાતી ભાષા બોલવાવાળાઓને માટે ઘણોજ લાભકારક થશે તેવી મારી નિશ્ચિત ધારણા છે

જૈનાચાર્ય–જૈન ધર્મદિવાકર પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો આ પરિશ્રમ પ્રશસા પાત્ર છે, તેમજ ધન્યવાદને પાત્ર છે એજ પ્રકારે નિયોજન કાર્યવાહક મુનિ શ્રેષ્ટ શ્રી સમિરમલ્લજી તથા શ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ પણ ધન્યવાદને પાત્ર છે

આની અદર સુન્દર પ્રસ્તાવના તેમજ વિષયાનુક્રમણિકા આપી છે તે પણ શ્રેષ્ટ છે આવાજ પ્રકારે જો શબ્દકોષ હોત તો વધારે ઠીક બનત આવા સસ્કૃત ટીકા આદિ રચનાત્મક કાર્યની સમાજમા ઘણીજ જરૂર છે આ વાતનો દરેક ગુણાનુરાગી વિદ્વાન અનુભવ કરે છે

વાચકગણ! આ સૂચના અધ્યયનથી તેમજ અધ્યાપનથી ટીકાકાર તેમજ નિયોજક મહાનુભાવેનો પરિશ્રમને સફળ કરશે એમ અમે આશા રાખીએ છીએ

श्री

નિવેદન

'વિશ્વમા જો પ્રગતિની ભાવના હોય તો જેમ બને તેમ સાહિત્ય ક્ષેત્રનો વિકાસ કરવો જોઈએ" આ પ્રકારનું મહાન પુરૂષોનું જે કહેવુ છે તે સત્ય છે, કારણ કે અમો પ્રત્યક્ષપણે અનુભવીએ છીએ કે જેણે જેણે પોતાનો વિકાસ કર્યો છે તે કેવલ સાહિત્ય પ્રગતિના કારણેજ કર્યો છે

પ્રાચીન કાળમા હસ્તલિખિત સાહિત્યજ વિશેષ ઉપયોગમા આવતુ હતુ સાધુ-સાધ્વી અને શ્રાવક-શ્રાવિકા હસ્તલિખિત શાસ્ત્રોજ પઢતા હતા અને પઢાવતા હતા તે વખતમા તેઓ પોતાના વિશિષ્ટ જ્ઞાનથી સ્વલ્પ અર્થને પણ વિશેષાર્થ રૂપથી સમજી અને સમજાવી શકતા હતા પરતુ આજ તે પરિસ્થિતિ રહી નથી ક્રમથી આધ્યાત્મિક જ્ઞાનવૃત્તિનું ભૌતિક જ્ઞાનસ્વરૂપમા પરિવર્તન થવાથી હવે તે આગમોની સ્પષ્ટ વ્યાખ્યા પ્રાપ્ત કરવા તરફ લોકવૃત્તિ વધી રહી છે જો વર્તમાન કાળને લક્ષમા લઇને લોકરૂચિ અનુસાર સાહિત્ય તૈયાર કરવામા ન આવે તો સાહિત્ય ભલે ગહન અગર માર્મિક હોય પરતુ સમજવામા મુશ્કેલ બનવાના કારણે તેની તરફ દુર્લક્ષજ રહે છે, અને તે કારણથીજ આપણે આપણા પ્રાચીન ગૌરવાન્વિત સાહિત્યને ભડારોમા, પટારાઓમા, પુસ્તકાલયોમા આદિ કેટલાએ સ્થાનોમા જેમના તેમ ઘણી શતાબ્દિયોથી તાળાઓમા બધ રહેવા દીધા, જેથી તે કીડી, ઉધઇ, ઉદરો તથા આતકિયો આદિથી નષ્ટ થઇ ગયા તેવા કેટલાક મૌલિક સાહિત્યનો વિનાશ થવાથી આપણને કેટલી ક્ષતિ થઇ તે મનનપૂર્વક વિચારવામા આવે તો આજ સુધીની આપણી સુષુપ્તિ અને બેદરકારી માટે આપણને અફસોસ અને ઘૃણા થયા વિના રહેશે નહિ

ભડારો આદિમા સાહિત્યની વિનષ્ટતા અને જનતાની સરલ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાની અભિલાષા દેખીને પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે બિકાનેરમા **શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્ર, શ્રી આવશ્યક સૂત્ર** આ બે સૂત્રો ઉપર સ્વતત્ર ટીકા તૈયાર કરી **વૃત્તબોધ** (છન્દગ્રન્થ) શ્રીલાલ નામમાલા (કોષ) જૈનાગમ તત્વ દીપિકા (હિન્દી) ઉપદેશશતક, સૂક્તિસગ્રહ, આદિ ગ્રથો તૈયાર કર્યા અને તે ગ્રથોને શ્રી ભેરૂદાનજી શેઠિઆજીએ છપાવી પ્રસિદ્ધ કરેલ છે તદુપરાત **નાનાર્થોદયસાગર** અને **શિવકોષ** એ બે ઘણા મોટા કોષ અપ્રકાશિત પડેલા છે

વિ સ ૧૯૮૭-૮૮ એ બને સાલ પૂજ્યશ્રીએ ઉદયપુર બિરાજીને શ્રી **ઉપાસકદશાગ સૂત્ર** ઉપર ટીકા તૈયાર કરી તેમજ **તત્વપ્રદીપ, લક્ષ્મીધર-**

ચરિત્ર પ્રાકૃત અને સંસ્કૃત ભાષામાં લખ્યા જે પ્રકાશિત થઇ ગએલ છે

જ્યારે પૂજ્ય મહારાજશ્રીનું ચોમાસું કરાચી હતું ત્યારે ત્યાના શ્રી સંઘે શ્રી ઉપાસકદશાંગ સૂત્ર છપાવીને પ્રકાશિત કર્યું તથા સમાજમાં સંસ્કૃત ટીકા સાથે આ પ્રથમ પ્રકાશન હોવાથી સર્વે વિદ્વાન મુનિયો અને ગૃહસ્થો આ પ્રકાશનથી ઘણાજ ખુશી થયા

ત્યાર બાદ વિ સં ૧૯૯૮ નું ચાતુર્માસ લીંમડી (પંચમહાલ) હતું ત્યારે ત્યાના શ્રી સંઘે શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનો પ્રથમ ભાગ (અધ્યયન ૧ થી ૫) પ્રકાશિત કરાવ્યો તે વખતે બીજા વિશ્વ યુદ્ધના કારણથી કાગળ, છપાઇ આદિની મોંઘવારી વધી જવાથી આગળનું પ્રકાશન કાર્ય બંધ રહ્યું

દામનગર નિવાસી શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ દામોદરભાઈની પ્રેરણા—

તે વખતે કાઠિઆવાડમાં વિદ્વદ્રત્ન પં મુનિશ્રી ગબ્બૂલાલજી મહારાજ વિચરતા હતા આપ જ્યારે દામનગર પધાર્યા અને શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરભાઇએ આપદ્વારા પૂજ્યશ્રીના વિશાળ જ્ઞાનની પ્રશંસા સાભળી તેમજ શ્રી ઉપાસક દશાંગ સૂત્ર તથા શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્ર પ્રથમ ભાગનું વાચન કરીને તેઓ ઘણાજ ખુશી થયા અને દામનગરથી શ્રી સંઘના આગેવાન શ્રી મોહનલાલ કેશવજીભાઇને તથા રતલામથી શેઠ સોમચંદ તુલશીદાસભાઇ, તેમજ ધર્મદાસ જૈન મિત્ર મંડળના સેક્રેટરી શ્રી લક્ષ્મીચંદજી મુણોતને ડેપ્યુટેશનરૂપે કાઠિયાવાડ પધારવાની વિનંતિ કરવા માટે પૂજ્યશ્રીની સેવામાં ઉદયપુર મોકલ્યા

તે ડેપ્યુટેશને ઉદયપુર જઇને પૂજ્યશ્રીને કાઠિયાવાડ પધારના અતિ આગ્રહ કર્યો અને અરજ કરી કે શેઠ દામોદરભાઇ શાસ્ત્રોના પૂર્ણ જ્ઞાતા છે તેઓ આપશ્રીને દામનગર શ્રી સંઘની તરફથી કાઠિયાવાડ પધારવાની વિનંતી કરે છે અને આપ દ્વારા જૈનાગમોનો સર્વત્ર પ્રચાર થાય એમ ઇચ્છે છે, આપનું તે બાજુ પદાર્પણ થવાથી જ્ઞાનનો ઘણો વિકાસ થશે જેથી જૈન જનતાને અપૂર્વ લાભ મળશે

આવા પ્રકારની અતિ આગ્રહભરી વિનંતી થવાથી પૂજ્યશ્રીએ ત્યાના જીવદયા આદિ મહત્વભર્યા કાર્યો છોડીને કાઠિયાવાડ તરફ વિહાર કર્યો

મેવાડથી મારવાડના રસ્તે થઈને બ્યાવર સોજત, પાલી, આબુ થઇ પાલણપુર પધાર્યા ત્યાના શ્રી સંઘે પૂજ્યશ્રીનું અપૂર્વ સ્વાગત કર્યું, અને પંદર દિવસ રોકીને વ્યાખ્યાનનો લાભ લીધો યુવક વર્ગને પૂજ્યશ્રીના વ્યાખ્યાનથી અપૂર્વ પ્રેરણા મળી, અને ચાતુર્માસ રોકાવાની આગ્રહભરી વિનંતી કરી આ અવસરે ત્યા દામનગરમાં શેઠ દામોદરભાઇના સ્વર્ગવાસ થયાના સમાચાર અચાનક પહોચ્યા જેથી પૂજ્યશ્રીનો વિચાર ત્યાથી પાછા ફરી જવાનો થયો તેવા સમાચાર દામનગર પહોચવાથી

ફરીથી શ્રી મોહનલાલ કેશવજી, શ્રી જગજીવન રતનસી બગડીઆ, શ્રી સોમચંદ તુલસીદાસ મેતા પૂજ્યશ્રી પાસે પહોચ્યા અને વિનતી કરી કે–આપ દામનગર પધારો જે કામ માટે આપને શેઠ સાહેબે વિનતી કરેલ છે તે શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય શેઠ સાહેબની પ્રેરણા પ્રાપ્ત સદ્ગૃહસ્થો દ્વારા ચાલશે

પાલણપુર શ્રી સંઘે પણ આવેલા ડેપ્યુટેશનને પૂજ્ય શ્રી પાલણપુર ચાતુર્માસ રોકાઇ જાય તેવી વિનતી કરી પરંતુ ડેપ્યુટેશને અત્યાગ્રહ કરીને પૂજ્યશ્રીને દામનગર તરફજ વિહાર કરાવ્યો

સં ૨૦૦૧ નું ચાતુર્માસ દામનગર થયુ તપસ્વી મદનલાલજી મહારાજ અને તપસ્વી માગીલાલ મહારાજ એ બંને તપસ્વી મુનિઓએ ૭૧–૭૧ દિવસની મહાન તપશ્ચર્યા કરી હજારો શ્રાવક શ્રાવિકા દર્શનાર્થે આવ્યા જેમનુ સ્વાગત દામનગર સ્થા શ્રી સંઘે અપૂર્વ ઉત્સાહથી કર્યું આવેલા દર્શનાર્થીઓને પૂજ્યશ્રી શા કારણથી અત્રે પધારેલ છે તેની વિગતવાર સમજણ પાડી શાસ્ત્રોદ્ધાર કાર્ય માટે જનતાની અભિરૂચિ દેખીને કાયકર્તાઓનો ઉત્સાહ ઘણો વધ્યો શ્રી પ્રભુલાલ કાનજી શ્રી વિનયચંદ દામોદરભાઇ શેઠ, શ્રી કેશવલાલ મોદી, શ્રી જગજીવન રતનશી બગડીઆ, શ્રી મોહનલાલ કેશવજી, શ્રી ગુલાબચંદ પાનાચંદ મહેતા રાજકોટ, શ્રી સોમચંદ તુલસીદાસ મહેતા રતલામ, શ્રી જીવણલાલ છગનલાલ સંઘવી અમદાવાદ આદિ સદ્ગૃહસ્થોએ શાસ્ત્રોદ્ધાર કાર્ય શરૂ કરાવવા માટે ઉદારતા પૂર્ણ શાસ્ત્રોદ્ધાર ફંડ એકઠુ કરવાનું કાર્ય ચાલુ કર્યું, અને શ્રી ગુલાબચંદભાઇ, શ્રી સોમચંદભાઇ, શ્રી કેશવલાલ મોદી, શ્રી જીવણલાલ સંઘવી શાસ્ત્રોદ્ધાર ફંડ માટે અમરેલી, બોટાદ, ચૂડા, વઢવાણ સીટી, થાન આદિ ગામોમા ગયા અને તે ગામોના સંઘોએ આ મહાન કાર્યમા પૂરો સહયોગ આપ્યો આ કાર્યના સર્વ કાર્યકર્તાઓ તેમજ શ્રી સંઘો કે જેમણે આ કાર્યમા પુરો સહકાર આપી અપૂર્વ સેવા બજાવી છે તે માટે તેઓ સર્વ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સૌરાષ્ટ્ર સ્થા સમાજમા શ્રી છબીલદાસ હરખચંદ કોઠારી પૂર્ણ ખ્યાતી પ્રાપ્ત ગૃહસ્થ છે, તેઓને સામાજીક કાર્યમા જ્યા જ્યા સેવા આપવાની જરૂરત જેવુ લાગે ત્યા ત્યા તેઓ તન-મન-ધનથી સેવા આપવા સર્વદા તૈયાર રહે છે અને જે કાર્યને તેઓ પોતાના હાથ પર લે છે તેને કોઇ વખત અપૂર્ણ રાખતા નથી અગર કાર્યનો ભંગ થવા દેતા નથી, એજ એમની વિશેષતા છે બોટાદ છાત્રાલયે આજસુધી જે પ્રગતિ કરી છે તેનો સઘળો યશ આપને ફાળેજ આવે છે

સ્થા સમાજ ઉપર જ્યારે જ્યારે અન્ય મતાવલંબિયોએ હુમલાત્મક પ્રવૃત્તિઓ ઉપાડી ત્યારે ત્યારે આપે સ્થા સમાજની જાહોજલાલી કાયમ રાખવા માટે સર્વદા અગ્રભાગ લીધો છે દામનગર પૂજ્યશ્રીના દર્શનાર્થે આપ તથા નાના

ભાઇ રંગીલદાસભાઇ આવ્યા અને શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યની રૂપરેખા જાણી ઘણાજ ખુશી થયા અને તેજ વખતે બન્ને ભાઇઓએ આ કાર્યનો ભાર ઉઠાવી લીધો

ભાવનગર શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ—

ચાતુર્માસ પૂર્ણ થતા ભાવનગર શ્રી સઘની અત્યાગ્રહ ભરી વિનતી થતા આપ ભાવનગર પધાર્યા આપના ઉપદેશથી તપસ્વી માણેકલાલજી મ ના ૨૧ ઉપવાસના પારણા ઉપર તા ૧૯ ૧૨ ૪૪ના રોજ ભાવનગરના કતલખાના તેમજ જહાંગીર મીલ તથા બજારો બધ રહ્યા, અને યશોનાથ મદિરમા શાન્તિ પ્રાર્થના થઇ, જે વખતે દશ હજાર જનતા એકઠી થઇ હતી ત્યાર બાદ શાસ્ત્રો દ્ધારના કાર્યને મજબુત બનાવવા માટે તા ૫-૧-૪૪ના દિવસે મિટીંગ ભરવાનુ આમત્રણ ભાવનગર સ્થા સઘની તરફથી આપવામા આવ્યુ કોઠારી બન્ને ભાઇ ઓએ અમદાવાદના પ્રખ્યાત કે જેઓએ પોતાના જીવનને પરોપકાર અને સેવા કાર્યમા અર્પણ કરેલ છે અને આજ સુધી અનેક સ્થાને પોતાની સપત્તિનો સદુપયોગ કરેલ છે તે મીલ માલેક શેઠ શાતિલાલ મગળદાસભાઇને મિટીંગના પ્રેસી-ડટ બનવા આગ્રહભરી વિનતી કરીને તેમની સ્વીકૃતી પણ મેળવી, અને તદનુસાર તે તારીખની મીટીંગ ભરાણી અને તે વખતે શ્રી શ્વે સ્થા શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની સ્થાપના કરી અને સમિતિના નિયમોપનિયમ તૈયાર કર્યા તેમજ કાર્યવાહક કમીટી બનાવવામા આવી આ પ્રકારે સમિતિની સ્થાપના હોવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય સારી રીતે સરલતાથી ચાલવા માડ્યુ

ભાવનગરથી પૂજ્ય શ્રી વિહાર કરીને ઉમરાલ દડવા વઇને બોટાદ પધાર્યા અને ત્યાના સ્થા સઘે વિનતી કરીને પૂજ્યશ્રીને થોડો વખત રોક્યા ત્યાથી સ્ટેશન પર પધારતા પડિતોને રહેવાની દરેક પ્રકારની સગવડતા શ્રી છબીલદાસ ભાઇ કોઠારીના બગલા ઉપર કરવામા આવી હતી ત્યાથી પૂજ્ય શ્રી રાણપુર અને ત્યાથી ચૂડા પધાર્યા ત્યા કવિવર પ શ્રી નાનચદજી મા સા બિરાજેલા હતા તેઓશ્રીએ શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને દેખીને ઘણી પ્રસન્નતા પ્રગટ કરી

ચૂડાથી લીંબડી જ્યારે પૂજ્યશ્રીનુ પધારવુ થયુ ત્યારે ત્યા પ મુનિશ્રી ધનજી મા તથા સદાનદી પ મુનિશ્રી છોટાલાલજી મા બિરાજેલ હતા તેઓશ્રી પણ શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય દેખીને ઘણાજ પ્રસન્ન થયા

લીમડી નિવાસી શિક્ષિકા શ્રી મોતી બહેન આદિએ શાસ્ત્રોદ્ધાર ફડ વધા રવા ભૂખ-તરસ-તડકો આદિ સહન કરીને પૂરો પરિશ્રમ ઉઠાવેલ હતો જેને માટે સમિતિ આભારપૂર્વક ધન્યવાદ આપે છે

જોરાવરનગર ચાતુર્માસ—

જોરાવરનગર શ્રી સંઘની આગ્રહભરી વિનંતી થવાથી સં ૨૦૦૨ નું ચાતુર્માસ જોરાવરનગર થયું લીંબડીથી વઢવાણ સીટી, સુરેન્દ્રનગર વિચરીને જોરાવરનગર ચાતુર્માસ માટે પધાર્યા બન્ને તપસ્વી મુનિયોએ ૭૩-૭૩ દિનની મોટી તપશ્ચર્યા કરી બહારના દર્શનાર્થીઓનો માનવસાગર ઉલટી પડયો જોરાવરનગર શ્રી સ્થા સંઘે ઘણા ઉત્સાહથી આવેલ વિરાટ માનવ સમુદાયનું ઘણાજ હર્ષથી સ્વાગત કરી ગૌરવ પ્રાપ્ત કર્યું આજ વખતે શ્રી જોરાવરનગર સંઘે શ્રી શ્વે સ્થા શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની કાર્યવાહક કમિટિને આમંત્રણ આપ્યું એટલે સમિતિની બીજી મહત્વની મિટીંગ શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઇના પ્રમુખપણે ભરાણી પ્રેસીડંટ સાહેબે શાસ્ત્રોદ્ધાર કાર્યમાં રૂા ૫૦૦૦) પાંચ હજારની સખાવત જાહેર કરી અને તેવીજ રીતે શ્રી કોઠારી સાહેબે તેમજ બીજાઓએ શાસ્ત્રોદ્ધાર ફંડને સમૃદ્ધ બનાવવા ખુબ પરિશ્રમ લીધો

શ્રી ચાપસી સુખલાલ, શ્રી હરખચંદભાઈ કારીયાણીવાળા, શ્રી ભાઇચંદ અમુલખ, શ્રી જયચંદભાઇ નાયકાવાળા, શ્રી નરોતમદાસ ઓઘડભાઇ આદિ જોરાવરનગર, શ્રી શેઠ મદનજી રતનજી, શ્રી જાદવજી મગનલાલભાઇ વકીલ સુરેન્દ્રનગર, શ્રી કસ્તુરચંદ ગાંધી, શ્રી સવાઇલાલ, શ્રી પાનાચંદ ગોબર આદિ વઢવાણના ગૃહસ્થોએ સમિતિની મિટીંગમાં પૂરો સહયોગ આપ્યો છે તેમજ જોરાવરનગર શ્રી સંઘે સમિતિની મિટીંગ માટે અનુકુળ વ્યવસ્થા કરી આપી જેને માટે અમો ઘણોજ આભાર માનીએ છીએ

વઢવાણનિવાસી નગરશેઠ જુઆભાઇ વેલસીના પરિવારવાળા શાહ મોતીબહેન પોપટલાલ, શેઠ શ્રી પ્રભાબ્હેન મોતીચંદ, શ્રી ઝવેરબહેન આદિએ વઢવાણ, સુરેન્દ્રનગર, જોરાવરનગરમાં શાસ્ત્રોદ્ધાર ફંડની વૃદ્ધિમાં અપૂર્વ પરિશ્રમ લઇ અમારા કાર્યમાં સહકાર આપ્યો તેથી સમિતિ તે બ્હેનોનો આભાર માને છે

જોરાવરનગરના ચાતુર્માસ પછી પૂજ્યશ્રી ગુલાબચંદજી મહારાજે લીંબડી પધારવા આદેશ મોકલ્યો જેથી પૂજ્ય મ સા લીંબડી પધાર્યા ત્યાં થોડા વખત બિરાજી સાયલા થઇ થાન પધાર્યા ત્યાં પં મુનિશ્રી કેશવલાલજી મહારાજ બિરાજતા હતા ત્યાં શેઠ ઠાકરશી કરસનજીભાઇ પુરાતત્વજ્ઞાની તેમજ શાસ્ત્રજ્ઞ છે તેઓશ્રીએ શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યમાં પૂરો સહયોગ આપ્યો

મોરબી સંઘની તરફથી તેર શ્રાવકોનું ડેપ્યુટેશન ચાતુર્માસની વિનંતી કરવા માટે આવ્યું અને તેમની વિનંતી સ્વીકારી ચાતુર્માસ મોરબી ઠરાવ્યું

થાનથી વાંકાનેર પધાર્યા વાંકાનેર શ્રી સંઘે અપૂર્વ સેવા કરી ત્યાંથી ચાતુર્માસ માટે મોરબી પધાર્યા

મોરબી ચાતુર્માસ—

સ ૨૦૦૩ નું ચાતુર્માસ મોરબી થયુ નગરશેઠ શ્રી વીકમચદ અમૃત લાલભાઇ તથા મહાત્મા પ્રાણજીવન ચુનીલાલ મહેતાએ શાસ્ત્રોદ્ધાર કાર્યમા પુરો સહયોગ આપ્યો મોરબી નરેશ શ્રી લખધીરસિંહજી બહાદુર પૂજ્યશ્રીના વ્યાખ્યાનમા પધાર્યા તેઓશ્રીએ શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યથી પ્રસન્ન થઇ સમિતિને બે હજાર રૂપીઆ આપ્યા તે ઉપરાત શ્રી મોરબી નરેશે તેમજ મોરબી સ્થા સઘે પડિતોને ૧૦૧-૧૦૧ રૂા ઇનામ આપ્યા ડા જયન્તિલાલ નરભેરામભાઇ પારેખે મોરબી મહારાજાને શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યમા સહકાર આપવા પ્રેરણા આપી તેમજ પોતાની તરફથી પડિતોને રૂા ૧૨૮) ઇનામ આપવાનો અપુર્વ લાભ ઉઠાવ્યો તે બદલ અમો સર્વના ઘણાજ આભારી છીએ

પૂ મહારાજ સા ના બન્ને તપસ્વી મુનિઓએ ૭૨-૭૨ ઉપવાસ કર્યા જેથી ધર્મનો ઉત્સાહ વધ્યો અને સઘમા પણ ઘણી મોટી મોટી તપશ્ચર્યાઓ થઇ ચાતુર્માસ તેમજ શાસ્ત્રોદ્ધાર કાર્યમા મોરબી સ્થા સઘે જે અપુર્વ ઉત્સાહ બતાવ્યો છે તેને માટે સમિતિ આદર ધન્યવાદ અર્પણ કરે છે

મોરબી ચાતુર્માસ વખતે રાજકોટથી કાકા હરગોવીંદ જેચદ કોઠારી પૂ શ્રીના દર્શન કરવા આવ્યા તેઓ શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય તેમજ પૂજ્ય શ્રી ની સરલતા, વિદ્વત્તા વિ દેખી ઘણા ખુશ થયા જેથી ચાતુર્માસ પછી રાજકોટ પધારવા માટે વિનતી કરી ચાતુર્માસ પૂર્ણ થતા રાજકોટ તરફ વિહાર કર્યો

ટકારા નેકનામ થઇને રાજકોટ પધાર્યા એક માસ વ્યાખ્યાનભુવનમા બિરાજ્યા વ્યાખ્યાનમા શ્રાવક-શ્રાવિકાઓની ઠઠ જામતી હતી આ અવસરે બન્ને તપસ્વી મુનિયોએ એક એક માસની તપશ્ચર્યા કરી હતી તેમજ પૂજ્ય મ સા સમીપે શ્રી હરગોવીન્દભાઈ અને તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ શ્રી રૂકમણીબેનના વરદ હસ્તે એક ભાઇની દીક્ષા ઘણીજ ધામધૂમથી જ્યુબિલી બાગમા હજારો જનતા વચ્ચે થઇ હતી તે પ્રસગે સર્વેએ ચાતુર્માસ બિરાજવા અત્યાગ્રહ કર્યો

આ અવસરે વ્યાખ્યાનભુવનમા શ્રી ગુલાબચદ પાનાચદ મહેતાના પ્રમુખ પદે શ્રી શ્વે સ્થા શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની ત્રીજી મેનેજીગ મિટીંગ મળી હતી

રાજકોટમા પદાર્પણ

રાજકોટથી શેષકાળ માટે જામનગર પધાર્યા ત્યા પણ શ્રી સઘમા અપૂર્વ ઉત્સાહ રહ્યો સઘના આગેવાનોએ પૂર્ણ અનુરાગથી ધર્મસેવા બજાવી

રાજકોટથી ચાતુર્માસની વિનતી માટે ડેપ્યુટેશન આવ્યુ જેથી સ ૨૦૦૪ નું ચાતુર્માસ રાજકોટ મજુર કર્યું ત્યાથી ખિજડીઆ, જોડીઆ, ધ્રોળ થઇ ચાતુર્માસ માટે રાજકોટ પધાર્યા પ્રથમ ચાતુર્માસ વ્યાખ્યાનભુવનમા અને બીજુ

અને ત્રીજુ ચાતુર્માસ જૈન પોષધશાળામા વિરાજ્યા બીજા ચાતુર્માસમા શ્રી હરગોવીન્દ જયચદભાઇના સ્નેહવશે સીટી અને સદરના કતલખાના સ્વઇચ્છાથી ખાટકીઓ તપસ્વીજી મ ની તપશ્ચર્યાના પારણા પ્રસગે બધ રાખીને રાજકોટમા ક્યારે પણ નહીં થએલ આવો અપૂર્વ પ્રસગ રજુ કર્યો હતો

આજસુધી શાસ્ત્રોદ્ધાર ફડમા તેમજ કાર્યમા શ્રી દુર્લભજી શામજીભાઇ વિરાણી, શ્રી ગુલાબચદ પાનાચદ મહેતા, શ્રી મોહનલાલ કપુરચદ મહેતા, શ્રી પ્રભુદાસ મુળજી દોશી શ્રી કહાનદાસભાઇ-શ્રી વેણીભાઇ જીવરાજ કોઠારી તારાચદ પોપટભાઇ કામદાર, શ્રી હરગોવીંદ જેચદ કોઠારી શ્રી પિતામ્બરદાસ ગુલાબચદ સઘવી આદિ સદ્‌ગૃહસ્થો તન-મન-ધનથી પુર્ણ સેવા કરી રહેલ છે તેને માટે સમિતિ તેઓશ્રીનો આભાર માને છે

ગઈ સાલ શ્રી શ્વે સ્થા શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની ચોથી મિટીંગ શ્રી છબીલદાસ હરખચદભાઇ કોઠારીએ બોટાદમા શેઠ શાતિલાલ મગળદાસના પ્રમુખપદે બોલાવી અને શાસ્ત્ર છપાવવાની વ્યવસ્થા કરવામા આવી

ચાલુ સાલ શેઠ શાતિલાલ મગળદાસ ભાઇએ પોતાને ત્યા સમિતિની પાચમી મીટીગને આમત્રણ આપ્યુ જેથી અમદાવાદમા ફાગણ મહિનામા મીટીગ થઇ તે સમયે શેઠ સાહેબે રૂા ૧૦ હજાર બીજા આપ્યા અને કહ્યુ કે આ મહાન કાર્યને બરોબર ચલાવવાનુ છે પૈસા આદિની બધી વ્યવસ્થા ધર્મ પ્રતાપથી બનતી રહેશે આવા પ્રકારના આશ્વાસનથી સમિતિના મેમ્બરોમા ખૂબ ઉત્સાહ વધ્યો જેથી તેજ વખતે શ્રી કોઠારીજીએ રૂા ૫) હજાર, શ્રી હરગોવીન્દ ડાગાએ પહેલાની રકમ સાથે સાડા પાચ હજાર, શ્રી ન્યાલચદ લહેરચદભાઇએ બે હજાર, શેઠ આત્મારામ માણેકચદભાઇએ એક હજાર તથા સોમચદ નેણસી મેતા આદિ મેમ્બરોએ તેજ વખતે રૂા ૨૫ હજારનુ ફડ એકઠુ કર્યુ આ પ્રકારે અમદાવાદ, સાબરમતી, ગિરધરનગર આદિના સદ્‌ગૃહસ્થોની મદદથી રૂા ૩૦ હજારનુ ફડ થયુ જેથી અમારૂ આ કાર્યમા ખૂબ સાહસ વધ્યુ

આ મિટીંગમા પ્રેસીડેન્ટ સાહેબની ઉદારતાથી તેમજ સ્થા જૈનના તત્રી શ્રી જીવણલાલ છગનલાલ સઘવી, શ્રી પ્રેમચદ માણેકચદભાઇ, શ્રી ભૂરાલાલભાઇની કોશીષથી સમિતિને ખૂબ મદદ મળી જેથી સમિતિ એ સૌનો હૃદયથી આભાર માને છે

વાર્શીનિવાસી શ્રી ધારસીભાઇએ આ કાર્યમા રૂા ૫૦૦૦) ની સહાયતા આપી તેઓશ્રી આજીવન પેટ્રન બન્યા છે તે માટે સમિતિ તેઓશ્રીનો આભાર માને છે અને બીજા ભાઇઓને વિનતી કરે છે કે આવીજ રીતે આપ પણ પેટ્રન બની સહકાર આપશો

આ ઉપરાંત આજ સુધી પૂજ્ય શ્રી જ્યા જ્યા પધાર્યા ત્યા ત્યાના સઘે શાસ્ત્રોદ્ધાર ફડમા તેમજ પડિનોની વ્યવસ્થામા જે જે મદદ કરી છે તેને માટે તેમજ વ્યક્તિગત જે જે શ્રાવક શ્રાવિકાએ લાભ ઉઠાવ્યો છે તેમનો સમિતિ હાર્દિક આભાર માને છે

ભવિષ્યમા પણ આ પ્રકારે આ મહાન કાર્યમા પ્રત્યેક સઘ શ્રાવક શ્રાવિકાને અમારૂ નિવેદન છે કે આપ આ શાસ્ત્રોદ્ધારના પવિત્ર કાર્યમા તન-મન-ધનથી મદદ આપી અમારો ઉત્સાહ વધારતા રહેશો અમારી ઇચ્છા છે જેમ બને તેમ આ કાર્ય પૂર્ણ થતા સુધી ચલાવી સ્થા સમાજની સાહિત્યની ઉણપને પુરી કરી

અમોએ આજ સુધી જે પ્રગતિ કરી છે તે સર્વ આપની પવિત્ર લાગણી અને ઉદારતાનુ શુભ પરિણામ છે

આ ભગીરથ કાર્યને પૂર્ણ કરવામા અમો આપનો સપૂર્ણ સહકાર ઇચ્છીએ છીએ માટે સ્થા સમાજના ઉદાર સદ્ગૃહસ્થોને તથા પ્રત્યેક ગામના સઘને અમારી વિનતી છે કે અગાર આ શાસ્ત્રોદ્ધાર ફડમા પોત પોતાની સહાયતા આપી આ ધર્મોદ્ધારક કાર્યમા પૂર્ણ સાથ આપશો

ચાલુ વર્ષે વીરમગામમા પ મુનિશ્રી કનૈયાલાલજી મ સા ર નુ ચાતુર્માસ હોવાથી ત્યાનો સઘ આ કાર્યમા સારો ઉત્સાહ બતાવી રહેલ છે તે બદલ ધન્યવાદ

આ મહાન કાર્ય કરવામા જૈનાચાર્ય જૈનધર્મદિવાકર પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ સા જે પ્રકારે મહેનત લઇ રહેલ છે તે પ્રશસનીય તેમજ આદરણીય છે આ કાર્યને જ્યારથી શરૂ કરવામા આવેલ છે ત્યારથી આહારપાણી કરવાનો સમય તેમજ અન્ય કાર્યોની જરાપણ પરવાહ કર્યા વિના આજસુધી ૫૬૨ સૂત્રોની ટીકા આપે તૈયાર કરી છે તેને માટે સારી સ્થા સમાજ આપની પૂર્ણ આભારી છે

આ કાર્યમા જોડાયેલો વિદ્વાન વર્ગ પણ પૂર્ણ મહેનત લઇ રહેલ છે અમો તેઓની મહેનતને આદરની દૃષ્ટિથી દેખીએ છીએ તેમજ આભાર માનીએ છીએ

સસ્કૃત ટીકા યુક્ત આગમ પ્રકાશન આ સમિતિ દ્વારાજ થઇ રહ્યુ છે તેથી અમો અતમા ફરીથી એકવાર આપને આ પવિત્ર કાર્યમા સહકાર આપવાની વિનતિ કરીએ છીએ, આપના સહકારથી અમોને આ કાર્યમા અધિક વેગ મળશે

નિવેદક,

શ્રી શ્વે સ્થા શા સમિતિ – રાજકોટ

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य श्री घासीलालव्रति विरचितया
आचारमणिमञ्जूषाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतम्

श्री दशवैकालिकसूत्रम्

अथ-षष्ठाध्ययनम् ।

पञ्चमाध्ययने निरवद्यभक्तपानाद्युपादानविधिर्दर्शितः, तादृशं भक्तपानादिकं च शुद्धाचारवद्भिरेवोपादीयतेऽतोऽस्मिन् महाचारकथाभिधाने षष्ठाध्ययनेऽष्टादशस्थानाश्रिताचारविधिरभिधीयते, तत्र महाचारकथामवसातुमुत्कण्ठिता राजादयः

हिन्दी भाषानुवाद ।

अब छठा अध्ययन कहते हैं।

पाचवे अध्ययनमें निरवद्य भक्तपानकी विधि बताई है। निरवद्य भक्तपान शुद्ध आचारवान मुनि ही ग्रहण करते हैं। इसलिए महाचारकथा नामक छठे अध्ययनमें अठारह स्थानोंमें आश्रित आचारकी विधि बताते हैं। महाचारकथाके जिज्ञासु राजा

ગુજરાતી ભાષાનુવાદ.

અધ્યયન છઠ્ઠું

પાંચમા અધ્યયનમાં નિરવદ્ય ભક્તપાનની વિધિ બતાવી છે નિરવદ્ય ભક્તપાન શુદ્ધ આચારવાન્ મુનિ જ ગ્રહણ કરે છે તેથી મહાચારકથા નામક છઠ્ઠા અધ્યયનમાં અઢાર સ્થાનોમાં આશ્રિત આચારની વિધિ બતાવે છે મહાચારકથાના

कदाचित् स्वभाग्येयवशान्नगरमान्तोद्यानमागतं गणिनमाकर्ण्य तदन्तिकमुपस्थिता. सा गुसमुचिताचार पृच्छन्तीत्याह—

यद्वा–भिक्षाचर्यागतेन स्वाचार पृष्टेन केनचित् साधुना ' अदूर एवोद्याने गुरवो मे विराजन्ते त एव सविस्तर कथयिष्यन्ती'तिमतिल्लोत्तरा राजादयस्तत्रागत्य तमाचार्यमाचार पृच्छन्तीत्याह—

(मूलम्)

नाणदंसणसंपन्न, संजमे य तवे रय ।
गणिमागमसंपन्न, उज्जाणंमि समोसढ ॥१॥
रायाणो रायमच्चा य, माहणा अदुव खत्तिया ।
पुच्छंति निहुअप्पाणो, कह भे आयारगोयरो ॥२॥

महाराजा या अन्य प्रधान भव्य प्राणी सुनें कि–सौभाग्यसे नगर प्रान्त अथवा उद्यानमें आचार्य महाराज पधारे हैं और यदि वह उनके समीप पहुच कर साधुओं के आचारके विषयमें पूछें, अथवा कोई मुनि गोचरी के लिए गये हों और कोई उनसे उनका आचार पूछे तो मुनि उत्तर दे कि–यहांसे पास ही उद्यानमें मेरे धर्माचार्य विराजमान हैं वेही विस्तारसे समझावेंगे। मुनिका कथन सुनकर राजा आदि आचार्य महाराजके समीप जावें और उनसे मुनियोंका आचार पूछें। यही विषय आगे कहा जाता है।

જિજ્ઞાસુ રાજા મહારાજા યા અન્ય પ્રધાન ભવ્ય પ્રાણીઓ સાભળે કે – સુભાગ્યે નગરપ્રાન્ત અથવા ઉદ્યાનમા આચાર્ય મહારાજ પધાર્યા છે, અને તેઓ તેમની સમીપે પહોચીને તે સાધુઓના આચાર વિષે પૂછે,

અથવા કોઇ મુનિ ગોચરીને માટે ગયો હોય અને કોઇ એને એના આચાર પૂછે, તો મુનિ ઉત્તર આપે કે – અહીંથી નજીકમા જ ઉદ્યાનમા મારા ધર્માચાર્ય વિરાજમાન છે તેજ વિસ્તારથી સમજાવશે મુનિનું કથન સાભળીને રાજા આદિ આચાર્ય મહારાજની સમીપે જાય, અને તેમને મુનિઓનો આચાર પૂછે એ વિષય આગળ કહેવામા આવે છે

(छाया)

ज्ञानदर्शनसंपन्नं, संयमे च तपसि रतम् ।
गणिनमागमसंपन्नम्, उद्याने समवसृतम् ॥१॥
राजानो राजामात्याश्च, ब्राह्मणा अथवा क्षत्रिया. ।
पृच्छन्ति निभृतात्मानः, कथं भवताम् आचारगोचरम् ॥२॥

(टीका)

'नाणदसण' इत्यादि— ,

उद्याने=नगरान्तिकवर्तिनि पुष्पफलसमृद्धतरुराजिविराजिते आराम-विशेषे समवसृतं=समागतं ज्ञानदर्शनसपन्नं=ज्ञानं च दर्शनं चेति ज्ञानदर्शने ताभ्या सपन्न युक्तं, तत्र ज्ञानं=स्वपरस्वरूपपरिच्छेदकं मतिश्रुतादिकं, दर्शनं=दर्शनमोहनीयक्षयादिप्रादुर्भूतं जीवादिनवतत्त्वस्वरूपश्रद्धानात्मकम् । यद्यपि सम्यग्दर्शनादेव सम्यग्ज्ञान भवति, तथापि संव्यवहारनयापेक्षया ज्ञानस्यैव प्राधान्यादादौ प्रयोगः। संयमे=सप्तदशविधे, तपसि=द्वादशभेदे च रत=तत्परम्, आगमसपन्नम्=आगमः=आ=सम्यग्ज्ञानादित्रयमोक्षमार्गरूपा मर्यादा गम्यते=ज्ञायते येन स. आचाराद्यङ्गोपाङ्गलक्षणस्तेन संपन्नं=तद्विषयकज्ञानवन्तं, गणिन=गण.=साधुसमु-

'नाणदसण' इत्यादि।

फूलों फलोंसे समृद्ध, तरुओंकी श्रेणीसे शोभित उद्यानमें पधारे हुए स्वपर-स्वरूपको जाननेवाले मतिश्रुत आदि ज्ञान तथा दर्शनमोहनीयके क्षय क्षयोपशम अथवा उपशमसे उत्पन्न होनेवाले नव तत्त्वोंकी श्रद्धारूप दर्शनसे सम्पन्न, सत्तरह प्रकारके संयम, और बारह प्रकारके तपमें तत्पर, रत्नत्रयकी मर्यादाका बोध करानेवाले आचाराङ्ग आदि अङ्ग तथा उपाङ्गोंके ज्ञाता, छत्तीस गुणधारी आचार्य महाराज के पास चक्रवर्ती आदि

नाणदसण ઇત્યાદિ

ફળ-ફૂલથી સમૃદ્ધ, તરૂઓની શ્રેણીથી શોભિત ઉદ્યાનમા પધારેલા સ્વપર-સ્વરૂપને જાણવાવાળા, મતિ શ્રુત આદિ જ્ઞાન તથા દર્શનમોહનીયના ક્ષય ક્ષયોપશમ અથવા ઉપશમથી ઉત્પન્ન થનાર નવ તત્ત્વોની શ્રદ્ધારૂપ દર્શનથી સપન્ન, સત્તર પ્રકારના સયમ અને બાર પ્રકારના તપમા તત્પર, રત્નત્રયની મર્યાદાનો બોધ કરાવનાર, આચારાગ આદિ અગ તથા ઉપાગોના જ્ઞાતા, છત્રીસ ગુણ ધારી આચાર્ય

दायः, आज्ञाकारित्वेन सोऽस्यास्तीति । यद्वा-षट्त्रिंशत्सम्यग्गुणसमूहो गणः, सोऽस्यास्तीति गणी=आचार्यस्तम्, राजानः=चक्रवर्त्यादयः, राजामात्याश्च= अमा=सह समीपे वा वर्तन्ते ये ते-अमात्याः, राज्ञाममात्या राजामात्याः=राजमन्त्रिणश्च, ब्राह्मणाः=ब्रह्मचर्यं कुशलानुष्ठानं, तदेषामस्तीति ते, ब्राह्मणत्वजातिमन्तो वा, 'अदु'-शब्दो देशीयस्तस्य 'अथवे'त्यर्थः । क्षत्रियाः=क्षतान्=उपद्रुतान् त्रायन्ते इति ते, पीड्यमानप्राणिसंरक्षका इत्यर्थः । निभृतात्मानः=निश्चलान्तःकरणा दत्तावधाना इत्यर्थः । अथवा विनीताः कृताञ्जलिपुटा इत्यर्थः, ताश्शा' भन्त' भे=भवताम् आचारगोचरम् कथ=किंविधम् इति- पृच्छन्ति प्रश्नं कुर्वन्ति । तत्राचारः ज्ञानादिपञ्चविधः, गोचरः=भिक्षाचर्यादिलक्षणः, तयोः समाहार इति विग्रहः । यद्वा 'आचारगोचरः' इति छाया-आचारस्य साधुसमाचारस्य गोचरः= विषयः, आचारगोचरः साधुकर्तव्यो धर्मः व्रतषट्कादिरित्यर्थः ॥१॥२॥

राजा, राजमन्त्री ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि शुभ क्रियाओंका अनुष्ठान करनेवाले या वर्णकी अपेक्षा ब्राह्मण, तथा क्षत्रिय अर्थात् दीन दुखियोंकी रक्षा करनेवाले,- सावधानीसे विनय युक्त होकर पूछे कि-हे भदन्त ! आपका आचार अर्थात् ज्ञानाचार आदि, तथा गोचर अर्थात् भिक्षाचर्या आदि, अथवा साधुका आचरणीय (कर्तव्य) यानी साधुका धर्म क्या है?

गाथामें ज्ञानदर्शनसम्पन्न विशेषण आया है। यहां यह समझना चाहिए कि यद्यपि सम्यग्दर्शनमें ही सम्यग्ज्ञान उपन्न होता है तो भी व्यवहारनयकी अपेक्षासे ज्ञान प्रधान है इसलिए आदिमें ज्ञानका ग्रहण किया है ॥१॥ ॥२॥

મહારાજની પાસે ચક્રવર્તી રાજા રાજમંત્રી બ્રાહ્મણ અર્થાત્ બ્રહ્મચર્ય આદિ શુભ ક્રિયાઓનું અનુષ્ઠાન કરનારા યા વર્ણની અપેક્ષાએ બ્રાહ્મણ, તથા ક્ષત્રિય અર્થાત્ દીન-દુર્બળની રક્ષા કરનારા, સાવધાનીથી વિનયયુક્ત થઈને પૂછે છે – હે ભદન્ત! આપના આચાર અર્થાત્ જ્ઞાનાચાર આદિ તથા ગોચર અર્થાત્ ભિક્ષાચર્યા આદિ અથવા સાધુનું આચરણીય (કર્તવ્ય) યા તો સાધુનો ધર્મ શો છે?

ગાથામાં જ્ઞાનદર્શનસંપન્ન વિશેષણ આવ્યું છે. અહીં એમ સમજવું કે જો કે સમ્યગ્ દર્શનથી જ સમ્યગ્ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, તો પણ વ્યવહારનયની અપેક્ષાએ જ્ઞાન પ્રધાન છે, તેથી 'આદિ'થી જ્ઞાનનું ગ્રહણ કર્યું છે (૧-૨)

एवं पृष्ट आचार्यः किं कुर्यादित्याह—

(मूलम्)

तेसिं सो निहुओ दंतो, सव्वभूयसुहावहो ।
सिक्खाए सुसमाउत्तो, आयक्खइ वियक्खणो ॥३॥

॥ छाया ॥

तेभ्यः स निभृतो दान्तः सर्वभूतसुखावहः ।
शिक्षया सुसमायुक्तः आचष्टे विचक्षणः ॥३॥

॥ टीका ॥

'तेसिं' इत्यादि—

निभृतः=निश्चलः सावधान इत्यर्थः, दान्तः=वशीकृतेन्द्रियः सर्वभूतसुखावहः=सकलजीवोपकारपरायणः शिक्षया=ग्रहणासेवनारूपया, तत्र ग्रहणा शिक्षा-यथाक्रम सूत्रार्थतदुभययोजनरूपा, आसेवना च सूत्रोक्तक्रियाकलापप्रवर्तनं, सुसमायुक्तः=सुसपन्नः न्यूनाधिकभावराहित्येनोभयशिक्षादक्ष इत्यर्थः। विचक्षणः=धर्मोपदेशनिपुणः स गणी तेभ्यः=राजादिभ्य आचष्टे=कथयति।

ऐसा पूछनेपर उत्तर देनकी विधि कहते हैं—

'तेसिं' इत्यादि।

आत्मा में सावधान, जितेन्द्रिय, समस्त प्राणियोंका कल्याण करनेवाले, ग्रहण और आसेवनरूप शिक्षासे सुसपन्न और धर्मोपदेश देनमें चतुर, आचार्य महाराज उन राजा आदिको धर्म का प्ररूपणा करें। क्रमसे सूत्र और अर्थ की शिक्षा ग्रहणशिक्षा कहलाती है और पंच महाव्रत आदि सूत्रोक्त क्रियाओंमें प्रवृत्ति करना आसेवनशिक्षा है।

એ પૂછતા ઉત્તર આપવાની વિધિ કહે છે—

તેસિં૦ ઇત્યાદિ

આત્મામા સાવધાન, જિતેન્દ્રિય, સમસ્ત પ્રાણીઓનુ કલ્યાણ કરવાવાળા, ગ્રહણ અને આસેવન રૂપ શિક્ષાથી સુસપન્ન અને ધર્મોપદેશ આપવામા ચતુર, આચાર્ય મહારાજ એ રાજા આદિને ધર્મની પ્રરૂપણા કરી સભળાવે ક્રમે કરીને સૂત્ર અને અર્થની શિક્ષા ગ્રહણશિક્ષા કહેવાય છે, અને પચ મહાવ્રત આદિ સૂત્રોક્ત ક્રિયાઓમા પ્રવૃત્તિ કરવી એ આસેવન શિક્ષા છે

'निहुओ' इति पदेनासंभ्रान्तता, 'दंतो' इत्यनेन शब्दादिविषयोपरतिः, 'सव्वभूयसुहावहो' इत्यनेन सर्वभूताभयकारिता, 'सिक्खाए सुसमाउत्तो' इति पदेन जिज्ञासुकर्तृकाचारगोचरविषयकयावत्प्रश्नसमाधानशक्तिमत्ता, 'वियक्खणो' इत्यनेन च द्रव्यक्षेत्रकालभावाभिज्ञता, उत्सर्गापवादविवेकवत्ता च समावेदिता ॥३॥

(मूलम्)

हंदि ! धम्मत्थकामाण, निग्गथाणं सुणेह मे ।
आयारगोयर भीम, सयलं दुरहिट्ठियं ॥४॥

(छाया)

हन्दि ! धर्मार्थकामाना, निर्ग्रन्थानां शृणुत मे ।
आचारगोचर भीम, सकलं दुरधिष्ठितम् ॥४॥

'निहुओ' पदसे संभ्रमका अभाव, 'दंतो' पदसे शब्द आदि विषयोंका त्याग, 'सव्वभूयसुहावहो' पदसे समस्त जीवोंको अभयदान 'सिक्खाए सुसमाउत्तो' पदसे आचारके विषयमें जिज्ञासु द्वारा किये जानेवाले सब प्रश्नोंका उत्तर देनेकी शक्ति, 'वियक्खणो' पदसे द्रव्य क्षेत्र काल भावका ज्ञान और उत्सर्ग अपवाद मार्गका विवेक प्रगट किया है ॥३॥

निहुओ શબ્દથી સંભ્રમનો અભાવ, दंतो શબ્દથી શબ્દાદિ વિષયનો ત્યાગ, सव्वभूयसुहावहो પદથી સમસ્ત જીવોને અભયદાન, सिक्खाए सुसमाउत्तो પદથી આચારના વિષયમાં જિજ્ઞાસુ દ્વારા પૂછાતા સર્વ પ્રશ્નોનો ઉત્તર આપવાની શક્તિ, वियक्खणो પદથી દ્રવ્યક્ષેત્ર કાળભાવનું જ્ઞાન અને ઉત્સર્ગ અપવાદ માર્ગનો વિવેક પ્રકટ કર્યો છે (૩)

(टीका)

'हंदि' इत्यादि—

'हन्दि' इत्यव्ययं कोमलामन्त्रणे, तेन भो देवानुप्रियाः। धर्मार्थ-कामाना=धर्मः श्रुतचारित्रलक्षणः स एवार्थः प्रयोजनं धर्मार्थः, तं कामयन्ते= वाञ्छन्तीति धर्मार्थकामाः=श्रुतचारित्रधर्माभिलाषिणस्तेषां, निर्ग्रन्थानां=साधूनां भीमं=भयङ्करं कर्मशत्रून् प्रतीतिभावः, दुरधिष्ठितं=दुर्धार्यं कातरैर्दुराराध्यमित्यर्थः, सकलं=निरवशेषम् आचारगोचरं=ज्ञानक्रियालक्षणं मे=मम सकाशात् शृणुत= आकर्णयत, (हंदि) इति पेदन कोमलसम्बोधनमुक्तं, तदन्तरेण श्रोतारो दत्तावधाना न भवन्ति। 'धम्मत्थकामाणं, निग्गथाणं' इति पदद्वयेन मोक्षाकाङ्क्षित्वेऽपि

आचार्य उत्तर देते हैं—

'हंदि' इत्यादि।

हे देवानुप्रिय! श्रुत चारित्ररूप धर्मकी वाञ्छा करनेवाले निर्ग्रन्थ का कर्म-शत्रुओंके लिए भयकर अर्थात् कर्मनाशक और कायर जिसकी आराधना नहीं कर सकते, ऐसे सपूर्ण आचार गोचर (ज्ञानचारित्र) को मुझसे सुनो।

'हंदि' यह कोमल आमत्रण है इससे यह प्रकट किया है कि मधुर सबोधन के विना श्रोता उपदेश में मन नहीं लगाते। 'धम्मत्थकामाणं निग्गथाणं' इन दो पदोंसे

આચાર્ય ઉત્તર આપે છે

હંદિ ઇત્યાદિ

હે દેવાનુપ્રિય! શ્રુત ચારિત્ર રૂપ ધર્મની વાંછના કરનાર નિર્ગ્રન્થના કર્મ-શત્રુઓને માટે ભયંકર અર્થાત્ કર્મનાશક, અને કાયર જેની આરાધના કરી શકતા નથી, એવા સંપૂર્ણ આચારગોચર (જ્ઞાનચારિત્ર)ને મારી પાસેથી સાંભળો

હંદિ એ કોમળ આમંત્રણ છે, એથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે મધુર સંબો-ધન વિના શ્રોતા ઉપદેશમાં મન લગાડતા નથી धम्मत्थकामाणं निग्गथाणं એ બે

बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरहितानामेव आचारगोचरं परमश्रेयस्करं सकलजनसेवनीयं चेति सूच्यते।

अत्र च द्वितीयगाथायां भवच्छब्दोपादानपुरस्सरं प्रश्नसद्भावेऽप्यस्मच्छब्दमनुपादाय 'समणाणं निग्गंथाणं' इतिपदद्वयं पुरस्कुर्वतामाचार्याणां स्वाभिमानाभावश्च द्योत्यते।

'आयारगोयरं' इति पदेन प्रश्नानुरूपवाक्यप्रयोगेण स्वागमपरिभाषया च जिज्ञासूनां श्रवणानुरागो विवर्धते इति ध्वनितम्। 'भीमं' इति पदेनाचारगोचरवतां साधुसिंहानां सविधे कर्ममृगा न स्थातुं प्रभवन्तीति द्योतितम्।

यह व्यक्त किया है कि मोक्षका इच्छुक होनेपर भी उन्हीं का आचार गोचर परम कल्याणकारी और आराधनीय होता है, जो बाह्याभ्यन्तर परिग्रहसे मुक्त होते हैं।

दूसरी गाथामें भवत् (आप) शब्दका प्रयोग करके प्रश्न किया था, किन्तु उत्तरमें आचार्यने 'हमारा' ऐसा न कहकर 'निर्ग्रन्थ साधुओंका' ऐसा कहा है, इससे स्वअभिमानका अभाव प्रगट होता है। ''आयारगोयर' पदसे यह ध्वनित होता है कि प्रश्नके अनुकूल वाक्य प्रयोगसे और आगमकी परिभाषासे श्रोताओंका सुनने में अनुराग बढ़ता है। 'भीम' पदसे यह सूचित किया है कि आचार गोचरवाले साधु सिंहोंके सामने

પહેલી એમ વ્યક્ત કર્યું છે કે મોક્ષના ઇચ્છુક હોય છતાં પણ તેમના આચાર ગોચર પરમ કલ્યાણકારી અને આરાધનીય હોય છે, જે બાહ્યાભ્યન્તર પરિગ્રહથી મુક્ત હોય છે

બીજી ગાથામા ભવત્ (આપ) શબ્દનો પ્રયોગ કરીને પ્રશ્ન કર્યો હતો, કિંતુ ઉત્તરમા આચાર્યે 'અમારા એમ ન કહેતા નિર્ગ્રન્થ સાધુઓના' એમ કહ્યું છે એથી સ્વાભિમાનનો અભાવ પ્રગટ થાય છે આયારગોયરં પદથી એમ ધ્વનિત થાય છે કે પ્રશ્નને અનુકૂળ અને આગમની પરિભાષાથી શ્રોતાઓના અનુરાગ સાંભળવામાં વધે છે ભીમ શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે આચારગોચરવાળા

'सयलं' इत्यनेन सपूर्णकथनमन्तरेण तत्त्वनिर्णयो न सम्यग् भवतीत्यावेदितम् । 'दुरहिट्ठियं' इति पदेन गुरुकर्मणामयोग्यानां च दुःसेव्यमेतत् , न तु लघुकर्मणाम् , इति व्यक्तीकृतम् ॥४॥

॥ मूलम् ॥

आचारगोचरस्य गौरवं प्रदर्शयति—

नन्नत्थ एरिसं वुत्त, जे लोए परमदुच्चर।
विउलट्ठाणभाइस्स, न भूय न भविस्सइ ॥५॥

॥ छाया ॥

नान्यत्र ईदृशम् उक्त, यत् लोके परमदुश्चर।
विपुलस्थानभाजिनः, न भूतं न भविष्यति ॥५॥

॥ टीका ॥

'नन्नत्थ' इत्यादि—

विपुलस्थानभाजिनः=विपुलो महाफलमोक्षहेतुत्वात्संयमस्तस्य स्थान

कर्मरूपी हिरन नहीं ठहर सकते। 'सयल' पदसे पूरा कथन किये बिना तत्त्वका निर्णय नहीं हो सकता, यह प्रगट किया है, तथा 'दुरहिट्ठिय' पदसे यह सूचित किया गया है कि आचारका पालन करना गुरुकर्मी (भारी कर्मवाले) जीवोंको कठिन है और लघुकर्मी जीवोंको सुलभ है ॥४॥

अब आचार गोचरका गौरव (महत्त्व) बताते हैं—

नन्नत्थ इत्यादि।

अखण्ड चारित्र पालनेवाले अथवा अनन्त सुखका स्थान होनेसे विपुल स्थान जो

સાધુ સિંહોની સામે કર્મરૂપી હરણ ઊભા રહી શકતા નથી सयल શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે પૂરું કથન કર્યા વિના તત્ત્વનો નિર્ણય થઈ શકતો નથી दुरहिट्ठिय શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે આચારનું પાલન કરવું ગુરૂકર્મી (ભારેકર્મી) જીવોને માટે કઠિન છે, અને લઘુકર્મી જીવોને માટે સુલભ છે (૪)

હવે આચારગોચરનું ગૌરવ (મહત્ત્વ) બતાવે છે—

नन्नत्थ ઇત્યાદિ

અખંડ ચારિત્ર પાળનાર અથવા અનંત સુખનું સ્થાન હોવાથી વિપુલ

भजते इत्येवं शीलः विपुलस्थानभाजी तस्य,=अखण्डचारित्रवत इत्यर्थः। यद्वा-अनन्तसुखास्पदत्वाद् विपुलस्थान मोक्ष त भजते इत्येवं शीलस्तस्य विपुलस्थानभाजिन.=मोक्षाभिलाषिणः साधोः ईदृशम्=एवंविधमाचारगोचरम् अन्यत्र=जिनशासनादन्यस्मिन शासने नोक्त=न प्रतिपादित यत्=यस्मात्कारणात लोके=जगति परमदुश्चर=अतिदुष्करम् अस्ति अतो जिनशासनादन्यत्र न भूत नापि भविष्यति, अन्यत्र रागद्वेषसम्वलितत्वादीदृशमाचारगोचरम्, अतीतानन्तकाले कदापि न प्रादुर्भूत, तथैवानागतकाले कदापि न प्रकटीभविष्यति, भूतभविष्यतोरुपादानेन तन्मध्यवर्तिनि वर्तमानकालेऽपि न विद्यतेऽन्यत्रेति भावः। जिनशासने तु रागद्वेषरहितत्वात्तत्प्रतिपादितमाचारगोचरमनुपममिति भावः ॥५॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५
सखुड्डगवियत्ताण, वाहियाण च जे गुणा।
७ ८ १० ११ ६ ९
अखडफुडिया कायव्वा त सुणेह जहा तहा ॥६॥

॥ छाया ॥

सक्षुल्लकव्यक्तानां, व्याधितानां च ये गुणाः।
अखण्डास्फुटिताः कर्तव्याः तान् शृणुत यथा तथा ॥६॥

मोक्ष उसके अभिलाषी मुनियोंका ऐसा आचार जिन शासनके सिवाय अन्यत्र नहीं कहा गया है। इसलिए यह आचार ससार में अत्यन्त दुष्कर है। अत यह आचारगोचर रागद्वेषरहित जिन शासनके सिवाय अन्यत्र न कभी प्रगट हुआ है, न कभी होगा और न वर्तमान कालमें है ॥५॥

સ્થાન જે મોક્ષ એના અભિલાષી મુનિઓનો એવો આચાર જિનશાસન સિવાય અન્યત્ર કહેવામાં આવ્યો નથી તેથી એ આચાર સંસારમાં અત્યંત દુષ્કર છે એટલે આ આચારગોચર રાગદ્વેષ રહિત જિનશાસન સિવાય અન્યત્ર ક્યાંય પ્રકટ થયો નથી કદિ પ્રકટ થશે નહિ અને વર્તમાન કાળમાં પ્રકટ નથી (૫)

॥ टीका ॥

'संखुड्ड' इत्यादि—

सक्षुल्लकव्यक्तानां=बालकसहितवृद्धानां बालानां वृद्धानां चेत्यर्थः. क्षुल्लका द्रव्यभावभेदाद् द्विविधाः, तत्र द्रव्यक्षुल्लका अल्पवयस्काः, भावक्षुल्लकाः= अनधीतागमाः, व्यक्ताः=वृद्धास्तेऽपि द्विविधाः, तत्र द्रव्यवृद्धाः=वयोवृद्धाः, भाव-वृद्धाः=अखिलागमतत्त्वविज्ञाः; व्याधितानां=श्वासकासादिरोगग्रस्तानां चकाराद्-व्याधितानां च साधूनां ये गुणा वक्ष्यमाणलक्षणा यथा=येन प्रकारेण अख-ण्डाऽस्फुटिताः=अखण्डाश्च तेऽस्फुटिता इति विग्रहः। तत्राखण्डाः देशविराधना-रहिता', अस्फुटिताः=सर्वविराधनाविरहिताः कर्तव्याः=आराधनीयाः, तथा=तेन

'सखुड्डग' इत्यादि—

क्षुल्लक (बालक) दो प्रकारके हैं—(१) द्रव्यक्षुल्लक और (२) भावक्षुल्लक। अल्पवय (उम्र) वालोंको द्रव्यक्षुल्लक और शास्त्रोंका अध्ययन न करनेवालोंको भाव-क्षुल्लक कहते हैं।

वृद्ध भी दो प्रकारके हैं—(१) द्रव्यवृद्ध और (२) भाववृद्ध। वयोवृद्धोंको द्रव्यवृद्ध तथा समस्त शास्त्रों में निष्णातोंको भाववृद्ध कहते हैं।

ऐसे बालक और वृद्ध साधुओंके तथा श्वास खांसी आदि रोगोंसे ग्रसित साधुओं तथा नारोग साधुओंके अथात् सबके जो देशविराधना रहित तथा सर्वविराधना रहित गुण होते हैं—आराधनीय हैं उन्हें—सुनो, तात्पर्य यह है कि—बालक और वृद्ध साधुओंको

सखुड्डग इत्यादि

क्षुल्लक (બાળક) બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્યક્ષુલ્લક અને (૨) ભાવક્ષુલ્લક અલ્પવયનાળાને દ્રવ્યક્ષુલ્લક અને શાસ્ત્રોનું અધ્યયન ન કરનારાઓને ભાવક્ષુલ્લક કહે છે

વૃદ્ધ પણ બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્યવૃદ્ધ અને (૨) ભાવવૃદ્ધ વયોવૃદ્ધને દ્રવ્યવૃદ્ધ અને સમસ્ત શાસ્ત્રોમા નિષ્ણાત હોય તેમને ભાવવૃદ્ધ કહે છે

એવા બાળક અને વૃદ્ધ સાધુઓના તથા શ્વાસ ખાંસી આદિ રોગોથી ગ્રસિત સાધુઓના તથા નીરોગી સાધુઓના અર્થાત્ સર્વના, જે દેશવિરાધના રહિત તથા સર્વવિરાધના રહિત ગુણો હોય છે તે આરાધનીય છે તે સાંભળો તાત્પર્ય

प्रकारेण 'तत्' इत्यव्ययम्, अत्र प्रक्रान्तपरामृष्टान् गुणानित्यर्थः । शृणुत=आकर्णयत, बालवृद्धादिभिः सर्वावस्थासु गुणानामखण्डत्वं समाराधनीयमिति भावः ॥६॥

(मूलम्)

३ ४ ५ ६ २ १ ७
दस अट्ठ य ठाणाइं, जाइं बालोवरज्झइ ।
८ ९ १० ११ १२
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गंथत्ताउ भस्सइ ॥७॥

॥ छाया ॥

दश अष्टौ च स्थानानि यानि बालोऽपराध्यति ।
तत्रान्यतरस्मिन् स्थाने निर्ग्रन्थत्वाद् भ्रश्यति ॥७॥

॥ टीका ॥

'दस' इत्यादि—

बालः=विवेकविकलः यानि दश अष्टौ च=अष्टादश स्थानानि=वक्ष्यमाणानि आश्रित्य अपराध्यति=आगमोक्तविधिनाऽननुतिष्ठन् संयमं विराधयति, तत्र=तेष्वष्टादशसु स्थानेषु मध्ये, अन्यतरस्मिन् स्थाने=एकस्मिन्नपि स्थाने प्रमादी साधुः

सब अवस्थाओं मे अखण्ड और अस्फुट गुणोंका ही पालन करना चाहिए ॥६॥

'दस अट्ठय' इत्यादि—

जो बाल (अज्ञानी) आगे कहे हुए अष्टादश स्थानों मे दोष लगाकर संयमकी विराधना करता है, अष्टादश स्थानों में से किसी एक स्थान में भी प्रमादका सेवन करता

એ છે કે-બાળક અને વૃદ્ધ સાધુઓએ સર્વ અવસ્થામાં અખંડ અને અસ્ફુટ ગુણોનું જ પાલન કરવું જોઈએ (૬)

દસ અટ્ઠય-ઇત્યાદિ જે બાળ (અજ્ઞાની) આગળ કહેલા અઢાર સ્થાનોમાં દોષ લગાડીને સંયમની વિરાધના કરે છે, અઢારમાંથી [illegible] સ્થાનમાં પણ

निर्ग्रन्थत्वात्=चारित्रधर्मात् भ्रश्यति=प्रच्युतो भवति, द्रव्यलिङ्गवत्त्वेऽपि निश्चयनयेनासाधुत्वमापद्यते इत्यर्थः ॥७॥

संप्रत्यष्टादश स्थानानि निर्दिशति—

(मूलम्)

वयछक्कं कायछक्क अकप्पो गिहिभायणं ।
पलियंकनिसज्जा य सिणाणं सोहवज्जणं ॥८॥

(छाया)

व्रतषट्कं कायषट्कं अकल्पो गृहिभाजनम् ।
पर्यङ्कनिषद्याच स्नान शोभा वर्जनम् ॥८॥

(टीका)

'वयछक्क' इत्यादि—

व्रतषट्क=प्राणातिपातादिरात्रिभोजनान्तविरमणलक्षणम् ६, कायषट्कं=पृथिव्यादिकायषट्कस्वरूपम् ६, अकल्पः=साधूनामकल्पनीयम् (१), गृहिभाजनम्=

है, वह निर्ग्रन्थधर्मसे भ्रष्ट हो जाता है। अर्थात द्रव्यसे साधुका वेष रखनेपर भी निश्चयनयसे असाधुता आजाती है ॥७॥

'वयछक्क' इत्यादि।

प्राणातिपात विरमणसे लेकर रात्रिभोजनविरमण तक छह व्रत (६) तथा पृथिवी आदि छह काय (६) साधुओंके लिए अकल्पनीय (१), गृहस्थोंके कांसी

પ્રમાદનું સેવન કરે છે, તે નિર્ગ્રન્થ ધર્મથી ભ્રષ્ટ થઈ જાય છે અર્થાત્ દ્રવ્યથી સાધુનો વેશ રાખવા છતા પણ નિશ્ચય નયથી અસાધુતા આવી જાય છે (૭)

વયછક્ક ઇત્યાદિ પ્રાણાતિપાત વિરમણથી લઈને રાત્રિ ભોજન વિરમણ સુધીના છ વ્રતો (૬), તથા પૃથિવી આદિ છ કાય (૬), સાધુઓને માટે અકલ્પનીય (૧), ગૃહસ્થોના કાંસા આદિના વાસણ (૧), ખાટ પલંગ આદિ (૧), ગૃહસ્થોના

गृहस्थाना कास्यादिमयभाजनम् (१), पर्यङ्कः=खट्वादिः (१), निषद्या=गृहस्थाना मासनम् आसन्यादिकम् (१), स्नानं=देशतः सर्वतो वा (१), शोभा=वस्त्राभरणादिना शरीरमण्डन च (१), वर्जनम् इत्यस्याकल्पादौ सर्वत्रान्वयः । एतानि अष्टादश स्थानानि तीर्थकरोक्तविधिनिषेधयोरनाचरणाऽऽचरणाभ्या दूषितानि भवन्ति, यथाऽऽदेशमनुपालनेन तु एतानि समाराधितानि भवन्ति, यथा–व्रतषट्कं, कायषट्क च यथाविधि मनुपालनेन संयमस्थानानि, अकल्पादीन्यपि निषेधवाक्यानु - पालनाय, तद्वर्जने संयमस्थानान्येव भवन्ति ॥८॥

(मूलम्)

तत्थिम पढमं ठाण महावीरेण देसियं ।
अहिंसा निउणा दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो ॥९॥

आदिके बर्तन (१) खाट पर्यङ्क आदि (१) गृहस्थोंके आसन्दा (कुर्सी) आदि आसन (१) विभूषा आदिके लिए एक देश या सर्व देशमे स्नान करना (१) वस्त्र अलङ्कारोंसे शरीरको शोभित करना (१) ये अष्टादश स्थान है ।

इनमें से तीर्थंकर भगवान ने जिनका पालन करने का उपदेश दिया है उनका पालन न करने से तथा जिनका निषेध किया है उनका आचारण करने से दोष लगता है । सर्वज्ञ के वचनों के अनुसार पालन करने से इनकी आराधना होती है । जैसे छह व्रतों और छह कायों का विधि के अनुसार पालन करने से वे सयम के स्थान हो जाते हैं और अकल्प आदि का निषधरूपसे पालन करने से अर्थात् उनका सेवन न करने से वे भी सयम के स्थान हो जाते हैं। ॥८॥

खुरशी आदि आसन (१) विभूषा आदिने माटे એक देशे करीने अथवा सर्व देशे करीने स्नान करवु (१) वस्त्रालंकारोथी शरीरने शोभित करवु (१) એ अढारस्थानो छे એमांथी तीर्थंकर भगवाने जेनु पालन करवाना उपदेश आप्यो छे तेनुं पालन न करवाथी तथा जेनो निषेध कर्यो छे तेनु आचरण करवाथी दोष लागे छे सर्वज्ञना वचनोने अनुसारे पालन करवाथी એने आराधना थाय छे जेमके ६ व्रतो अने छ कायनुं विधि अनुसार पालन करवाथी ते संयमना स्थान बनी जाय छे, अने अकल्प आदिनुं निषेधरूपे पालन करवाथी अर्थात् એनुं सेवन न करवाथी ते पण संयमना स्थान बने छे (८)

(छाया)

तत्रेदं प्रथमं स्थान महावीरेण देशितम् ।
अहिंसा निपुणा दृष्टा सर्वभूतेषु संयमः ॥९॥

(टीका)

'तत्थिम' इत्यादि—

तत्र तेषु अष्टादशसु स्थानेषु अहिंसा=न हिंसा=अहिंसा, सर्वभूतेषु=पृथिव्यादिसकलप्राणिषु संयमः=परदुःखप्रहाणेच्छा दया तत्स्वरूपेत्यर्थः । अनेनाहिंसाया लक्षणं प्रदर्शितम्, तेन प्राणव्यपरोपणवर्जनं, प्राणसङ्कटान्मोचनं चेति फलितम् । इयं कीदृशीत्याह-निपुणेति । निपुणा=सकलार्थसाधिका अनन्तसुखप्रापिकेत्यर्थः, महावीरेण दृष्टा=केवलज्ञानेन साक्षात्कृता अतएव इदम्=अहिंसालक्षणं प्रथमं स्थानं देशितं=कथितम् ।

'तत्थिम' इत्यादि। इन अठारह स्थानों में से पृथिवीकाय आदि के प्राणोंका व्यपरोपणा न करने और प्राणियों का संकट दूर करने की इच्छारूप संयम को अहिंसा कहते हैं। वह अहिंसा अनन्त सुख की प्राप्ति कराती है ऐसा भगवान् महावीर स्वामीने केवलज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष देखा है। अतएव अहिंसा को पहला स्थान कहा है। अथवा समस्त प्राणियों का संयम (रक्षण) अहिंसा में ही होता है। अहिंसा के सिवाय अन्यत्र नहीं होता, इसी से भगवान् महावीर ने साधुओं के द्वारा सदोष आहार का परिहार करने से विशेष सामर्थ्यवाली अहिंसा को केवलज्ञान द्वारा ऐसा देखा है कि यही धर्म का साधन है। इसलिए अहिंसा को पहले स्थान में कहा है।

तत्थिम-ઇત્યાદિ એ અઢાર સ્થાનોમાંથી પૃથિવીકાય આદિના પ્રાણોનું વ્યપરોપણ ન કરવાથી અને પ્રાણીઓનું સંકટ દૂર કરવાની ઇચ્છારૂપ સંયમને અહિંસા કહે છે એ અહિંસા અનંત સુખની પ્રાપ્તિ કરાવે છે એવું ભગવાન્ મહાવીર સ્વામીએ કેવળજ્ઞાન દ્વારા પ્રત્યક્ષ જોયું છે તેથી કરીને અહિંસાને પહેલું સ્થાન કહ્યું છે અથવા બધા પ્રાણીઓનો સંયમ (રક્ષણ) અહિંસામાં જ થાય છે, અહિંસા સિવાય અન્યત્ર થતા નથી તેથી ભગવાન્ મહાવીરે સાધુઓદ્વારા સદોષ આહારનો પરિહાર કરવાથી વિશેષ સામર્થ્યવાળી અહિંસાને કેવળજ્ઞાનદ્વારા એમ જોયું છે કે આજ ધર્મનું સાધન છે તેથી અહિંસાને પહેલા સ્થાનમાં કહી છે

यद्वा—तत्राहिंसा—सर्वभूतेषु संयमः सर्वभूतविषयकः संयमोऽहिंसाया-मेव भवति, नान्यत्रेतिहेतोर्महावीरेण भगवता निपुणा=सदोषाहारपरित्यागेन प्रभूतसामर्थ्यवती दृष्टा=धर्मसाधनत्वेन साक्षात्कृता, अतएवेदं गुणस्थानं प्रथमं देशितं=कथितमित्यर्थः। 'निउणा' इति विशेषणपदम्—अहिंसाया मुख्यत्वं प्रथमस्थानयोग्यतां च बोधयति। 'सव्वभूएसु संजमो' इत्यनेन 'कथमेते प्राणिनः प्राणसंकटादुन्मुक्ता भवेयु' रितीच्छा, तत्फलभूतं प्राणसंकटान्मोचनं चाहिंसायामन्त-र्भूतमिति स्पष्टीकृतम् ॥९॥

॥ मूलम् ॥

जावंति लोए पाणा तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाणं वा न हणे णो वि घायए ॥१०॥

॥ छाया ॥

यावन्तो लोके प्राणास्त्रसा अथवा स्थावराः।
तान् जानन् अजानन् वा न हन्यात् नोऽपि घातयेत् ॥१०॥

'निउणा' विशेषण से अहिंसा की मुख्यता और प्रथमस्थान की योग्यता प्रगट की है। 'सव्वभूएसु संजमो' विशेषण से यह स्पष्ट किया है कि यह प्राणी किस उपायसे संकट से छूटे ऐसी इच्छा, और उस इच्छा के फलस्वरूप प्राणियों का संकट दूर करना अहिंसा के ही अन्तर्गत है ॥ ९ ॥

निउणा विशेषणुथी अहिंसानी मुख्यता प्रथम स्थाननी योग्यता प्रकट करी छे सव्वभूएसु संजमो विशेषणुथी એમ સ્પષ્ટ કર્યું છે કે આ પ્રાણી કયા ઉપાયથી સંકટમાંથી છૂટે, એવી ઇચ્છા અને એ ઇચ્છાના ફળસ્વરૂપ પ્રાણીઓનું કષ્ટ દૂર કરવું એ, અહિંસાની અંદર સમાવિષ્ટ થાય છે (૯)

---

१ संयमम्।

॥ टीका ॥

'जावंति' इत्यादि—

लोके=चतुर्दशरज्ज्वात्मके यावन्तः=यत्परिमिताः सकला इत्यर्थः, त्रसाः=त्रसनशीला द्वीन्द्रियादयः, अदुव=अथवा, स्थावराः=स्थितिशीलाः पृथिव्यादयः प्राणाः=प्राणिनः, तान् जानन् 'अयं त्रसादिःप्राणी' इत्यवबुध्यमानः रागद्वेषावेशेनेतिशेषः, वा=अथवा, अजानन्=प्रमादवशतोऽजानानः न हन्यात्=स्वयं न हिंस्यात्, नो अपि=नापि घातयेत्=अन्यद्वारा नोपमर्दयेत्, घ्नन्तमपि वा नानुमोदयेदितिभावः ॥१०॥

॥ मूलम् ॥

१ ३ २ ५ ४ ७ ६
सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं ।
८ ११ ९ १२ १३ १०
तम्हा पाणिवह घोर निग्गंथा वज्जयंति ण ॥११॥

॥ छाया ॥

सर्वे जीवा अपि इच्छन्ति जीवितु न मर्तुम् ।
तस्मात् प्राणिवध घोर निर्ग्रन्था वर्जयन्ति तम् ॥११॥

जावंति इत्यादि। चौदह राजू प्रमाण लोक में जितने भी त्रस अथवा स्थावर प्राणी है उन सब को जानता हुआ रागद्वेषादि के वशसे या बिना जाने प्रमाद के वशसे स्वय न हने, दूसरे से न हनावे और हनते हुए का अनुमोदना न करे ॥१०॥

जावंति– ઇત્યાદિ ચૌદ રાજુ પ્રમાણુ લોકમા જેટલા ત્રસ અથવા સ્થાવર પ્રાણીઓ છે, એ સર્વને જાણતા, રાગદ્વેષાદિને વશ થઈને યા વિના જાણ્યે પ્રમાદને વશ થઈને સ્વય ન હણે, બીજા દ્વારા ન હણાવે અને હણનારની ન અનુમોદના કરે (૧૦)

॥ टीका ॥

'सव्वे' इत्यादि—

सर्वेऽपि=समस्ता अपि जीवाः=त्रसस्थावरलक्षणा जन्मिनः, जीवितुं=दीर्घकालं निरुपद्रवं प्राणान् धारयितुं स्वायुषोऽखण्डितत्वमितिभावः, इच्छन्ति=अभिलषन्ति, किंतु मर्तुं=प्राणान् परित्यक्तुं नेच्छन्तीति पूर्वेण सम्बन्धः, तस्माद् हेतोः घोरं=घोरनरकादिदुःखकारणत्वात् दारुणं, णं=तं प्राणिवधं=पृथिव्यादिजीवजातस्य स्वस्वकर्मानुसारेण सलब्धप्राणाना वियटनीकरणं जीवघातमित्यर्थः, निर्ग्रन्थाः=साधवः वर्जयन्ति=परित्यजन्ति सर्वप्राणातिपातादुपरता भवन्तीत्यर्थः ॥

' निग्गथा ' इति पदेन परिग्रहरहिता एव अहिंसा सर्वथाऽनुपालयितुं प्रभवन्तीति सूचितम् ॥११॥

अथद्वितीयस्थानमाह—

॥ मूलम् ॥

१ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।
१२ ३ २ ४ १५ १४ १३ १६
हिंसगं न मुसं बूया नो वि अन्नं वयावए ॥१२॥

सव्वे जीवा इत्यादि । सब जीव जीवित रहने की अभिलाषा रखते हैं कोई जीव मरना नहीं चाहता इसलिए उनका व्यपरोपण करना घोर अर्थात नरकादि का दुःख दाता होने से भयकर है । अतः निर्ग्रन्थ साधु उसका त्याग करते हैं—वे सर्व प्राणातिपात से विरत होते हैं ।

' निग्गथा ' पदसे यह सूचित किया है कि परिग्रह से रहित ही अहिंसा का सर्वथा पालन कर सकते हैं ॥११॥

सव्वेजीवा—ईत्यादि બધા જીવો જીવિત રહેવાની અભિલાષા રાખે છે, કોઇ જીવ મરવા ઇચ્છતો નથી, તેથી એનું વ્યપરોપણ કરવું એ ઘોર છે અર્થાત નરકાદિકનું દુઃખ આપનાર હોઇને ભયંકર છે તેથી જે નિર્ગ્રંથ સાધુ તેનો ત્યાગ કરે છે, તે સર્વ-પ્રાણાતિપાતથી વિરત થાય છે નિગ્ગથા શબ્દથી એમ સુચિત કર્યું છે કે પરિગ્રહથી રહિત હોય તેજ અહિંસાનું સર્વથા પાલન કરી શકે છે (૧૧)

(छाया)

आत्मार्थं वा परार्थं वा क्रोधाद् वा यदि वा भयात्
हिंसकं न मृषा ब्रूयात् नो अपि अन्यं वादयेत् ॥१२॥

(टीका)

'अपणट्ठा' इत्यादि—

आत्मार्थं=स्वनिमित्तं मृषा=असत्यं न ब्रूयात् यथा अग्लानत्वेऽपि ग्लानोऽहमित्यादि' परार्थं वा=अन्यनिमित्तं वा मृषा न ब्रूयात् यथा अवसन्नपार्श्वस्थादि-साधुसम्मानार्थम् 'अयं क्रियापात्रमित्यादि'। यद्वा–यस्य कस्यचन दुश्चरित्रस्य कृते 'अयं सच्चरित्र इत्यादि' क्रोधाद्वा=अपमानादिकारणवशाद्वा यथा– 'नीचस्त्वमित्यादि। उपलक्षणमेतन्मानादीनाम्, मानात्–अतपस्वित्वेऽपि 'अहं तपस्वीत्यादि। मायातः— भिक्षाटनादिसामर्थ्यसत्त्वेऽपि 'नाहं समर्थोऽस्मि प्रस्थातुमित्यादि। लोभात्–यथा प्रशस्तान्नादिलाभे सति शुद्ध-

अब दूसरा स्थान बताते हैं—अप्पणट्ठा इत्यादि। बीमार न होने पर भी 'मैं बीमार हूं' इत्यादि अपने निमित्त असत्य भाषण न करे। अवसन्न पार्श्वस्थ आदि साधुका सन्मान करने के लिए 'यह क्रियापात्र है' ऐसा, अथवा किसी दुश्चरित्र का सच्चरित्र कहना आदि, परके निमित्त असत्य भाषण न करे। 'तू नीच है' इत्यादि क्रोध वश असत्य न बोले। उपलक्षण से–'मैं तपस्वी हूं' इस प्रकार मानकषायसे असत्य वचन न कहे। गोचरी आदि जाने की सामर्थ्य होने पर भी 'मुझमें चलनेकी सामर्थ्य नहीं है' इस प्रकार

हुवे बीजुं स्थान बतावे छे– अप्पणट्ठा– इत्यादि बिमार न होवा छतां पण 'हुं बिमार छुं' इत्यादि पोताने निमित्ते असत्य भाषण न करे. अवसन्न पार्श्वस्थ आदि साधुनुं सन्मान करवाने माटे 'आ क्रियापात्र छे' एवुं अथवा कोइ दुश्चरित्रने सच्चरित्र कहेवो आदि परने निमित्ते असत्य भाषण न करे. 'तुं नीच छे' इत्यादि क्रोधवश असत्य न बोले. उपलक्षणथी 'हुं तपस्वी छुं' ए प्रकारे मानकषायथी असत्य वचन न कहे. गोचरी आदि माटे जवानुं सामर्थ्य होवा छतां पण 'मारामां चालवानुं सामर्थ्य नथी' ए प्रमाणे मृषा

स्याप्यन्तमान्ताहारस्य विषये– 'अशुद्धमिदमित्यादि'। भयात्–यथा कृतपापः प्रायश्चित्तादिभयात् 'मया नेदं कृतमित्यादि मृषा न ब्रूयात्, हिंसकं वा=परपीडोत्पादकं वा वचनं न ब्रूयात् स्वयम्, अन्यमपि नो वादयेत्=मृषा वक्तुं नादिशेत्, अन्यं वा मृषावदन्तं नानुमोदयेदिति भावः ॥१२॥

तृतीयस्थानमाह—

॥ मूलम् ॥

मुसावाओ उ लोगम्मि सव्वसाहूहि गरिहिओ ।
अविस्सासो य भूयाण तम्हा मोसं विवज्जए ॥१३॥

॥ छाया ॥

मृषावादस्तु लोके सर्वसाधुभिर्गर्हितः ।
अविश्वासश्च भूतानां तस्माद् मृषा विवर्जयेत् ॥१३॥

माया से, मृषाभाषाका प्रयोग न करे । अन्त प्रान्त आहार को अशुद्ध (असत्या) बता देना आदि लोभसे अनृत (असत्य) उच्चारण न करे । पाप कर्म करने पर भी प्रायश्चित के भयसे असत्य भाषण न करे । तथा परको पीडा उपजानेवाली भाषा न बोले । यह सब प्रकार का असत्य अन्य से न बोलवे तथा असत्य बोलने हुए को भला न समझे अर्थात उसकी अनुमोदना न करे ॥१२॥

ભાષાનો પ્રયોગ ન કરે અન્ત પ્રાન્ત આહારને અશુદ્ધ બતાવવો આદિ પ્રકારે લોભથી અસત્ય ઉચ્ચારણ ન કરે પાપકર્મ કરવા છતાં પણ પ્રાયશ્ચિત્તના ભયથી અસત્ય ભાષણ ન કરે તથા પરને પીડા ઉપજાવનારી ભાષા ન બોલે આ સર્વ પ્રકારનું અસત્ય બીજા પાસે ન બોલાવે તથા અસત્ય બોલનારને ભલો ન જાણે અર્થાત્ એની અનુમોદના ન કરે ॥૧૨॥

॥ टीका ॥

'मुसावाओ' इत्यादि—

लोके=सकलसंसारे मृषावादस्तु=असत्यभाषणं तु सर्वसाधुभिः साधयन्ति=निर्वाणसाधकान् योगानिति यद्वा सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूप-रत्नत्रयबलेन मोक्षमार्गमिति, अथवा निरुक्तव्युत्पत्त्या मोक्षमार्गं प्रतिगच्छतां सहायका भवन्तीति साधवः, सर्वसार्वशब्दयोः, प्राकृते 'सव्व' इति रूपसत्त्वात् सार्वाः[1]=सर्वज्ञास्तेच ते साधवः, सार्वसाधवः, न्यायस्य समानत्वात्तीर्थकरा अपि साधुपदेन व्यवह्रियन्ते, यद्वा–सर्वे च ते साधवः सर्वसाधवः=गणधरादयः यद्वा सार्वाः सर्वज्ञाः साधवः=मुनयस्तैर्गर्हितः=लोकलोकोत्तरोभयविधानर्थपरपराजनकत्वान्निन्दितः, भूतानां=जीवानाम् अविश्वासः=अश्रद्धेयः तस्माद्धेतोः मृषा=मृषा-

मुसावाओ इत्यादि। मोक्ष प्राप्त कराने वाले योगों की साधना करने वाले अथवा सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र द्वारा मोक्ष मार्ग के साधक अथवा मोक्ष मार्ग में गमन करने वाले भव्य प्राणियों के सहायक को साधु कहते हैं। तथा सर्वज्ञ भगवान् को अथवा गणधरों को तथा सामान्य साधुओं को सर्वसाधु कहते हैं। मृषावाद समस्त संसार में सर्व साधुओं (गणधरों) द्वारा अथवा सर्वज्ञ द्वारा तथा साधुओं द्वारा गर्हित है अर्थात् लौकिक और लोकोत्तर में विविध अनर्थों का कारण होने से निन्दित है। मृषावादी पर किसीका विश्वास नहीं रहता, अतः उसका परित्याग करना चाहिए। आशय यह है

मुसावाओ– इत्यादि– मोक्ष प्राप्त કરાવનારા યોગોની સાધના કરાવનારા અથવા સમ્યગ્ જ્ઞાન સમ્યગ્ દર્શન અને સમ્યક્ ચારિત્રદ્વારા મોક્ષમાર્ગના સાધક અથવા મોક્ષમાર્ગમાં ગમન કરનારા, ભવ્ય પ્રાણીઓના સહાયકને સાધુ કહે છે તથા સર્વજ્ઞ ભગવાનને અથવા ગણધરને તથા સામાન્ય સાધુઓને સર્વસાધુ કહે છે મૃષાવાદ સમસ્ત સંસારમાં સર્વ સાધુઓ (ગણધરો) દ્વારા અથવા સર્વજ્ઞદ્વારા તથા સાધુઓદ્વારા ગર્હિત છે, અર્થાત્ લૌકિક અને લોકોત્તરમાં વિવિધ અનર્થોનું કારણ હોવાથી નિંદિત છે મૃષાવાદી પર કોઇનો વિશ્વાસ રહેતો નથી એટલે એનો

1– सार्वाः — सर्वेभ्योहिताः सार्वाः। तस्मै हितं' इति।

वाद विवर्जयेत्=परित्यजेत् । अयं मृषावादो हि निखिलमहापुरुषैर्निन्दितत्वान्नाचरणीय इति भावः ॥१३॥

(मूलम्)

चित्तमंतमचित्तं वा अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दंतसोहणमित्तं वि, उग्गहं से अजाइया ॥१४॥

(छाया)

चित्तवद् अचित्तवद् वा अल्प वा यदि वा बहु ।
दन्तशोधनमात्रमपि अवग्रहं तस्य अयाचित्वा ॥१४॥

(टीका)

'चित्तमंत' इत्यादि—

चित्तवत्=सचित्तं शिष्यादिकम् अचित्तवत्=अचित्तं वस्त्रपात्रादिकम् *अल्पम्=मूल्यप्रमाणाभ्यां स्वल्पम्, तत्र मूल्यतोऽल्पम्-एरण्डकाष्ठादिकं, प्रमाण*-तोऽर्कतूलादिकं, यदि वा बहु=मूल्यतः प्रमाणतश्च, तत्र मूल्यतो बहु हीरकभस्मा-

---

कि यह मृषावाद समस्त महापुरुषों द्वारा निन्दित है। अतः उसका आचरण करना नहीं चाहिए ॥१३॥

चित्तमंत इत्यादि। तं अप्पणा इत्यादि। शिष्यादि सचित्त, वस्त्रपात्र आदि अचित्त, एरण्ड काष्ठ आदि-मूल्यसे अल्प, आककी रुई आदि प्रमाणसे अल्प, हीरे की भस्म

परित्याग કરવો જોઇએ આશય એ છે કે એ મૃષાવાદ સર્વ મહાપુરુષોદ્વારા નિંદિત છે, એટલે એનું આચરણ કરવું ન જોઇએ ॥૧૩॥

चितमत- ઇત્યાદિ તથા तं अप्पणा- ઇત્યાદિ- શિષ્યાદિ સચિત્ત, વસ્ત્ર પાત્રાદિ અચિત્ત, એરંડાનું લાકડું આદિ મૂલ્યમાં અલ્પ, આકડાનું રૂ આદિ પ્રમાણમાં અલ્પ, હીરાની ભસ્મ આદિ મૂલ્યમાં બહુ, પત્થર-ઢેકું આદિ પ્રમાણમાં

दिकं, प्रमाणतो बहु मृत्पिण्डपाषाणादिकं, किं बहुना दन्तशोधनमात्रमपि=दन्तशोधनोपयोगि तृणमपि से=तस्य वस्तुस्वामिन इत्यर्थः, अवग्रहम् अनुज्ञाम् अयाचित्वा=अगृहीत्वा, अस्योत्तरगाथया सम्बन्धः ॥१४॥

(मूलम्)

१ ३ ४ ५ ६ ७ ९ ८
त अप्पणा न गिण्हंति नो वि गिण्हावए परं ।
११ १२ १० १० १४ २
अन्न वा गिण्हमाणं पि नाणुजाणंति संजया ॥१५॥

॥ छाया ॥

तत् आत्मना न गृह्णन्ति नो अपि ग्राहयेत् परम् ।
अन्यं वा गृह्णन्तमपि नानुजानन्ति संयताः ॥१५॥

॥ टीका ॥

'त' इत्यादि—

तत्=पूर्वोक्तं वस्तु संयताः=साधवः आत्मना स्वयं न गृह्णन्ति नोपाददते, नापि परेण=अन्येन ग्राहयन्ति, गृह्णन्तमन्यमपि वा नानुजानन्ति=नानुमोदयन्ति ॥१५॥

चतुर्थं स्थानमाह—

॥ मूलम् ॥

७ ४ ५ ६
अबंभचरियं घोरं पमायं दुरहिट्ठियं ।
८ २ ३ १
नायरंति मुणी लोए भेयाययणवज्जिणो ॥१६॥

आदि मूल्यसे बहु, ढेला, पत्थर, आदि प्रमाणसे बहु, अधिक क्या—दांत शोधनका तृण भी स्वामीकी आज्ञा लिये विना संयमी न स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरे से ग्रहण कराते है, न ग्रहण करते हुए की अनुमोदना करते हैं ॥१४॥१५॥

બહુ, વધારે શું ! દાંત ખોતરવાનું તણખલું પણ તેના સ્વામીની આજ્ઞા લીધા વિના સંયમીઓ સ્વયં ગ્રહણ કરતા નથી, બીજા પાસે ગ્રહણ કરાવતા નથી અને ગ્રહણ કરનારની અનુમોદના કરતા નથી ॥૧૪-૧૫॥

॥ छाया ॥

अब्रह्मचर्यं घोरं प्रमादं दुरधिष्ठितम् ।
नाचरन्ति मुनयो लोके भेदायतनवर्जिनः १६॥

॥ टीका ॥

'अबंभचरिय' इत्यादि—

भेदायतनवर्जिनः=भेदः=चारित्रभङ्गः तस्यायतनम्=आश्रयः प्राणातिपातनादि, सर्वथा चारित्रोन्मूलनहेतुत्वात् तद्वर्जिनः चारित्रभङ्गभीरवः मुनयः= जैनाज्ञाप्रमाणकाः लोके=जगति घोरं=घोरदुःखोत्पादकत्वात् प्रमादं=प्रमादजनकम् अनवधानतोत्पादकम् चित्तव्यामोहकत्वेन सदसद्विवेकापहारकत्वात्, दुरधिष्ठितम् दुष्परिणाममित्यर्थ. जन्मजरामरणसंकुलानन्तससारपरिभ्रमणहेतुत्वात् । अब्रह्मचर्यम् अकुशलानुष्ठानरूप मैथुनमित्यर्थः, नाऽऽचरन्ति= न सेवन्ते । 'घोर' इति पदेन हिंसादिदारणकर्मकारणता सूचिता । 'पमाय' इति

चौथा स्थान कहते हैं—' अबंभचरिय ' इत्यादि ।

चारित्रका सर्वथा विराधक प्राणातिपात प्रभृति से भीत भिक्षु ससारमें घोर दु खोंके जनक , सत असत् के विवेक से विकल बनाकर अनवधानता रूप प्रमाद-को पैदा करने वाले जन्म जरा मरणकी पीडा (दु ख) से भरे हुए अपारससारमें बार बार परिभ्रमण करानेके कारण—दुष्फलदाता, अब्रह्मचर्य का कदापि सेवन नहीं करते,। 'घोर' पदसे यह सूचित किया है कि अब्रह्मचर्य हिंसा आदि अनेक दारुण कर्मोंका कारण है।

ચોથુ સ્થાન કહે છે- अबंभचरिय- ઇત્યાદિ- ચારિત્રની સર્વથા વિરાધના કરનારા પ્રાણાતિપાત આદિથી ડરીતા ભિક્ષુ, સંસારમા ઘોર દુ ખોના જનક, સત્ અસતના વિવેકથી વિકળ બનાવીને અનવધાનતારૂપ પ્રમાદને પેદા કરનારા જન્મ જરા મરણની પીડાથી ભરેલા અપાર સંસારમા વારવાર પરિભ્રમણ કરાવવાના કારણરૂપ, દુષ્ફલદાતા એવા અબ્રહ્મચર્યનુ સેવન કદાપિ કરતા નથી ઘોર શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યુ છે કે અબ્રહ્મચર્ય હિંસા આદિ અનેક દારૂણ કર્મોનુ કારણ છે

पदेन तत्सेवकमाणिव्यामोहकत्वं प्रदर्शितम्। 'दुरहिट्ठिय' इत्यनेन कटुविपाकता प्रकटीकृता ॥१६॥

(मूलम्)

३ १ २ ४
मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं ।
५ ८ ६ ९ ७
तम्हा मेहुणससग्ग निग्गंथा वज्जयंति ण ॥१७॥

॥ छाया ॥

मूलमेतदधर्मस्य महादोषसमुच्छ्रयम् ।
तस्मान्मैथुनसंसर्गं निर्ग्रन्था वर्जयन्ति तं ॥१७॥

॥ टीका ॥

'मूलमेय' इत्यादि—

एतद्=अब्रह्मचर्यम् अधर्मस्य=सावद्यानुष्ठानस्य मूलं=बीजं, महादोषसमुच्छ्रयम्=महादोषाणां वधबन्धनादिरूपाणां समुच्छ्रयः पुञ्जो यत्र तत् तथोक्तम्=सकलमहादोषराशिरूपं, तस्मात्कारणात् निर्ग्रन्थाः=साधवः ण=तं प्राणाति-

---

'पमाय' पदसे यह प्रदर्शित किया है कि—उसका सेवन करने वाला प्राणी मूढ (विवेक विकल) बन जाता है। 'दुरहिट्ठिय' पदसे अब्रह्मचर्य को नारकादि कटु फलका दाता बताया है ॥ १६ ॥

'मूलमेय' इत्यादि। यह अब्रह्मचर्य अधर्मका मूल है, तथा वधबन्धनादि महा-दोषों का स्थान है। इस कारण श्रमण उस प्राणातिपात प्रभृति पापोंको पैदा करने वाला

પમાય શબ્દથી એમ પ્રદર્શિત કર્યું છે કે એનું સેવન કરનાર પ્રાણી મૂઢ (વિવેકવિકળ) બની જાય છે दुरहिट्ठिय શબ્દથી અબ્રહ્મચર્યને નારકાદિ કટુફળનું દાતા બતાવ્યું છે (૧૬)

मूलमेय ઇત્યાદિ એ અબ્રહ્મચર્ય અધર્મનું મૂળ છે, તથા વધબંધનાદિ મહાદોષોની ખાણ છે એ કારણે શ્રમણ એ પ્રાણાતિપાત આદિ પાપોને પેદા

पातादिपापकऽापकारणतया मैथुनसंसर्गम्=वनितालापतत्कथातदङ्गप्रत्यङ्गनिरीक्षणादिकं वर्जयन्ति=परित्यजन्ति । 'अहम्मस्स मूलम्' इत्यनेनाब्रह्मसेविनः पापप्रभयो न भवति मुहुर्मुहुरशुभभावनाङ्कुरोत्पत्तेरवश्यभावित्वादिति सूचितम्। 'महादोससमुस्सय' इति पदेन सकलव्रतभङ्गप्रसङ्गः प्रकटितः । 'मेहुणसग्ग' इत्यनेनैकस्या अपि कस्याश्चिद् वृत्तेर्भङ्गे व्रतमालिन्यमावेदितम्, 'निग्गथा' इति पदेन अब्रह्मचर्यवर्जका एव निर्ग्रन्था भवितुमर्हन्तीत्यावेदितम् ॥१७॥

पञ्चमस्थानमाह—

(मूलम्)

२ ३ ४ ६ ७ ८ ५
विडमुब्भेइमं लोण तिल्लं सप्पिं च फाणियं ।
११ १० १२ १
न ते सनिहिमिच्छति नायपुत्तवओरया ॥१८॥

मैथुन ससर्ग—अथात् स्त्रियों के साथ बैठकर वार्तालाप कथा अङ्गोपाङ्गों का देखना आदि का परित्याग करते हैं। 'अहम्मस्स मूल' पदसे यह प्रकट किया है कि—अब्रह्मसेवीके पापों का अन्त नहीं हो सकता, क्योंकि बार बार अशुभ भावना रूपी अङ्कुरोंकी उत्पत्ति अवश्य होती है। 'महादोससमुस्सय' पदसे सकल व्रतों का भङ्ग प्रदर्शित किया है। 'मेहुणससग्ग' से ब्रह्मचर्य की किसी भी बाड का भंग करने से व्रतों में मलिनता प्रगट की है। 'निग्गथ' पदसे यह व्यक्त किया है कि—अब्रह्मचर्यका त्यागी ही निर्ग्रन्थ हो सकता है ॥ १७ ॥

કરનારા મૈથુન સંસર્ગ - અર્થાત્ સ્ત્રીઓની સાથે બેસીને વાર્તાલાપ કથા અંગોપાંગોને જોવા- આદિનો પરિત્યાગ કરે છે अहम्मस्स मूल એ પદથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે - અબ્રહ્મચર્યના પાપોનો અંત આવી શકતો નથી, કારણકે વારવાર અશુભ ભાવનારૂપી અંકુરોની ઉત્પત્તિ અવશ્ય થાય છે महादोससमुस्सय પદથી સર્વવ્રતોનો ભંગ પ્રદર્શિત કર્યો છે मेहुणसंसग्ग थी બ્રહ્મચર્યની કોઈ પણ વાડને ભંગ કરવાથી વ્રતોમાં મલિનતા પ્રકટ કરી છે निग्गथ શબ્દથી એમ વ્યક્ત કર્યું છે કે— અબ્રહ્મચર્યના ત્યાગીજ નિર્ગ્રંથ થઈ શકે છે ॥૧૭॥

(छाया)

विडमुद्भेद्य लवणं तैलं सर्पिश्च फाणितम् ।
न ते सन्निधिमिच्छन्ति ज्ञातपुत्रवचोरताः ॥१८॥

(टीका)

' विड ' इत्यादि—

ज्ञातपुत्रवचोरताः=ज्ञातः सिद्धार्थभूपस्तस्य पुत्रः ज्ञातपुत्रः=वर्धमान-स्वामी तस्य वचसि=वचने रताः=तत्पराः प्रवचनाराधका-इत्यर्थः ते=निर्ग्रन्थत्वेन प्रसिद्धाः साधवः विडम्=गोमूत्रादिपक्वलवणविशेषः, 'विट्लवण' इति भाषायाम्, उद्भेद्यं=समुद्रलवणम्, लवणं=सामान्यलवणम्, अत्र सर्वं लवणमचित्तमेव निषिध्यते, सचित्तस्य तु साधूनामग्राह्यत्वेन सर्वथा तदप्राप्तेः। तैलम्=तिलादिसमुत्पन्नं, सर्पिः=घृतं, फाणितं=द्रवगुडः, उपलक्षणमेतदशनादीनाम्, एतेषां पूर्वोक्त-वस्तूनां संनिधिम् सम्=सम्यक् प्रकारेण निधीयते स्थाप्यते आत्मा अनेन दुर्गता-

पाचवें स्थानका प्रतिपादन करते हैं —

' विड ' इत्यादि। ज्ञातपुत्र भगवान् वर्धमान स्वामी के वचन की आराधना करनेमें तत्पर निर्ग्रन्थ मुनिराज–विट् लवण, समुद्री लवण, तथासामान्य लवण की सन्निधि करने की इच्छा भी नहीं करते। यह सब अचित्त नमककी सनिधिका त्याग समझना चाहिए। क्यों कि सचित्त नमक साधुओं को सर्वथा त्याज्य है, तथा तेल, घी, गीलागुड, और गुड मात्र, उपलक्षणसे समस्त अशनादि वस्तुओं की सनिधि का त्याग करते है। आत्मा जिससे नरक आदि दुर्गति का प्राप्त होता है उस सनिधि कहते हैं। सनिधि दो

પાચમા સ્થાનનું પ્રતિપાદન કરે છે —

વિટ– ઇત્યાદિ- જ્ઞાતપુત્ર ભગવાન્ વર્ધમાન સ્વામીના વચનોની આરાધના કરવામાં તત્પર નિર્ગ્રન્થ મુનિરાજ વિટ્ લવણ સમુદ્રનું લવણ (મીઠું) તથા સામાન્ય લવણથી સંનિધિ કરવાની પણ ઇચ્છા કરે નહિ એ બધી જાતના અચિત્ત લવણની સંનિધિનો ત્યાગ સમજવો સચિત્ત લવણ તો સાધુઓને સર્વથા ત્યાજ્ય હોય છે એજ રીતે તેલ, ઘી, નરમ ગોળ અને ગોળ માત્ર, ઉપલક્ષણથી બધી અશનાદિ વસ્તુઓની સંનિધિનો ત્યાગ સાધુઓ કરે છે આત્મા જેથી નરક આદિ દુર્ગતિને

विति संनिधिः। आत्मदुर्गतिसाधनसग्रहः, स द्रव्यभावभेदाद्द्विधा, तत्र द्रव्य संनिधिः, रात्रावशनादीना संस्थापनम्, भावसंनिधिस्तु-क्रोधादिसंग्रहस्तमुभयमपि सनिधिं नेच्छन्ति=नाभिलपन्ति। संनिधेरिच्छामात्रमपि न कुर्वन्तीत्यर्थः। सिक्थमात्रमपि रात्रौ न स्थापयेदिति भावः। 'नायपुत्तवओरया' इति पदेन जिनाज्ञासमाराधका एव संनिधिवर्जका भवन्तीति व्यज्यते ॥१८॥

सनिधिदोषमाह—

॥ मूलम् ॥

२ १ ३ १४ ६ ७
लोहस्सेसणुफासे मन्ने अन्नयरामवि ।
४ ५ ८ ९ ११ १३ १२ १०
जे सिया संनिहिकामे गिही पव्वइए न से ॥१९॥

(छाया)

लोभस्यैपः अनुस्पर्शः मन्ये अन्यतरमपि ।
यः स्यात् संनिधिं कामयते गृही प्रव्रजितो न सः ॥१९॥

प्रकार की है (१) द्रव्य सनिधि, और (२) भाव सनिधि। रात्रिमें लवण आदिका सग्रह करना द्रव्यसनिधि है, क्रोध आदिका सग्रह करना भावसनिधि है। तात्पर्य यह है कि सीथमात्र भी रात्रि में नहीं रखना चाहिए। (नायपुत्तवओरया) पदसे यह सूचित किया है कि—अर्हन्त भगवान की आज्ञाके आराधक अनगार ही संनिधिका परिहार कर सकते हैं ॥ १८ ॥

प्राप्त थाय छे तेने સનિધિ કહે છે સનિધિ બે પ્રકારની છે (૧) દ્રવ્ય સનિધિ (૨) ભાવ સનિધિ રાત્રે લવણ આદિનો સગ્રહ કરવો એ દ્રવ્ય સનિધિ છે ક્રોધ આદિનો સગ્રહ કરવો એ ભાવસનિધિ છે તાત્પર્ય એ છે કે જરા જેટલુ લવણ પણ રાત્રે રાખવુ ન જોઇએ नायपुत्तवओरया પદથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે— અર્હન્ત ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક અનગારો જ સનિધિનો પરિહાર કરી શકે છે ॥૧૮॥

(टीका)

'लोहस्स' इत्यादि—

एषः=सनिधिः लोभस्य=असन्तोषात्मकाऽऽत्मविभावपरिणामस्य अनुस्पर्शः= प्रभावः, अतः यः स्यात्=कदाचित् अन्यतरमपि=एकमपि संनिधिं कामयते= इच्छति स गृही=गृहस्थः न तु प्रव्रजितः नतु साधुः इत्यहं मन्ये=निश्चिनोमि, लोभस्य चारित्रविफलकारितया तत्प्रभावसमुद्भावितसनिधिसेवनपरस्य साधो-र्गृहस्थसमवृत्तित्वेनासाधुत्वमापततीति तीर्थकरैस्तथा संमतत्वादिति भावः ॥१९॥

ननु सनिधेः परिवर्जनीयत्वे साधुना वस्त्रादिधारणमपि सनिधिदोषा-क्रान्तत्वेन परिवर्जनीय स्यादत आह- 'जंपी' त्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
जंपि वत्थं च पायं वा कंबलं पायपुछणं ।
८ ९ १० ११ १२
तंपि संजमलज्जट्ठा, धारंति परिहरंति य ॥२०॥

सनिधि के दोष कहते हैं—'लोहस्से' इत्यादि ।

यह—सनिधि लोभका प्रभाव है इसलिए जो किसीभी समय किसी तरह की सनिधिकी अभिलाषा करता है वह गृहस्थ है साधु नहीं है। ऐसामैं मानता हूँ। तात्पर्य यह है कि लोभ चारित्रका विनाश करने वाला है, अतः लोभके प्रभाव से उत्पन्न होने वाली सनिधिका सेवन करने वाला साधु गृहस्थके समान वृत्तिमान होने से असाधु हो जाता है। इसलिए सनिधिका त्याग करना चाहिए ॥ १९ ॥

સનિધિના દોષો કહે છે- લોહસ્સે- ઇત્યાદિ—

આ સનિધિ લોભનો પ્રભાવ છે, તેથી જે કોઇ પણ સમયે કોઇ તરેહની સનિધિની અભિલાષા કરે છે તે ગૃહસ્થ છે, સાધુ નથી, એમ હું માનું છું તાત્પર્ય એ છે કે લોભ ચારિત્રનો વિનાશ કરનારો છે, તેથી લોભના પ્રભાવથી ઉત્પન્ન થનારી સનિધિનું સેવન કરનારો સાધુ ગૃહસ્થની સમાનવૃત્તિવાળો હોવાથી અસાધુ બની જાય છે તેથી સનિધિનો ત્યાગ કરવો જોઇએ ॥૧૯॥

सः=निर्मलवस्त्रादिग्रहणोपभोगः परिग्रह नोक्तः=परिग्रहत्वेन न प्रतिपादितः, वस्त्रादेश्चारित्रपुष्टालम्बनत्वात्, किंतु मूर्च्छा=वस्त्रपात्राद्यासक्तिः सैव परिग्रहः उक्तः= परिग्रहत्वेन कथितः, इति=एवं महर्षिणा=ऋषिराजेन श्री सुधर्मस्वामिना जम्बूस्वामिनं प्रति उक्तम्=अभिहितम् ॥२१॥

ननु अकिंचनानां वस्त्रादिसुखलोभेन तत्प्राप्तये तदासक्तिर्दृश्यत एव, तर्हि वस्त्रादिमतामनुभूततज्जनितसुखानां तद्विरहमनिच्छतां, तत्रासक्तिरनिवार्येति साधूनां वस्त्रादिधारणेऽपि कुतो न मूर्च्छावत्त्वम् ?

इत्याशङ्कायामाह—

ने निर्दोष वस्त्र आदिका ग्रहण करना परिग्रह नहीं बताया है। क्योंकि वस्त्र आदि चारित्र के पुष्टालम्बन हैं किंतु वस्त्र पात्र आदि में आसक्तिरूप मूर्च्छाको परिग्रह कहा है । ऐसा कथन श्रीसुधर्मास्वामीने जम्बूस्वामीके प्रति किया है. ॥ २१ ॥

हे गुरुमहाराज ! अकिंचनोंको (जिनके पास कुछ भी नहीं है ऐसे दीन हीन जनोंको) वस्त्रादि जन्य सुखकी प्राप्तिके लोभसे वस्त्रादि में आसक्ति देखी जाती है। तो वस्त्रादि के धारी–वस्त्रादि जन्य सुखका भोगने वालों को तथा उनका त्याग करने की इच्छा न रखने वालों को उन (वस्त्रादिमें) आसक्ति होना अनिवार्य है। अतएव वस्त्रादि रखने पर भी साधु मूर्च्छावान क्यों नहीं होते? इस प्रश्नका समाधान करते हैं—'सव्वत्थु वहिणा' इत्यादि।

ભગવાને નિર્દોષ વસ્ત્રાદિનું ગ્રહણ કરવું એને પરિગ્રહ કહ્યો નથી કારણ કે વસ્ત્રાદિ ચારિત્રનાં પુષ્ટાલમ્બનો છે, કિંતુ વસ્ત્રપાત્રાદિમાં આસક્તિરૂપ મૂર્છાને પરિગ્રહ કહ્યો છે એવું કથન શ્રી સુધર્મા સ્વામીએ જમ્બૂ સ્વામીની પ્રતિ કર્યું છે ॥૨૧॥

હે ગુરૂમહારાજ ! અકિંચનોમાં (જેમની પાસે કાંઈ પણ નથી એવા દીન–હીન જનોમાં) વસ્ત્રાદિજન્ય સુખની પ્રાપ્તિના લોભથી વસ્ત્રાદિમાં આસક્તિ જોવામાં આવે છે તો વસ્ત્રાદિને ધારણ કરનારાઓને–વસ્ત્રાદિ જન્ય સુખને ભોગવનારાઓને તથા તેનો ત્યાગ કરવાની ઈચ્છા ન રાખનારાઓને એ વસ્ત્રાદિમાં આસક્તિ થવી એ અનિવાર્ય છે એટલે વસ્ત્રાદિ રાખવા છતાં પણ સાધુ મૂર્છાવાન કેમ નથી થતા? એ પ્રશ્નનું સમાધાન કરે છે— सव्वत्थुवहिणा— ઇત્યાદિ—

॥ मूलम् ॥

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा संरक्खणपरिग्गहे ।
अवि अप्पणो वि देहम्मि नायरंति ममाइयं ॥२२॥

॥ छाया ॥

सर्वत्रोपधिना बुद्धाः संरक्षणपरिग्रहे ।
अपि आत्मनोऽपि देहे नाचरन्ति ममत्वम् ॥२२॥

॥ टीका ॥

'सव्वत्थु' इत्यादि—

सर्वत्र=सर्वस्मिन् क्षेत्रकालादिके उपधिना=यथाकल्प्यवस्त्रादिना सहिता अपि बुद्धाः=सम्यग्ज्ञानवन्तः अवगताचारगोचरा मुनय इत्यर्थः, आत्मनः=स्वस्य देहेऽपि=परमप्रेमास्पदे शरीरेऽपि ममत्वं=मूर्च्छा नाचरन्ति=नकुर्वन्ति । किं पुनः संरक्षणपरिग्रहे=संरक्षणार्थे=परमकरुणाविष्कारपूर्वकषड्जीवनिकायरक्षामात्रप्रयोजनके परिग्रहे=वस्त्राद्यङ्गीकारलक्षणे किं पुनर्ममत्वशङ्का, अपितुनेत्यर्थः ।

सब क्षेत्र और सब काल मे कल्पके अनुसार प्राप्त वस्त्र आदिसे युक्तभी आचार-गोचर के ज्ञानी मुनि अपने शरीर पर भी ममता नहीं करते तो परमकरुणापूर्वक केवल षट्जीव निकाय की रक्षाके लिए धारण किये जाने वाले वस्त्रादि पर ममता की आशङ्का हो कैसे की जा सकती है।

सर्व क्षेत्र अने सर्व काळमा कल्पने अनुसारे प्राप्त वस्त्रादिथी युक्त पण आचार-गोचरना ज्ञानी मुनि पोताना शरीर पर पण ममता करता नथी, तो परम करुणा पूर्वक केवळ षड् जीवनिकायनी रक्षाने माटे धारण करवामा आवनार वस्त्रादि पर ममतानी आशंका केवी रीते करी शकाय? बुद्धा शब्दथी एम

'बुद्धा' इति पदेन मायो मूर्च्छानिदान चारित्रमोहनीयतिमिरम् उदित सम्यग्ज्ञानभास्करकिरणविद्योतितान्तःकरणगगनाना मुनीना समीपे नावस्थातुमीष्टे, किं पुनस्तत्कार्यभूतमूर्च्छावस्थानशङ्का, अपितु नेति व्यज्यते ॥२२॥

अथ षष्ठस्थानमाह—

॥ मूलम् ॥

अहो निच्च तवो कम्म सव्वबुद्धेहि वण्णिय ।
जा य लज्जासमावित्ती एगभत्त च भोयण ॥२३॥

॥ छाया ॥

अहो नित्यं तपः कर्म सर्वबुद्धै वर्णितम् ।
या च लज्जासमावृत्तिः एकभक्त च भोजनम् ॥२३॥

(टीका)

'अहो' इत्यादि—

या च लज्जासमावृत्ति.=लज्जा=सयमः तस्याः समावृत्तिः=सम्यगावर्तन पुनःपुनरनुसन्धान —तत्सम्पादकत्वेनैकभक्तमपि सयमानुसन्धानपूर्वकमिति

'बुद्धा' पदसे यह ध्वनित होता है कि–सम्यग्ज्ञान रूपी सूर्य की किरणो से प्रकाशमान अन्त करण रूपी आकाशवाले मुनियो के समीप मूर्छा का मूल चारित्र-मोहनीयरूपी तिमिर नहीं ठहर सकता, तो उसका कार्य मूर्छा कैसे ठहर सकती है, किन्तु नहीं ठहर सकती ॥२२॥

छठा स्थान कहते है— 'अहोनिच्च' इत्यादि ।

अहो! जिन शासन की महिमा कि एक भक्त भोजन तथा सयम का अनुसधान

ધ્વનિત થાય છે કે- સમ્યગ્ જ્ઞાનરૂપી સૂર્યના કિરણોથી પ્રકાશમાન અન્ત કરણરૂપી આકાશવાળા મુનિઓના સમીપે મૂર્છાના મૂળરૂપ ચારિત્ર મોહનીયરૂપી તિમિર રહી શકતું નથી, તો તેનું કાર્ય મૂર્છા કેવી રીતે રહી શકે? અર્થાત્ રહી શકેજ નહિ ॥૨૨॥

છઠ્ઠું સ્થાન કહે છે— अहो निच्च० इत्यादि—

અહો! જિનશાસનનો કેવો મહિમા છે કે- એક ભક્ત અર્થાત્ એક સંયમનું

बोध्यम्। एकभक्तम् एकभक्ताख्यभोजनं रात्रिभोजनाभावविशिष्टं दिवाभोजनम्। एकाशनं वा, एकवारभोजनमित्यर्थः। यद्वा– लज्जासमा संयमानुरूपा संयमाविरोधिनी वृत्तिः=जिविका तत्स्वरूपम् एकभक्तं भोजनमित्यन्वयः। अथवा चकारद्वयेन द्वयं न विशेष्यविशेषणभावापन्नं, किन्तु पृथगर्थबोधकं, तथाच या च लज्जासमावृत्तिः=संयमानुरूपो व्यवहारः भिक्षाचर्यादि' च=अपिच एकभक्तम्= एकभक्ताख्यं भोजनम्, एतद्द्वयं साधोर्नित्यं कर्म=प्रात्यहिकी क्रिया सर्वबुद्धैः सकलतीर्थकरैः तपः वर्णितं=कथितम्। यद्वा–एतद्द्वयं सर्वबुद्धैः सर्वतीर्थकरैः साधोर्नित्यं=प्रतिसमयसंपद्यमानं तपः वर्णितम्। अहो ? इदमाश्चर्यं यद्–एकभक्तदर्थभिक्षाचर्यादिसकलक्रियाकलापोऽपि साधोस्तपश्चर्यैव सिध्यतीति भावः ॥२३॥

रात्रिभोजनैषणादोषमाह—

(मूलम्)

७ १ २ ६ ३ ४ ५
सतिमे सुहुमा पाणा तसा अदुव थावरा।
८ ९ १० ११ १२ १३
जाइं राओ अपासतो कहमेसणियं चरे ॥२४॥

॥ छाया ॥

सन्ति इमे सूक्ष्माः प्राणाः त्रसा अथवा स्थावराः।
यान् रात्रौ अपश्यन् कथमेषणीयं चरेत् ॥२४॥

रखना और दिनमें एक बार भोजन करना, अथवा दिनहीमें भोजन करना, इस प्रति दिन होने वाले कर्म (क्रिया) को भी भगवानने तपश्चर्या कहा है। अथवा संयमसे अविरुद्ध एक भक्त करनेको अथवा संयमसे अविरुद्ध भिक्षाचर्यादि प्रत्येक क्रियाको तथा एकभक्तभोजन-रूप प्रतिदिन होनेवाली क्रियाको भी भगवानने तप कहा है ॥२३॥

અનુસંધાન રાખવું અને દિવસમાં એકવાર ભોજન કરવું, અથવા દિવસમાંજ ભોજન કરવું, એ પ્રતિદિન થનારા કર્મ (ક્રિયા)ને પણ ભગવાને તપશ્ચર્યા કહી છે અથવા સંયમથી અવિરૂદ્ધ એક ભકતને અથવા સંયમથી અવિરૂદ્ધ ભિક્ષા-ચર્યાદિ પ્રત્યેક ક્રિયાને તથા એક ભકત ભોજનરૂપ પ્રતિદિન થનારી ક્રિયાને પણ ભગવાને તપ કહ્યું છે ॥૨૩॥

॥ टीका ॥

'सतिमे' इत्यादि—

इमे=प्रत्यक्षं दृश्यमानाः सूक्ष्माः=अतिलघुतनवः त्रसाः=द्वीन्द्रियादयः अथवा स्थावराः=पृथिव्यादयः प्राणाः प्राणिनः सन्ति=विद्यन्ते 'जाइं' इति प्राकृतत्वान्नपुंसकम्। यान् प्राणिनः रात्रौ=रजन्याम् अपश्यन्=चक्षुर्गोचरत्वाभावादनवलोकयन् साधुः कथं=केन विधिना एषणीयम् आधाकर्मादिदोषविशुद्धमप्यन्नादिकं चरेत्=भुञ्जीत। रात्रौ विशुद्धेऽप्यन्नादिके जीवपातादिना सत्त्वानामवश्यमुपघातात्, तेषां चक्षुःपथानवतीर्णतया तद्विराधनाया दुर्वारत्वात्। सौरे प्रकाशे यथा जीवाः सहजतो लक्ष्यन्ते, न तथा रात्रौ चान्द्रे सत्यपि प्रकाशे प्रयत्नेनापि लक्षिता भवन्तीति भावः ॥२४॥

रात्रिभोजनके दोष बताते हैं— सतिमे इत्यादि।

ये प्रत्यक्षमें दिखाई देने वाले सूक्ष्म त्रस और स्थावर प्राणी विद्यमान हैं ये प्राणी रात्रिमें चक्षुरिन्द्रिय के विषय नहीं होते फिर साधु रात्रिमें आधाकर्मादि दोषों से रहित आहार का कैसे भोग सकते हैं किंतु नहीं भोग सकते। क्यों कि रात्रिमें प्राणीका उपमर्दन अवश्य होता है। आहार भले ही विशुद्ध हो परन्तु उसमें जीव गिर जाते हैं। तो उनकी विराधना अवश्य होती है जैसे सूर्य के प्रकाश में जीव सहज दिखाई देते हैं वैसे चन्द्रमा के प्रकाशमें आंखें गडा गडा कर देखने से भी नहीं दीखते ॥२४॥

रात्रि भोजनना दोष बतावे छे— सतिमे० इत्यादि—

जे प्रत्यक्ष देखाता सूक्ष्म त्रस अने स्थावर प्राणीओ विद्यमान छे ते प्राणीओ रात्रे चक्षुइंद्रियनो विषय थता नथी (देखाता नथी) तो पछी साधु रात्रे आधाकर्मादि दोषोथी रहित आहारने केवी रीते भोगवी शके, अर्थात् न भोगवी शके, कारण के रात्रे प्राणीनुं उपमर्दन जरूर थाय छे आहार भले विशुद्ध होय, परन्तु तेमां जीवो पडे छे, तो तेमनी विराधना जरूर थाय छे. जेम सूर्यना प्रकाशमां जीव सहेजे जोवामां आवे छे, तेम चंद्रमाना प्रकाशमां आंखो खोडी राखवाथी पण जोवामां आवता नथी ॥२४॥

रात्रिभोजननैषणादूषणान्यभिधाय रात्रौ भक्तपानादिग्रहणदूषणान्याह—

(मूलम्)

उदउल्लं बीयसंसत्तं पाणा निवडिया महिं ।
दिया ताइं विवज्जिज्जा राओ तत्थ कहं चरे ॥२५॥

(छाया)

उदकार्द्रा बीजसंसक्ता प्राणा निपतिता महीम् ।
दिवा तान् विवर्जयेत् रात्रौ तत्र कथं चरेत् ॥२५॥

॥ टीका ॥

'उदउल्लं' इत्यादि—

उदकार्द्रा=सचित्तजलसंसिक्ता सचित्तजलप्रक्षेपेण वृष्ट्या वेतिभावः। बीज-संसक्ता=शाल्यादियुक्ताम्। उपलक्षणमेतद्-हरितकायपुष्पादीनामपि। महीं= भूमिं, निपतिताः तदाश्रिताः प्राणाः प्राणिनः द्वीन्द्रियादयस्तिष्ठन्ति। 'ताइं' प्राकृतत्वान्नपुंसकत्वम्। तान् प्राणिन इत्यर्थः। दिवा=दिवसे विवर्जयेत् तद्विरा-धना परिहर्तुं शक्नुयात्, किंतु तत्र मह्यां रात्रौ कथं=केन विधिना चरेत्=गच्छेत्। तदा प्राणिविराधनापरिहारस्य कर्तुमशक्यत्वादितिभावः।

यद्वा—

(छाया)

उदकार्द्रं बीजसंसक्तं प्राणा निपतिता मह्याम् ।
दिवा तानि विवर्जयेत् रात्रौ तत्र कथं चरेत् ॥२५॥

रात्रिमें भोजन करनेका निषेध कहकर रात्रिमें अन्नपानादिक ग्रहण करनेके दोष कहते हैं— 'उदउल्ल' इत्यादि ।

રાત્રે ભોજન કરવાનો નિષેધ કહીને હવે રાત્રિમાં અન્નપાનાદિ ગ્રહણ કરવાના દોષો કહે છે ઉદઉલ્લં ઇત્યાદિ—

॥ टीका ॥

उदकार्द्रं=सचित्तजलसंसृष्टं, तथा बीजसंक्रम्=बीजेन संसक्तमोदनादिकं तथा प्राणाः=प्राणिनः मह्या=पृथिव्यां, निपतिताः तत्र वर्तमानाः तिष्ठन्ति। तानि=उदकार्द्रादीनि दिवा=दिवसे विवर्जयेत्=प्राण्युपमर्दनभिया परिहर्तुं शक्नुयात्, तानि परित्यज्यान्यविरत्रमशनादिकं गृह्णीयात्, अन्येन पथा वा गच्छेदिति भावः। रात्रौ=निशि तु तत्र=उदकार्द्रादिषु कथं चरेत् अलक्ष्यतया प्राण्युपमर्दनवारणाशक्यत्वेन=केन विधिना व्यवहरेदित्यर्थः, कथमुदकार्द्रादीनि गृह्णीयात्, कथं वा पथि गच्छेदितिभावः ॥२५॥

उपसंहरति—

(मूलम्)

४ ५ ६ ७ ७ ३
एय च दोस दट्ठूण नायपुत्तेण भासियं।

८ १० ११ १ ९
सव्वाहार न भुंजंति निग्गन्था राइभोयण ॥२६॥

छांट हुए जल या वरसा के जल से युक्त, शालि आदिके बीज, तथा अन्य हरित काय से युक्त पृथिवीपर अनेक प्राणी होते हैं अथवा सचित्त जलसे तथा बीजसे संसृष्ट(मिश्रित) अन्नादि होते हैं, और पृथिवी के आश्रित प्राणी रहते हैं। दिनमें उदक आदि से युक्त आहार का तथा प्राणियों की विराधना का त्याग किया जा सकता है, किन्तु रात्रिमें नहीं, इस लिए साधु रात्रिमें भिक्षा के लिए कैसे गमन कर सकते हैं किंतु नहीं कर सकते ॥२५॥

છાંટેલા જળથી યા વરસાદના પાણીથી યુક્ત, શાલિ આદિના બીજ તથા બીજી લીલોતરીથી યુક્ત, પૃથ્વીપર અનેક પ્રાણીઓ હોય છે અથવા સચિત્ત જળથી તથા બીજથી મિશ્રિત અન્નાદિ હોય છે અને પૃથ્વીના આશ્રિત પ્રાણીઓ રહે છે દિવસમાં પાણી આદિથી યુક્ત આહારનો તથા પ્રાણીઓની વિરાધનાનો ત્યાગ કરી શકાય છે, પરન્તુ રાત્રિના કરી શકાતો નથી, તેથી સાધુ રાત્રે ભિક્ષાને માટે કેવી રીતે જઈ શકે? અર્થાત્ નજ જઈ શકે ॥૨૫॥

॥ गाथा ॥

एतं च दोष दृष्ट्वा ज्ञातपुत्रेण भाषितम् ।
सर्वाहार न भुञ्जते निर्ग्रन्था रात्रिभोजनम् ॥२६॥

॥ टीका ॥

'एयच' इत्यादि—

निर्ग्रन्थाः साधवः ज्ञातपुत्रेण=महावीरेण भाषितम्=अभिहितम् एतं=प्रागुक्तं प्राण्युपमर्दनलक्षण च शब्देन आत्मविराधनारूप मार्गे व्यालवृश्चिकादिदंशेन, भोजने लूतादि (मकडी) विषजन्तुभक्षणेन चेति भावः, दोष=पापं दृष्ट्वा ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य सर्वाहार=अशनपानादिक रात्रिभोजनं न भुञ्जते न कुर्वन्तीत्यर्थः, धातूनामनेकार्थत्वात् यद्वा 'ज्ञातपुत्रेण एतं च दोष दृष्ट्वा भाषित=(परिहार्यत्वेन-कथितं) सर्वाहार रात्रिभोजनं निर्ग्रन्था न भुञ्जते इत्यन्वयः । ज्ञातपुत्रेणेति पद

अब उपसहार करते है— 'एय च' इत्यादि ।

पहले कहे हुए प्राणियों के उपमर्दन से तथा मार्गमें साप बिच्छू के काटने से अथवा आहार के साथ मकडी आदि का भक्षण हो जाने से सयम तथा आमा की विराधना होती है । ये भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित दोष जानकर अर्थात भगवानने रात्रिभोजन में महादोष कहा है ऐसा विचार कर साधु अशन आदि सब प्रकारके आहार का रात्रि में त्याग करते है— रात्रिभोजन नहीं करते । अथवा ज्ञानपुत्र महा-

---

હવે ઉપસંહાર કરે છે एयच ઇત્યાદિ—

પહેલા કહેવામા આવ્યુ છે તેમ પ્રાણીઓના ઉપમર્દનથી તથા માર્ગમા સાપ વીંછી કરડવાથી અથવા આહારની સાથે કીડી આદિનુ ભક્ષણ થઇ જવાથી સયમ તથા આત્માની વિરાધના થાય છે ભગવાન્ મહાવીર સ્વામીએ પ્રતિપાદિત કરેલા એ દોષો જાણીને અર્થાત્ ભગવાને રાત્રિભોજનમા મહાદોષ કહેલો છે એવો વિચાર કરીને સાધુઓ અશનાદિ સર્વ પ્રકારના આહારનો રાત્રિમા ત્યાગ કરે છે– રાત્રિભોજન કરતા નથી અથવા જ્ઞાનપુત્ર મહાવીરે એ દોષોને જાણીને

तीर्थकरनिषिद्धतया रात्रिभोजनस्य सर्वथा वर्जनीयता प्रतिपादयति । 'सन्नाहारं' इति विशेषणेनान्नपानादेः स्वल्पमप्यंशमौषधरूपेणापि रात्रौ नाभ्यवहरेदिति सूचितम् ॥२६॥

व्रतषट्कानन्तरं कायषट्के वक्तव्ये तावत् पृथिवीकायरूपं सप्तमस्थानमाह—

॥ मूलम् ॥

८ ९ १० ३ ४ ५
पुढवीकायं न हिंसंति मणसा वयसा कायसा ।
६ ७ २ १
तिविहेण करणजोगेण संजया सुसमाहिया ॥२७॥

॥ छाया ॥

पृथिवीकायं न हिंसन्ति मनसा वचसा कायेन ।
त्रिविधेन करणयोगेन संयताः सुसमाहिताः ॥२७॥

तीर्थंकर इन दोषों को जान कर रात्रिभोजन को त्यागने योग्य बताया है इसलिए साधु रात्रिभोजन नहीं करते ।

'नायपुत्तेण' पदसे यह प्रगट होता है कि रात्रिभोजन का त्याग स्वयं तीर्थंकर भगवानने किया है अतः यह सर्वथा निःसन्देह त्याज्य है। 'सव्वाहार' पदसे यह प्रदर्शित किया है कि औषधरूप से भी अन्नपान आदि का अंशमात्र भी रात्रिमें न भोगे ॥२६॥

छहों व्रतों का कथन करने के अनन्तर छहकायों के व्याख्यान में पहले पृथिवी-काय रूप सातवां स्थान कहते हैं— 'पुढवीकायं' इत्यादि ।

રાત્રિભોજનને ત્યાગવા યોગ્ય કહ્યું છે, તેથી સાધુઓ રાત્રિભોજન કરતા નથી

નાયપુત્તેણ શબ્દથી એમ પ્રકટ થાય છે કે રાત્રિભોજનનો ત્યાગ સ્વયં તીર્થંકર ભગવાને કર્યો છે તેથી એ સર્વથા નિઃસંદેહ ત્યાજ્ય છે,

સવ્વાહાર શબ્દથી એમ પ્રદર્શિત કર્યું છે કે ઔષધરૂપે પણ અન્નપાનાદિનો અંશ માત્ર પણ રાત્રિમાં સાધુ ભોગવે નહિ ॥૨૬॥

છએ વ્રતોનું કથન કર્યા પછી છ કાયોના વ્યાખ્યાનમાં પહેલાં પૃથ્વીકાયરૂપ સાતમું સ્થાન કહે છે - પુઢવીકાયં ઇત્યાદિ

(टीका)

'पुढवीकाय' इत्यादि—

'सुसमाहिताः=सम्यक्समाधिमन्तः' संयमरक्षणतत्परा इत्यर्थः। संयताः=साधवः मनसा वचसा कायेन 'त्रिविधेन=मनोवाक्कायैतद्गतत्रित्वसंख्याकृतभेदत्रयविशिष्टेन, करणयोगेन=करण=चरणकरणाऽनुमोदनलक्षणस्त्रिविधो व्यापारस्तस्ययोगः=मनोवाक्कायेन प्रत्येकं सम्बन्धः तेन तथोक्तेन पृथिवीकाय न हिंसन्ति=नोपमर्दयन्ति ॥२७॥

पृथिविकायहिंसादोषानाह—

॥ मूलम् ॥

१ २ ११ १२ ३
पुढवीकाय विहिंसतो हिंसई उ तयस्सिए।
९ १० ७ ८ ४ ६ ५
तसे य विविहे पाणे चक्खुसे य अचक्खुसे ॥२८॥

॥ छाया ॥

पृथिवीकाय विहिंसन् हिनस्ति तु तदाश्रितान्।
त्रसाश्च विविधान् प्राणान् चक्षुषा च अचक्षुषा ॥२८॥

॥ टीका ॥

'पुढवीकाय' इत्यादि—

पृथिवीकायं विहिंसन्=नखतृणखनित्रादिना विराधयन तदाश्रितान मही-

संयम की रक्षा करने में सावधान साधु मन वचन कायसे तथा कृत कारित अनुमोदना से पृथिवीकाय की विराधना नहीं करते ॥२७॥

पृथिवीकाय की हिंसा के दोष बताते हैं— पुढवीकाय इत्यादि।

नख, तृण, तथा खनित्र आदि के द्वारा पृथिवीकाय की विराधना करने वाला

સંયમની રક્ષા કરવામાં સાવધાન સાધુ મનવચન કાયાથી તથા કૃતકારિત અનુમોદનાથી પૃથ્વીકાયની વિરાધના કરતા નથી (૨૭)

પૃથ્વીકાયની હિંસાના દોષો બતાવે છે – પુઢવીકાય ઇત્યાદિ

નખ, તૃણ તથા ખનિત્ર (ખોદવાનું ઓજાર) આદિ દ્વારા પૃથ્વી કાયની

बहिरन्तःस्थान, चाक्षुषान्=चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषयान् अचाक्षुषान्=लघु शरीरत्वाद् दृष्टिपथानारूढान् विविधान्=नैकप्रकारान् त्रसान्=द्वीन्द्रियादीन्, च शब्दात् स्थावरांश्च हिनस्त्येव, तुशब्दोऽत्रावधारणार्थः। पृथिवीकायहिंसकाना दृश्यादृश्यबहुविधजीवविराधना जायते इति भावः ॥२८॥

उपसंहरति—

(मूलम्)

तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण।
पुढवीकायसमारम्भं जावजीवइ वज्जए ॥२९॥

(छाया)

तस्माद् एतं विज्ञाय दोषं दुर्गतिवर्धनम्।
पृथिवीकायसमारम्भ यावज्जीवतया वर्जयेत् ॥२९॥

पृथिवीकाय के आश्रय में रहने वाले दिखाई देने योग्य अथवा सूक्ष्म शरीरवान् होने से न दिखाई देने योग्य विविध प्रकार के त्रस और स्थावर जीवों की विराधना करता है। अर्थात् अवश्य उन्हें पीडा पहुंचाता है। तात्पर्य यह है कि पृथिवीकाय की विराधना करने वालों को दृश्य अदृश्य विविध प्रकार के जीवों की विराधना का दोष लगता है ॥२८॥

વિરાધના કરનાર, પૃથ્વી કાયના આશ્રયમાં રહેવાવાળા દેખાતા અથવા સૂક્ષ્મ શરીરવાળા હોય તે ન દેખાતા એવા વિવિધ પ્રકારના ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની વિરાધના કરે છે અર્થાત એમને અવશ્ય પીડા ઉપજાવે છે તાત્પર્ય એ છે કે પૃથ્વીકાયની વિરાધના કરનારાઓને દૃશ્ય-અદૃશ્ય વિવિધ પ્રકારના જીવોની વિરાધનાનો દોષ લાગે છે ॥૨૮॥

॥ टीका ॥

'तम्हा' इत्यादि—

तस्मात्=पृथिवीकायहिंसनेन बहुविधप्राण्युपमर्दनहेतोः दुर्गतिवर्धनं= नरकादिदुःखकारकम् एतम्=अनुपदमुक्तं दोषं=पृथिवीकायाश्रितप्राणिविराधनालक्षणं कर्मबन्धं विज्ञाय=आगमोक्तविधिना ज्ञात्वा यावज्जीवतया=यावज्जीवम् आमरणकालमित्यर्थः पृथिवीकायसमारम्भं=पृथिवीविलेखनादिरूपं वर्जयेत्।

'दुग्गइवड्ढण' इति पदेन एकस्य पृथिवीकायस्य हिंसने तद्गतविविधत्रसस्थावरप्राण्युपमर्दनावश्यंभावेन पुनःपुनर्दुर्गतिगमनपरम्परामुद्भावयतीति सूचितम् ॥२९॥

अष्टमस्थानमाह—

॥ मूलम् ॥

८ ९ १० ३ ४ ५
आउकायं न हिंसंति मणसा वयसा कायसा।
६ ७ २ १
तिविहेण करणजोगेण संजया सुसमाहिया ॥३०॥

उपसहार— 'तम्हा' इत्यादि।

पृथिवीकाय की उपमर्दना से विविध प्राणियों की हिंसा होती है। इस कारण नरक आदि दुर्गतियों में लेजाने वाले कर्मबंध आदि अनेक दोष जानकर यावज्जीव पृथिवीको खोदना आदि रूप पृथिवीकाय के आरम्भ का साधु त्याग करे। दुग्गइवड्ढण' पदसे यह— सूचित किया है कि एक पृथिवीकाय की विराधना करने से पृथिवी पर आश्रित अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा होने से बारम्बार दुर्गतियों की प्राप्ति अवश्य होती है ॥२९॥

ઉપસંહાર— तम्हा ઇત્યાદિ— પૃથિવીકાયની ઉપમર્દનાથી વિવિધ પ્રાણીઓની હિંસા થાય છે એ કારણે નરક આદિ દુર્ગતિઓમાં લઇ જનારા કર્મબંધ આદિ અનેક દોષને જાણીને યાવજ્જીવ પૃથિવીને ખોદવી આદિ રૂપ પૃથ્વીકાયના આરંભનો સાધુ ત્યાગ કરે दुग्गइवड्ढण પદથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે એક પૃથિવીકાયની વિરાધના કરવાથી પૃથિવીપર આશ્રિત અનેક પ્રકારના ત્રસ-સ્થાવર પ્રાણીઓની હિંસા થવાથી વારંવાર દુર્ગતિઓની પ્રાપ્તિ અવશ્ય થાય છે ॥૨૯॥

(छाया)

अप्काय न हिंसन्ति, मनसा वचसा कायेन ।
त्रिविधेन करणयोगेन, संयताः सुसमाहिताः ॥३०॥

॥ टीका ॥

'आउकाय' इत्यादि—
अप्कायम्=उदकं, शेषं पृथिवीकायसूत्रवत् ॥३०॥

(मूलम्)

१ २ ११ १२ ३
आउकायं विहिंसंतो हिंसई उ तयस्सिए ।
४ १० ७ ८ ९ ६ ५
तसे य विविहे पाणे चक्खुसे य अचक्खुसे ॥३१॥

॥ छाया ॥

'आउकाय' इत्यादि—
अप्कायं विहिंसन् हिनस्ति तु तदाश्रितान् ।
त्रसांश्च विविधान् प्राणान् चाक्षुषांश्च अचाक्षुषान् ॥३१॥

॥ टीका ॥

'आउकाय' इत्यादि—
अप्कायम्=उदकम् । शेषमष्टाविंशगाथावद्बोध्यम् ॥३१॥

आठवां स्थान कहते हैं— आउकाय इत्यादि ।

संयम में सावधान साधु मन वचन काय तथा कृत कारित अनुमोदन से—अर्थात् तीन करण तीन योग से अप्काय की हिंसा नहीं करते ॥३०॥

आउकाय इत्यादि। अपकाय की विराधना करने वाला अप्कायाश्रित दृश्य अदृश्य विविध त्रस स्थावर जीवों की हिंसा करता है। शेष अट्ठाइसवीं गाथा के अनुसार समझना॥३१॥

આઠમું સ્થાન કહે છે- आउकाय० ઇત્યાદિ- સંયમમાં સાવધાન સાધુ મન વચન કાયા તથા કૃત કારિત અનુમોદનાથી અર્થાત્ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી અપ્કાયની હિંસા કરતા નથી ॥૩૦॥

आउकाय० ઇત્યાદિ અપકાયની વિરાધના કરવાવાળા અપકાયાશ્રિત દૃશ્ય અદૃશ્ય વિવિધ ત્રસ સ્થાવર જીવોની હિંસા કરે છે બાકીનો ભાગ અઠાવીસમી ગાથા મુજબ સમજવો ॥૩૧॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ५ ४ ३
तम्हा एण वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
६ ७ ८
आउकायसमारंभं जावजीवाइ वज्जए ॥३२॥

॥ छाया ॥

तस्माद् एन विज्ञाय दोष दुर्गतिवर्धनम् ।
अप्कायसमारम्भं यावज्जीवतया वर्जयेत् ॥३२॥

॥ टीका ॥

'तम्हा' इत्यादि—

सुगमा ॥३२॥

नवमस्थानमाह–'जायतेयं' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

७ ९ १० १ ८
जायतेय न इच्छंति पावग जलिइत्तए ।
३ २ ४ ५ ६
तिक्खमन्नयर सत्थ सव्वओवि दुरासयं ॥३३॥

॥ छाया ॥

जाततेजस नेच्छन्ति पापक ज्वलयितुम् ।
तीक्ष्णमन्यतरत् शस्त्र सर्वतोऽपि दुराश्रयम् ॥३३॥

तम्हा इत्यादि । इस लिए मुनि दुर्गति को बढाने वाले दोष जान कर अप्कायके आरम्भका तीन करण तीन योग से त्याग करते हैं ॥३२॥

तम्हा० ઇત્યાદિ તેથી મુનિ દુર્ગતિ વધારનારા દોષોને જાણીને અપકાયના આરંભનો ત્રણ કરણ ત્રણ યોગે કરીને ત્યાગ કરે ॥૩૨॥

॥ टीका ॥

'जाततेयं' इत्यादि—

पापकं=पापरूपं बहुतरजीवविराधनाकारित्वादितिभावः, अन्यतरत् तीक्ष्णम्=उभयतोधार शस्त्रमिव शस्त्र शस्त्रधर्मत्वात्, उभयतोधारशस्त्रसदृशमित्यर्थः, अतएव सर्वतोऽपिदुराश्रयं=समन्तादाश्रयितुमशक्यं समन्ततोऽशक्यसेवम् अशक्य स्पर्शमित्यर्थः, जाततेजसमग्निं मज्वलयितुम्=उद्दीपयितुं नेच्छन्ति । स्फुलिङ्गस्यापि मज्वालनमसंख्यजीवविराधनाजनकत्वात्संयमहानिकर मुनीनामिति भावः ॥३३॥

॥ मूलम् ॥

१ ४ ३ २ १ १०
पाईण पडीण वावि उड्ढं अणुदिसामवि ।
११ ७ ६ ५ १३ ९ ८
अहे दाहिणओ वावि दहे उत्तरओ विय ॥३४॥

नवमाँ स्थान कहते हैं—'जायतेय' इत्यादि ।

साधु तेजस्काय को प्रज्वलित करने की इच्छा भी नहीं करते, क्यों की अग्नि का उद्दीपन करना बहुतसे जीवोंकी विराधनाका कारण होनेसे पाप है। वह ऐसे शस्त्र के समान है जिसमें दोनों ओर धार हो। अतएव किसी भी ओरसे उसका स्पर्श होना अशक्य है। तात्पर्य यह है कि एक चिनगारी को भी प्रज्वलित करनेसे असंख्यात जीवोंकी विराधना होती है, इसलिए वह संयमियों के संयम को अत्यन्त हानि पहुंचाती है ॥३३॥

નવમું સ્થાન કહે છે— जायतेयं० ઇત્યાદિ

સાધુ તેજસ્કાયને પ્રજ્વલિત કરવાની પણ ઇચ્છા કરતા નથી, કારણ કે અગ્નિનું ઉદ્દીપન કરવું એ અનેક જીવોની વિરાધનાનું કારણ હોવાથી પાપ છે. તે એવા શસ્ત્ર સમાન છે કે— જેને બેઉ બાજુએ ધાર હોય એટલે કોઈ પણ બાજુએ એનો સ્પર્શ થવો અશક્ય છે તાત્પર્ય એ છે કે— એક ચિનગારીને પણ પ્રજ્વલિત કરવાથી અસંખ્યાત જીવોની વિરાધના થાય છે, તેથી એ સંયમીઓના સંયમને અત્યંત હાનિ પહોંચાડે છે ॥૩૩॥

॥ छाया ॥

प्राच्या प्रतीच्या वाऽपि ऊर्ध्वम् अनुदिशामपि ।
अधः दक्षिणतो वाऽपि दहेत् उत्तरतोऽपि च ॥३४॥

॥ टीका ॥

'पाईण' इत्यादि। प्राच्या=पूर्वस्या दिशि अपि वा प्रतीच्या=पश्चिमाया दिशि अपिवा दक्षिणतः=दक्षिणस्याम्, अपिवा उत्तरतः=उत्तरस्या दिशि अनुदिशा= दिशावनुगता अनुदिक्, तासा चतसृणामेकशेषः अनुदिशस्तासाम्, सप्तम्यर्थे षष्ठी, विदिक्षु इत्यर्थः। ऊर्ध्वंच अधश्च अग्निर्दहति=प्राणिनो भस्मसात्करोतीत्यर्थः। वह्नि- र्दाहकता दशस्वपि दिक्षु जन्तुसमूहान् विराधयतीति भावः ॥३४॥

॥ मूलम् ॥

७ १ ३ ४ ५ ६
भूयाणमेसमाघाओ हव्ववाहो न संसओ ।
७ ८ ९ १० ११
तं पईवपयावट्ठा संजया किंचि नारभे ॥३५॥

॥ छाया ॥

भूतानामेष आघातः हव्यवाड् न संशयः ।
त प्रदीपप्रतापनार्थं संयताः किंचित् नारभन्ते ॥३५॥

'पाइण' इत्यादि । अग्नि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन चारो दिशाओंमें तथा चारों विदिशाओं में और ऊपर नीचे अर्थात् दसों दिशाओं में रहे हुए प्राणियोंको जलाती है ॥ ३४ ॥

पाईण० ઇત્યાદિ અગ્નિ, પૂર્વ પશ્ચિમ ઉત્તર દક્ષિણમા એમ ચારે દિશા- ઓમા તથા ચારે વિદિશાઓમા અને ઉપર નીચે અર્થાત્ દસે દિશાઓમા રહેલા પ્રાણીઓને બાળે છે ॥૩૪॥

॥ टीका ॥

' भूयाण इत्यादि ।

एषोऽग्निः भूतानां=प्राणिनामाघातजनकत्वादाघातः= हिंसक' हव्यवाट्=हव्यं वहति=क्षिप्तं तृणकाष्ठादिकं हव्यं भक्षयति विनाशयतीत्यर्थः, न संशयः=अस्मिन् विषये संशयो नास्ति आपामरसकललोकप्रत्यक्षसिद्धत्वादितिभावः । अतः संयताः=साधवः तं वह्निं प्रदीपप्रतापनार्थम्=अन्धकारे प्रदीपार्थं शैत्यागमे प्रतापनार्थं च किञ्चिदपि=संघट्टनमात्ररूपेणापि नारभन्ते=न तदारम्भं कुर्वन्तीत्यर्थः । अग्नेरारम्भश्चारित्रविघातकत्वात्साधूनामनासेव्य इति भावः ॥३५॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ४ ५ ३
तम्हा एयं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
६ ७ ८
तेउकायसमारंभं जावजीवाइ वज्जए ॥३६॥

'भूयाण' इत्यादि । यह अग्नि प्राणियों का घात करने वाली है। इसमें डाले हुए तिनका काष्ठ आदिको भस्म कर डालती है, यह बात सब लोकमें प्रत्यक्ष सिद्ध है, इसमें जरा भी संशय नहीं है। इसलिए साधु अंधकारमें दीपक के प्रकाश के लिए, अथवा शीत आने पर तापने के लिए, अथवा अन्य किसी प्रयोजन से अग्निका बिल्कुल आरम्भ नहीं करते—यहां तक कि उसके स्पर्श का भी त्याग करते है। आशय यह है कि अग्निका आरम्भ चारित्र का विघात करने वाला है इसलिए यह साधुओं को आचरणीय नहीं है। ॥ ३५ ॥

भूयाण० ઇત્યાદિ એ અગ્નિ પ્રાણીઓનો ઘાત કરે છે, એમાં નાખેલા તણખલા કાષ્ઠ આદિને અગ્નિ ભસ્મ કરી નાખે છે, એ વાત બધા લોકોમાં પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ છે એમાં જરાએ સંશય નથી તેથી સાધુ અંધકારમાં દીવાના પ્રકાશને માટે, અથવા ટાઢ લાગવાથી તાપવાને માટે, અથવા અન્ય કોઇ પ્રયોજનથી અગ્નિનો બિલકુલ આરંભ કરતા નથી—એટલે સુધી કે એના સંઘટ્ટનનો પણ ત્યાગ કરે છે આશય એ છે કે અગ્નિનો આરંભ ચારિત્રનો વિઘાત કરનારો છે, તેથી તે સાધુઓને આચરણીય નથી ॥૩૫॥

॥ छाया ॥

तस्माद् एतद् विज्ञाय दोषं दुर्गतिवर्द्धनम् ।
तेजस्कायसमारम्भं यावज्जीवतया वर्जयेत् ॥३६॥

॥ टीका ॥

'तम्हा' इत्यादि ।

तेजस्कायसमारम्भवर्जिकेयगाथा निगदसिद्धा ॥३६॥

दशमस्थानमाह—'अनिलस्स' इत्यादि ।

(मूलम्)

२ ३ १ ६ ४
अणिलस्स समारंभं बुद्धा मन्नति तारिसं ।
५ ८ ७ ११ ९ १० १२
सावज्जबहुलं चेयं नेयं ताइहिं सेवियं ॥३७॥

॥ छाया ॥

अनिलस्य समारम्भं बुद्धा मन्यन्ते तादृशम् ।
सावद्यबहुलं चैतत् नैतत् त्रायिभिः सेवितम् ॥३७॥

॥ टीका ॥

'अणिलस्स' इत्यादि—

बुद्धाः=तीर्थकराः अनिलस्य=वायुकायस्य समारम्भम्=उपमर्दनं तादृशं=

'तम्हा' इत्यादि । इसलिए साधु, दुर्गतिमें पहुंचाने वाले अनेक दोष जानकर तेजस्काय के समारम्भ का यावज्जीव त्याग करे ॥ ३६ ॥

दशवाँ स्थान कहते हैं—'अणिलस्स' इत्यादि ।

बुद्ध (तीर्थंकर) भगवान् अपने केवल ज्ञान द्वारा तेजस्काय की तरह वायुकाय के समारंभको भी अत्यन्त सावद्य बहुल जानते हैं। इसीकारण षट्काय के रक्षक साधुओं ने वायुकाय का समारंभ नहीं किया है। 'ताइहिं' पदसे यह बोधित किया है

तम्हा० इत्यादि तेथी साधु दुर्गतिमां पहोंचाडनार अनेक दोष जाणीने तेजस्कायना समारंभनो यावज्जीव त्याग करे ॥३६॥

दशमुं स्थान कहे छे— अणिलस्स० इत्यादि

बुद्ध (तीर्थंकर) भगवान् पोताना केवळ ज्ञानथी तेजस्कायनी पेठे वायु-

तेजस्कायवत् सावद्यबहुलं=जीवजातविराधनाऽतिशयसहितं मन्यन्ते=केवला-लोकेन जानन्ति । एवं च=एतेन हेतुना एतत्=वायुकायमाश्रित्य संपद्यमान विराधनं त्रायिभिः=षट्कायरक्षणपरायणैः साधुभिः न सेवितं=न कृतमित्यर्थः। वायुकायविराधनमनर्थमूलं चारित्रभञ्जकं च, अतएव षड्जीवनिकायरक्षणदत्तावधाना मुनयो मुखोष्णवायुनिर्गमस्य निरोद्धमशक्यतया सूक्ष्मतयापि सपातिमवायुकायोर्विराधन सावद्यभाषाभाषित्व च समालोच्य मुखोपरि सदोरकमुखवस्त्रिका बध्नन्ति। करतलगतया तु मुखवस्त्रिकया नहि यावद्वायुकायादिविराधन सम्यक् परिहर्तुं शक्यत इति 'ताइहिं' पदेन बोध्यते ॥३७॥

एकादश स्थानमाह—'तालियंटेण' इत्यादि।

(मूलम्)

२　　३　　५　　४

तालियंटेण पत्तेण साहुविहूयणेण वा ।

१० १　　११　　७　　९ ८

न ते वीइउमिच्छंति वेयावेऊण वा परं ॥३८॥

ऋ—वायुकाय की विराधना अनर्थों का मूल और चारित्र का घात करने वाली है, इसीसे षट्काय की रक्षामें सदा सावधान रहने वाले मुनि मुखपर डोरा सहित मुखवस्त्रिका बाँधते हैं, क्यों कि वे ऐसा विचार करते हैं कि—यदि मुखवस्त्रिका न बाँधें तो मुखकी गर्म साँस आदि द्वारा सूक्ष्म व्यापी संपातिम और वायुकाय जीवों की विराधना तथा सावद्यभाषाभाषित्व आदि दोष लगते हैं। किन्तु हाथमें मुखवस्त्रिका रखने से वायुकाय की यतना सम्यक्प्रकार से नहीं हो सकती ॥ ३७ ॥

કાયના સમારંભને પણ અત્યંત સાવદ્યબહુલ જાણે છે તે કારણે પટ્કાયના રક્ષક સાધુઓએ વાયુકાયનો સમારંભ કર્યો નથી. ताइहिं એ શબ્દથી એમ બોધિત કર્યું છે કે- વાયુકાયની વિરાધના અનર્થોનું મૂળ અને ચારિત્રનો ઘાત કરનારી છે, તેથી પટ્કાયની રક્ષામાં સદા સાવધાન રહેનાર મુનિઓ મુખ પર દોરા સહિત મુખવસ્ત્રિકા બાંધે છે, કારણ કે તે એવો વિચાર કરે છે કે- જો મુખવસ્ત્રિકા ન બાંધે તો મુખના ગરમ શ્વાસ આદિ દ્વારા સૂક્ષ્મવ્યાપી સંપાતિમ અને વાયુકાય જીવોની વિરાધના તથા સાવદ્યભાષાભાષિત્વ આદિ દોષ લાગે છે પરન્તુ હાથના મુખવસ્ત્રિકા રાખવાથી વાયુકાયની યતના સમ્યક્ પ્રકારે થઈ શકતી નથી ॥૩૭॥

(छाया)

तालवृन्तेन पत्रेण शाखाविधूननेन वा ।
न ते वीजितुमिच्छन्ति वीजयितु वा परम् ॥३८॥

॥ टीका ॥

'तालियटेण' इत्यादि—

ते=साधवः तालवृन्तेन=व्यजनेन पत्रेण=कमलादिदलेन वा=अथवा शाखा-विधूननेन=लताद्रुमादिविटपाऽऽन्दोलनेन स्वयं वीजितु=समीरमुत्पादयितुं वा= अथवा परं=परेण वीजयितुं वीजयन्त परमनुमन्तु वा नेच्छन्ति=नाभिकाङ्क्षन्ति मनसाऽपीत्यर्थः ॥३८॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
जंपि वत्थं व पायं वा कंवल पायपुंछण ।
१० ८ ९ ११ १२ १४ १३
न ते वायमुईरति जयं परिहरति य ॥३९॥

॥ छाया ॥

यदपि वस्त्रं वा पात्र वा कम्बलं पादप्रोञ्छनम् ।
न ते वातमुदीरयन्ति यतं परिधरन्ति च ॥३९॥

'तालियटेण' इत्यादि ।

साधु पखे से, कमल आदि के पत्ते से, अथवा वृक्ष की शाखा आदि से वायुकाय की स्वय उदीरणा नहीं करते, दूसरे से उदीरणा नहीं कराते तथा उदीरणा करते हुए की अनुमोदना नहीं करते ॥ ३८ ॥

'तालियटेण' ઇત્યાદિ

સાધુ પંખાથી, કમળ આદિના પાંદડાથી, અથવા વૃક્ષની શાખા આદિથી વાયુકાયની ઉદીરણા સ્વયં કરતા નથી, બીજા દ્વારા ઉદીરણા કરાવતા નથી તથા ઉદીરણા કરનારની અનુમોદના કરતા નથી (૩૮)

॥ टीका ॥

'जंपि' इत्यादि ।

यच्च वस्त्र पात्र कम्बलं पादप्रोञ्छनं=रजोहरणमस्ति, तेनाऽपि तं= मारुतः वात=समीरं नोदीरयन्ति=नाविर्भावयन्ति किन्तु यतं=सयतनं परिधरन्ति= धारयन्ति, उपभोगं धारणं च यतनया कुर्वन्तीत्यर्थः । वस्त्रादीनामुपभोगादि तथाविधेयं यथा वायुकायविराधना न भवेदितिभावः ॥३९॥

॥ मूलम् ॥

तम्हा एयं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
वाउकायसमारंभं जावजीवाइ वज्जए ॥४०॥

॥ छाया ॥

तस्माद् एतं विज्ञाय दोषं दुर्गतिवर्द्धनम् ।
वायुकायसमारम्भं यावज्जीवतया वर्जयेत् ॥४०॥

॥ टीका ॥

'तम्हा' इत्यादि ।

वायुकायसमारम्भं = वायुकायोपमर्दनम् । शेषं सप्तविंशगाथावद् व्याख्येयम् ॥४०॥

'जपि' इत्यादि । जो वस्त्र पात्र कम्बल रजोहरण रहता है उससे भी वायुकाय की उदीरणा नहीं करते किन्तु यतनापूर्वक उन्हें धारण करते हैं अर्थात् वस्त्र आदि को इस प्रकार धारण करना चाहिए जिससे कि वायुकाय की विराधना न होवे ॥ ३९ ॥

'तम्हा' इत्यादि । इसलिए साधु दुर्गति के बढ़ाने वाले इस दोष को जानकर यावज्जीवन वायुकाय के समारंभका त्याग करते हैं ॥ ४० ॥

जपि इत्यादि जे वस्त्र पात्र कंबल रजोहरण होय छे तेथी पण वायुकायनी उदीरणा करता नथी, किंतु यतनापूर्वक तेमने धारण करे छे अर्थात् वस्त्रादिने एवी रीते धारण करवा जोईए के जेथी वायुकायनी विराधना न थाय (३९)

तम्हा० इत्यादि एथी करीने साधु दुर्गतिने वधारनारा ए दोषोने जाणीने यावज्जीवन वायुकायना समारंभनो त्याग करे छे (४०)

एकादशं स्थानमाह– 'वणस्सइ न' 'वणस्सइ' 'तम्हा' इत्यादि गाथात्रयम्।

॥ मूलम् ॥

वणस्सइं न हिंसंति मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण संजया सुसमाहिया ॥४१॥
वणस्सइं विहिंसंतो हिंसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे चक्खुसे य अचक्खुसे ॥४२॥
तम्हा एयं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
वणस्सइसमारंभं जावजीवाए वज्जए ॥४३॥

॥ छाया ॥

वनस्पतिं न हिंसन्ति मनसा वचसा कायेन।
त्रिविधेन करणयोगेन संयताः सुसमाहिताः ॥४१॥
वनस्पतिं विहिंसन् हिनस्ति तु तदाश्रितान्।
त्रसांश्च विविधान् प्राणान् चाक्षुषांश्च अचाक्षुषान् ॥४२॥
तस्माद् एतं विज्ञाय दोषं दुर्गतिवर्द्धनम्।
वनस्पतिसमारम्भं यावज्जीवतया वर्जयेत् ॥४३॥

(टीका)

'वणस्सइ' इत्यादि—

आसां तिसृणां गाथानां व्याख्या पृथिवीकायसूत्रवद्बोध्या॥ वनस्पति-शब्दमात्रतोऽत्र भेदः ॥४१॥४२॥४३॥

'वणस्सइन' 'वणस्सइ वि' तम्हा' इत्यादि तीन गाथाएँ हैं। इनका व्याख्यान

वणस्सइ न०, वणस्सइ वि०, तम्हा० इत्यादि त्रण गाथाओ छे अेनुं

द्वादशं स्थानमाह— 'तसकायं न' 'तसकाय' 'तम्हा' इत्यादि गाथात्रयम् ॥

॥ मूलम् ॥

८ ९ १० ३ ४ ५
तसकायं न हिंसंति मणसा वयसा कायसा।
६ ७ २ १
तिविहेण करणजोएण संजया सुसमाहिया ॥४४॥
१ २ ३ ४
तसकाय विहिंसंतो हिंसई उ तयस्सिए।
५ ६ ७ ८ ९ १० ११
तसे य विविहे पाणे चक्खुसे य अचक्खुसे ॥४५॥
१ ३ ५ ४ २
तम्हा एयं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
६ ७ ८
तसकायसमारम्भं जावज्जीवाइ वज्जए ॥४६॥

॥ छाया ॥

त्रसकायं न हिंसन्ति मनसा वचसा कायेन।
त्रिविधेन करणयोगेन संयताः सुसमाहिताः ॥४४॥

त्रसकायं विहिंसन् हिनस्ति तु तदाश्रितान्।
त्रसांश्च विविधान् प्राणान् चाक्षुषांश्च अचाक्षुषान् ॥४५॥

तस्माद् एतं विज्ञाय दोषं दुर्गतिवर्द्धनम्।
त्रसकायसमारम्भं यावज्जीवतया वर्जयेत् ॥४६॥

पृथिवीकाय की गाथाओं के समान हैं, भेद केवल यही है कि पृथिवीकाय की जगह 'वनस्पति' शब्द कहना ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

આખ્યાન પૃથિવીકાયની ગાથાઓની પેઠે છે ભેદ કેવળ એટલોજ છે કે પૃથિવી કાયની જગ્યાએ વનસ્પતિ શબ્દ કહેવો (૪૧ ૪૨ ૪૩)

॥ टीका ॥

'तसकाय' इत्यादि—

त्रसकाय =द्वीन्द्रियादियावत्पञ्चेन्द्रियम् । शेषं पृथिवीकायसूत्रवत् ॥ ॥४४॥४५॥४६॥

त्रयोदशं स्थानमाह— तत्र यथा सलिलसेचनादिकमन्तरेण यथाविधि समारोपितस्यापि वृक्षस्य मनोहरहरितपल्लवकुसुमादिसमुद्भवो न लक्ष्यते तथा व्रतषट्कायषट्करक्षणमूलगुणानां यथाविधिसंरक्षणे कृतेऽपि अकल्पादिषट्कस्य यथाविधिवर्जनं विना स्वर्गाऽपवर्गसुखादिमनोहरफलाविर्भावरूपप्रभावो न प्रादुर्भवितुमर्हति, अतो मूलगुणप्रतिपादनाऽनन्तरमकल्पादिषट्कवर्जनरूपानुत्तर-गुणानाह— 'जाइं' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१ २ ५ ४ ३
जाइं चत्तारि भुज्जाइं इसीणाऽऽहारमाईणि ।
६ ७ ८ ९ १०
ताइं तु विवज्जंतो संजमं अणुपालए ॥४७॥

॥ छाया ॥

यानि चत्वारि अभोज्यानि ऋषीणामाहारादीनि ।
तानि तु विवर्जयन् संयमम् अनुपालयेत् ॥४७॥

बारहवाँ स्थान कहते हैं— 'तसकाय न' 'तसकाय' 'तम्हा' इत्यादि तीन गाथाएं। इनका व्याख्यान भी पृथिवीकायके समान समझ लेना, यहा पृथिवीकायके स्थान पर 'त्रसकाय' कहना चाहिए। द्वीन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तकके जीव त्रस कहलाते है ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥

બારમુ સ્થાન કહે છે—तसकाय न०, तसकाय०, तम्हा० ઇત્યાદિ ત્રણ ગાથાઓ. તે એનુ વ્યાખ્યાન પણ પૃથિવીકાયની પેઠે સમજવુ એમા પૃથિવીકાયની જગ્યાએ ત્રસકાય ० કહેવુ દ્વીન્દ્રિયથી માંડીને પચેન્દ્રિય સુધીના જીવો ત્રસ કહેવાય છે (૪૪-૪૫-૪૬)

॥ टीका ॥

'जाइं' इत्यादि—

यानि चत्वारि आहारादीनि=आहार-शय्या-वस्त्र-पात्राणि ऋषीणां=साधूनाम् अभोज्यानि=आगमोक्तविधिना अकल्प्यानि सन्ति 'भुज्जाइं' इत्यत्र प्राकृतत्वादकारलोपः, तानि तु=अवश्यं विवर्जयन्=परिहरन् अगृह्णन्नित्यर्थः; साधुः संयमं=चारित्रम् अनुपालयेत्=प्रतिपालयेत्। अकल्प्यं गृह्णता साधुना चारित्रभङ्गो भवतीति भावः ॥४७॥

तेरहवाँ स्थान कहते हैं— जैसे जल सींचन के बिना विधिपूर्वक रोपे हुए भी वृक्षमें मनोहर फूल-फल आदि नहीं लग सकते, उसीप्रकार छह व्रत और छह काय की रक्षारूप मूलगुणों का विधि अनुसार पालन करने पर भी छह अकल्प्यों का त्याग किये बिना स्वर्ग-अपवर्ग के सुख स्वरूप स्वादिष्ट फलोंका लाभ संभव नहीं है, इसलिए मूल गुण बताने के बाद अकल्प्यादि छह के त्याग रूप उत्तर गुण बताते हैं— 'जाइं चत्तारि' इत्यादि। जो आहार शय्या वस्त्र और पात्र, ये चार आगमानुसार अकल्प्य हैं। उनका अवश्य परित्याग करते हुए मुनि संयम का पालन करते हैं। आशय यह है कि अकल्प्य का ग्रहण करने से साधुओंका चारित्र दूषित होता है ॥ ४७ ॥

તેરમું સ્થાન કહે છે— જેમ જળ સિંચ્યા વિના વિધિપૂર્વક રોપેલા વૃક્ષને પણ મનોહર ફૂલ-ફળ આદિ આવી શકતા નથી, તેમ છ વ્રત અને છકાયની રક્ષારૂપી મૂળ ગુણોનું વિધિ અનુસાર પાલન કરતા છતા પણ છ અકલ્પ્યોનો ત્યાગ કર્યા વિના સ્વર્ગ-અપવર્ગના સુખસ્વરૂપ સ્વાદિષ્ટ ફળોનો લાભ સંભવિત નથી તેથી મૂળ ગુણ બતાવ્યા બાદ અકલ્પ્યાદિ છના ત્યાગ રૂપ ઉત્તર ગુણ બતાવે છે—'जाइं चत्तारि०' ઇત્યાદિ જે આહાર શય્યા વસ્ત્ર અને પાત્ર એ ચાર આગમાનુસાર અકલ્પ્ય છે, તેનો અવશ્ય પરિત્યાગ કરનાર મુનિ સંયમનું પાલન કરે છે. આશય એ છે કે અકલ્પ્યને ગ્રહણ કરવાથી સાધુઓનું ચારિત્ર દૂષિત થાય છે (૪૭)

एतदेव स्पष्टीकरोति— 'पिंडं' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ८ ७

पिंड सिज्ज च वत्थं च चउत्थ पायमेव य ।

९ १० ११ १३ १२

अकप्पिय न इच्छिज्जा पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥४८॥

॥ छाया ॥

पिण्ड शय्या च वस्त्रं च चतुर्थं पात्रमेव च ।

अकल्पिकं नेच्छेत् प्रतिगृह्णीयात् कल्पिकम् ॥४८॥

॥ टीका ॥

'पिंडं' इत्यादि—

साधुः पिण्डं=भोज्यसमुदायरूपं शय्याम्=उपाश्रयं, वस्त्रं, तच्च त्रिविधम्-एकेन्द्रियनिष्पन्नं=कार्पासिकं, विकलेन्द्रियनिष्पन्नं चीनांशुकादि, पञ्चेन्द्रिय-निष्पन्नं-रत्नकम्बलादिकम्, चतुर्थं च पात्रं तच्च दारुमयम्, अलाबूमयं, मृन्मयं चेत्यनेकविधम्, अकल्पिकम्=अग्राह्यं नेच्छेत् ग्रहीतुं न समीहेत, कल्पिकं=यथोचितं ग्रहणार्हं प्रतिगृह्णीयात् ॥४८॥

इसीका स्पष्टीकरण करते हैं— 'पिंड' इत्यादि।

साधु, (१) पिंड, (२) शय्या (उपाश्रय), (३) एकेन्द्रिय से बने हुए सूत, विकलेन्द्रिय से बने हुए चीनांशुक (चीना सिल्क आदि), पचेन्द्रिय से बने हुए रत्न कम्बल आदि, ये तीन प्रकार के वस्त्र और (४) काठ तुम्बी या मिट्टी के पात्र ये अकल्पनीय हों तो ग्रहण करने की इच्छा भी न करे, जो कल्पता हो उसे आगमकी विधिके अनुसार ग्रहण करे ॥ ४८ ॥

એનુ સ્પષ્ટીકરણ કરે છે—પિંડ૦ ઇત્યાદિ

(૧) પિંડ, (૨) શય્યા (ઉપાશ્રય), (૩) એકેન્દ્રિયથી બનેલુ સૂતરનુ વસ્ત્ર, વિકલેન્દ્રિયથી બનેલુ ચીનાંશુક (ચીનાઇ રેશમઆદિનુ વસ્ત્ર), પચેન્દ્રિયથી બનેલી રત્નકબલ આદિ, એ ત્રણ પ્રકારના વસ્ત્રો, અને (૪) લાકડાનુ તુબડાનુ યા માટીનુ પાત્ર, એ અકલ્પનીય છે, તો તે ગ્રહણ કરવાની ઇચ્છા પણ સાધુ ન કરે જે કલ્પે તે આગમની વિધિને અનુસાર ગ્રહણ કરે (૪૮)

अथाऽऽहारादिग्रहणे दोषमाह—'जे नियाग' इत्यादि।

(मूलम्)

जे नियाग ममायंति कीयमुद्देसि आहडं।
वहं ते समणुजाणंति इइ उत्तं महेसिणा ॥४९॥

॥ छाया ॥

ये नियाग ममायन्ते क्रीतमौद्देशिकमाहृतम्।
वधं ते समनुजानन्ति इति उक्तं महर्षिणा ॥४९॥

॥ टीका ॥

'जे नियाग' इत्यादि—

ये साधवः नियाग=नित्य नित्यपिण्डम् आमन्त्रितपिण्ड वा तथा क्रीतम्, औद्देशिकम् आहृतं च पिण्डं ममायन्ते=ममत्वाऽऽचरन्ति दीयमानपिण्डे ममत्व कुर्वन्ति प्रतिगृह्णन्तीत्यर्थः, यद्वा ममायं (पिण्डः कल्पते) इति=इत्येवं समनुजानन्ति=मनसाऽनुमोदयन्ति ते वधम्=षड्जीवनिकायोपघातं समनुजानन्ति= दातुर्नियागादिपिण्डदानमहत्तिमनुमोदयन्तः षड्जीवनिकायोपघातानुमोदनं कुर्वन्ति, तथाविधाऽऽहारग्रहणे गृहस्थकृताऽऽरम्भसमारम्भजन्यपापभाजो भवन्तीतिभावः। इति=इदं महर्षिणा=तीर्थंकरादिना उक्तं=कथितम् ॥४९॥

अग्राह्य आहार को ग्रहण करने के दोष दरसाते हैं—'जे नियाग' इत्यादि।

जो साधु नियाग (नित्य या आमन्त्रित) पिंड, क्रीतपिंड औद्देशिक पिंड और आहृत पिंड को अपनाते—ग्रहण करते हैं व एकेन्द्रिय आदि प्राणियों के उपघात की अनुमोदना करते हैं, अर्थात् ऐसे पिंड (आहार) का ग्रहण करने वाले साधु गृहस्थ द्वारा किए हुए आरम्भ—समारम्भ से होने वाले पापके भागी होते हैं। ऐसा श्री तीर्थंकर आदि महर्षियोंने कहा है ॥ ४९ ॥

અગ્રાહ્ય આહારને ગ્રહણ કરવાના દોષો બતાવે છે—जे नियाग० ઇત્યાદિ.

જે સાધુ નિયાગ (નિત્ય યા આમંત્રિત) પિંડ, ક્રીત પિંડ, ઔદ્દેશિક પિંડ અને આહૃત પિંડને ગ્રહણ કરે છે તે એકેન્દ્રિયાદિ પ્રાણિઓના ઉપઘાતની અનુમોદના કરે છે, અર્થાત્ એવા પિંડ (આહાર)ને ગ્રહણ કરનાર સાધુ ગૃહસ્થ દ્વારા કરેલા આરંભ—સમારંભથી થતા પાપના ભાગી બને છે; એવું શ્રી તીર્થંકરાદિ મહર્ષિઓએ કહ્યું છે (૪૯)

॥ मूलम् ॥

१ ८ ६ ५ ७

तम्हा असणपाणा कीयमुद्देसि आहड।

९ २ ४ ३

वज्जयंति ठियप्पाणो निग्गंथा धम्मजीविणो ॥५०॥

॥ छाया ॥

तस्माद् अशन पानादि क्रीतमौद्देशिकमाहृतम्।
वर्जयन्ति स्थितात्मानः निर्ग्रन्था धर्मजीविनः ॥५०॥

॥ टीका ॥

'तम्हा' इत्यादि।

तस्माद्धेतोः स्थितात्मानः=समाहितचित्ताः धर्मजीविनः=चारित्रजीविन'=चारित्रार्थमेव जीवितधारिण इत्यर्थः; निर्ग्रन्थाः=मुनयः क्रीतमौद्देशिकमाहृतं चाऽन्न-पानादिसर्वमपि वर्जयन्ति=न गृह्णन्तीत्यर्थः। उपलक्षणमेतदाधाकर्मादीनामपि। 'ठियप्पाणो' इतिपदेन रसनेन्द्रियवशित्व, 'धम्मजीविणो' इतिपदेन चारित्रभङ्ग-भीरुत्व च सूचितम् ॥५०॥

'तम्हा असण' इत्यादि। अतएव सयम म मनको सावधान रखनवाले, चारित्र रूप जावन क धारण करन वाल निर्ग्रन्थ क्रात औद्देशिक तथा आहृत (सामन लायाहुआ) अशन पान आदि को ग्रहण नहा करते। उपलक्षणस आधाकर्म आदि दोष युक्त आहार का भी त्याग समझना चाहिए। 'ठियप्पाणो' पदसे रसना इन्द्रिय को वशम करना, तथा 'धम्मजीविणो' पदस चारित्रभंग स भयभीत रहना सूचित किया है ॥ ५० ॥

तम्हा असण० इत्यादि એટલે સંયમમાં મનને સાવધાન રાખનારા, ચારિત્રરૂપ જીવનને ધારણ કરવાવાળા નિર્ગ્રન્થ, ક્રીત ઔદ્દેશિક તથા આહૃત (સામે લાવવામાં આવતા) અશનપાન આદિને ગ્રહણ કરતા નથી ઉપલક્ષણથી આધાકર્મ આદિ દોષથી યુક્ત આહારનો ત્યાગ સમજવો ठियपाणो શબ્દથી રસના ઇંદ્રિયને વશ કરવી તથા धम्मजीविणो શબ્દથી ચારિત્રભંગથી ભયભીત રહેવું સૂચિત થયું છે (૫૦)

चतुर्दशस्थानवाचकं 'गिहिभायण' इति पद व्याचष्टे 'कसेसु' इत्यादि।

(मूलम्)

१　　　३　　　५　　७　४

कंसेसु कसपाएसु कुंडमोएसु वा पुणो।

६　　　२　　　८　　　९

भुंजंतो असणपाणाइ आयारो परिभस्सइ ॥५१॥

(छाया)

कंसेषु कंसपात्रेषु कुण्डमोदेषु वा पुनः।
भुञ्जानः अशनपानादि आचारात् परिभ्रश्यति ॥५१॥

॥ टीका ॥

'कंसेसु' इत्यादि—

कंसेषु=पानपात्रेषु कटोरिकादिषु, वा=अथवा कंसपात्रेषु=कांस्यनिर्मितभाजनमात्रेषु, 'कंसे' इत्युपलक्षणं स्वर्णरजतादिधातुनिर्मितपात्रस्य, पुनः कुण्डमोदेषु=मृन्मयपात्रेषु अशनपानादि भुञ्जानः साधुः आचारात्=चारित्रधर्मात्, मूले 'आयारो' इति पञ्चम्यर्थे प्रथमा; परिभ्रश्यति=परिभ्रष्टो भवति चारित्रपरिच्युतो भवतीत्यर्थः। 'भुंजतो' इत्युपलक्षणं, तेन गृहस्थसम्बन्धिभाजने वस्त्रधावनस्य, उष्णसलिलशैत्यकरणस्य च संग्रहः ॥५१॥

'गिहिभायण' इसपद रूप चौदहवें स्थान का व्याख्यान करते हैं-'कंसेसु'इत्यादि।

गृहस्थ के कटोरा आदि तथा काम के, उपलक्षण से सोने चांदी पीतल आदिके और मिट्टी के बरतन में भोजन करता हुआ साधु चारित्र से च्युत हो जाता है। यहा 'भुजतो' यह उपलक्षण है, इससे-गृहस्थ सबधी बरतन में वस्त्र धोना, पानी ठडा करना भी साधुको नहीं कल्पता है ॥ ५१ ॥

गिहिभायण એ પદરૂપ ચૌદમ સ્થાનનું વ્યાખ્યાન કરે છે कंसेसु० ઇત્યાદિ

ગૃહસ્થના વાડકી આદિ એટલે કાંસાના, ઉપલક્ષણથી સોના ચાંદી પીતળ આદિના અને માટીના વાસણમા ભોજન કરનાર સાધુ ચારિત્રથી ચ્યુત થાય છે અહીં भुजंतो એ ઉપલક્ષણ છે, તેથી ગૃહસ્થ સબધી વાસણમા વસ્ત્ર ધોવા, પાણી ઠંડુ કરવુ, એ પણ સાધુને કલ્પતુ નથી (૫૧)

गृहस्थभाजने भुञ्जान' साधुः कथं चारित्रविच्युतो भवेत् ? इत्याह—'सीओदग' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

सीओदगसमारंभे मत्तधोवणछड्डणे ।

जाइ छण्णंति भूयाइं, दिट्ठो तत्थ असंजमो ॥५२॥

॥ छाया ॥

शीतोदकसमारम्भे मात्रकधावनछर्दने ।
यानि छिद्यन्ते भूतानि दृष्टस्तत्र असंयमः ॥५२॥

॥ टीका ॥

'सीओदग' इत्यादि—

शीतोदकसमारम्भे=साधूना भोजनार्थं साधौ भुक्तवति अन्यभोजनार्थं च सचित्तजलेन कंस-कांस्यादिपात्राणां गृहस्थकर्तृकप्रक्षालनरूपे, मात्रकधावन-छर्दने=भोजनपात्रादिप्रक्षालनजलस्य नालिकादौ प्रक्षेपे च यानि भूतानि=एके-

---

गृहस्थ के भाजन में भोजन करने से भिक्षु संयम से भ्रष्ट कैसे हो जाता है ? सो कहते हैं—'सीओदग' इत्यादि ।

साधु यदि गृहस्थ के पात्र में आहार करे तो उसके आहार करने के लिए तथा वह भोजन करता है उस वक्त किसी दूसरे के भोजन करने के लिए गृहस्थ द्वारा सचित्त जलसे उन कांसे आदि के बरतनों के धोए जाने से तथा थाली आदि के धोए हुए पानीके मोरी आदि में जाने से एकेन्द्रिय आदि अनेक प्राणियों की हिंसा होती है ऐसा होने में

ગૃહસ્થના વાસણમાં ભોજન કરવાથી ભિક્ષુ સંયમથી ભ્રષ્ટ કેવી રીતે થઈ જાય છે, તે કહે છે–સીઓદગ૦ ઇત્યાદિ

સાધુ જો ગૃહસ્થના પાત્રમાં આહાર કરે તો તેને આહાર કરવા માટે તથા એ ભોજન કરતો હોય તે વખતે કદિ બીજાને ભોજન કરાવવા માટે ગૃહસ્થદ્વારા સચિત્ત જળથી એ કાંસા આદિના વાસણોને ધોવામાં આવે છે તેથી તથા થાળી આદિને ધોવાથી ખાળમાં પાણી જવાથી, એકેન્દ્રિય આદિ અનેક પ્રાણીઓની હિંસા

न्द्रियादीनि छिद्यन्ते=हन्यन्ते, तत्र=छिद्यमानेषु भूतेषु असयमः=चारित्रभङ्गः दृष्टः= केवलाऽऽलोकेन केवलिनाऽवलोकितः ॥५२॥

(मूलम्)

१ २ ४ ५ ६

पच्छा कम्मं पुरे-कम्म सिया तत्थ न कप्पइ ।

७ १० ११ ८ ९

एयमट्ठं न भुजंति निग्गथा गिहिभायणे ॥५३॥

॥ छाया ॥

पश्चात्कर्म पुरःकर्म स्यात्तत्र न कल्पते ।
एतदर्थं न भुञ्जते निर्ग्रन्था गृहिभाजने ॥५३॥

॥ टीका ॥

'पच्छाकम्मं' इत्यादि ।

पश्चात्कर्म = पश्चात्=भोजनानन्तर कर्म=सचित्तजलेन धावनादिकं यत्र तत्तथोक्तं, पश्चात्कर्मनामकदोषविशेष इत्यर्थः। तथा पुरःकर्म=पुरः=साधुभोजनात्पूर्वं कर्म=सचित्तजलेन पात्रधावनादि, यत्र तत् तथोक्त पुरःकर्मसज्ञको दोषविशेष इत्यर्थः, स्यात्=भवेत् अतः तत्र=गृहिभाजने भोक्तुमितिशेषः न

वहा केवली भगवानने केवलज्ञानभानु (सूर्य) से असयम (सयम का भग) देखा है ॥ ५२ ॥

'पच्छाकम्म' इत्यादि । गृहस्थ के भाजन म आहार करने से साधुको पश्चात्कर्म दोष भी लगता है क्योकि आहार करन के अनन्तर गृहस्थ सचित्त जल से थाली आदि को धोता है। तथा पुर कर्म=साधु के आगमन से पूर्व साधु के लिए किया हुआ

થાય છે એમ થવાથી તેમા કેવળી ભગવાને કેવળજ્ઞાન ભાનુથી (સૂર્યથી) અસયમ (સયમનો ભગ) જોયો છે (૫૨)

પચ્છાકમ્મ૦ ઇત્યાદિ ગૃહસ્થના વાસણમા આહાર કરવાથી સાધુને પશ્ચાત્કર્મ દોષ પણ લાગે છે, કારણ કે આહાર કર્યા પછી ગૃહસ્થ સચિત્ત જળથી થાળી આદિને ધુએ છે તેવીજ રીતે પુર કર્મ-સાધુના આગમનથી પૂર્વે સાધુને માટે

कल्पते। एतदर्थं=चारित्रभङ्गो माभूदितिहेतोः निर्ग्रन्थाः=साधवःगृहिभाजने न भुञ्जते इति सुगमम् ॥५३॥

पञ्चदशं स्थानमाह—'आसदी' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

आसदीपलियंकेसु मचमासालएसु वा।
अणायरियमज्जाण आसइत्तु सइत्तु वा ॥५४॥

॥ छाया ॥

आसन्दीपर्यङ्कयोः मञ्चाऽऽशालकयोर्वा ।
अनाचरितमार्याणाम्, आसितु स्वपितुं वा ॥५४॥

॥ टीका ॥

आसन्दीपर्यङ्कयोः=आसन्द्या=वेत्रासने पर्यङ्के=प्रावार (निवार) परिष्कृतविशिष्टखट्वाया वा=अथवा मञ्चाऽऽशालकयोः=मञ्चे साधारणखट्वायाम् आशालके=शयनोपवेशनोपयोगिनि पादपृष्ठावलम्बनसहिते आसनविशेषे 'आरामकुर्सी' इति

धोना आदि कर्म=दोष भी लगता है। इसलिए गृहस्थ के पात्र में आहार करना मुनियों को नहीं कल्पता है। अतएव चारित्रभग से बचने के लिए साधु गृहस्थ के पात्र में आहार नहीं करते हैं ॥ ५३ ॥

पन्द्रहवाँ स्थान कहते हैं— 'आसदी' इत्यादि।

वेत की कुर्सी, पलग, माचा, (पीढ़ी) आराम कुरसी, तथा उपलक्षण से अन्य सब प्रकार के शयन आसन पर बैठना या सोना तीर्थंकर गणधर आदि द्वारा अनाचरित

કરેલુ ધોવા આદિનુ કર્મ-દોષ પણ લાગે છે તેથી કરીને ગૃહસ્થના પાત્રમા આહાર કરવાનુ મુનિઓને કલ્પતુ નથી તેટલા માટે ચારિત્રભંગથી બચવાને માટે સાધુ ગૃહસ્થના પાત્રમા આહાર કરતા નથી (૫૩)

પંદરમુ સ્થાન કહે છે—આસદી૦ ઇત્યાદિ

નેતરથી ભરેલી ખુરશી, પલગ, ખાટલો, આરામ ખુરશી તથા ઉપલક્ષણથી અન્ય સર્વ પ્રકારના શયન આસન પર બેસવુ યા સૂવુ એ તીર્થંકર ગણધરા

भाषाप्रसिद्धे, उपलक्षणमन्यविधाऽऽसनशयनादीनाम्, आसितुम्=उपवेष्टुं वा= अथवा स्वपितुं=शयितुम् आर्याणाम्=ऽयर्ति=गच्छति-(प्राप्नोति) मोक्षोपदेशश्रवणाय मोक्षाय वा भव्यो यान् प्रति ते आर्याः=तीर्थंकरगणधरादयस्तेषाम् अनाचरितं तैरनासेवितमित्यर्थः ।।५४।।

आसन्द्याद्यनुपवेशनादिस्तु दुष्प्रतिलेखनीयता, प्रदर्शयितुं तावत्प्रतिलेखनं विना न कुत्राप्यासितव्यं नवा शयितव्यमित्याह—'नासंदी' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

नासंदीपलियंकेसु न निसिज्जा न पीढए ।
निग्गंथाऽपडिलेहाए बुद्धवुत्तमहिट्ठगा ॥५५॥

(छाया)
नासन्दीपर्यङ्केषु न निषद्याया न पीठके ।
निर्ग्रन्था अप्रतिलेख्य बुद्धोक्ताधिष्ठातारः ॥५५॥

है अर्थात् तीर्थंकर गणधर आदि आर्यमहापुरुषों ने कुरसी पलंग आदि का सेवन नहीं किया, अतः साधुको भी नहीं कल्पता है ॥ ५४ ॥

आसन्दी आदि पर नहीं बैठने और नहीं सोने में कारण यही है कि उनमें प्राणियों का प्रतिलेखन करना दुष्कर होता है, इसबात को दिखलाने के लिए पहले प्रतिलेखन किये बिना साधुको कहा भी न बैठना चाहिए और न सोना चाहिए सो कहते है— 'नासंदी' इत्यादि ।

અનાચરિત છે અર્થાત્ તીર્થંકર ગણધર આદિ આર્યમહાપુરૂષોએ ખુરશી પલંગ આદિનું સેવન કર્યું નથી, તેથી સાધુને પણ તે કલ્પતું નથી, (૫૪)

ખુરશી આદિ પર ન બેસવાનું કે નહિ સૂવાનું કારણ એ છે કે તેમાં પ્રાણીઓનું પ્રતિલેખન કરવું દુષ્કર હોય છે, એ વાત દર્શાવવાને માટે પહેલાં 'પ્રતિલેખન કર્યા વિના સાધુએ ક્યાંય પણ ન બેસવું જોઇએ અને ન સૂવું જોઇએ' એ વાત કહે છે-નાસંદી૦ ઇત્યાદિ

॥ टीका ॥

बुद्धोक्ताधिष्ठातारः=तीर्थकरगणधरोक्तवचनानुष्ठाननिष्ठाः निर्ग्रन्थाः= साधवःअप्रतिलेख्य=अनिरीक्ष्य मत्युपेक्षणमकृत्वेत्यर्थः आसन्दीपर्यङ्कयोः न, निषद्यायाम्=आसनसामान्ये न, पीठके=दारुमयाऽऽसने न, अत्राऽऽसन्द्यादिक-मुपलक्षण, तेनाऽन्यत्रापि यत्रकुत्रचिन्निषत्तु स्वपितुं वा ऽभिलषेयुस्तत्रापि च, अप्रतिलेख्य न निषीदेयुर्नापि शयीरन्निति क्रियापदाध्याहारः। 'बुद्धवुत्तमहिट्ठगा' इत्यनेन तीर्थकराज्ञाभङ्गभीरुत्वमावेदितम् ॥५५॥

आसन्द्याद्युपवेशने दोषमाह—'गभीर' इत्यादि।

(मूलम्)

गभीर-विजया एए पाणा दुप्पडिलेहगा।
आसदी पलियको य एयमट्ठ विवज्जिया ॥५६॥

(छाया)

गम्भीरविचया एते प्राणा दुष्प्रतिलेख्याः।
आसन्दी पर्यङ्कश्च एतदर्थं विवर्जिताः ॥५६॥

तीर्थंकर भगवान के वचनों के अनुसार अनुष्ठान करने वाले मुनि प्रतिलेखन किये विना आसन्दी पर्यंक आदि पर न बैठें और न सोवें, सामान्य आसन तथा काष्ठ के आसन (पाट) पर भी विना प्रतिलेखना किये नहीं बैठना और न सोना चाहिए। यहां पर आसन्दी आदि पद उपलक्षण है, इससे और जगह भी जहां कहां बैठना और सोना चाहें वहां भी-विना प्रतिलेखन किये न बैठे और न सोवे अर्थात् साधुको सर्वत्र प्रतिलेखन करके ही बैठना और सोना चाहिए ॥ ५५ ॥

તીર્થંકર ભગવાનના વચનોને અનુસારે અનુષ્ઠાન કરનાર મુનિ પ્રતિલેખન કર્યા વિના ખુરશી પલંગ આદિ પર ન બેસે કે ન સૂએ સામાન્ય આસન તથા કાષ્ઠના આસન (પાટ) પર પણ પ્રતિલેખન કર્યા વિના બેસવું કે સૂવું ન જોઈએ અહીં आसन्दी આદિ પદ ઉપલક્ષણ છે, તેથી બીજી જે જગ્યાએ પણ બેસવું કે સૂવું હોય ત્યાં પણ સાધુ પ્રતિલેખન કર્યા વિના બેસે કે સૂએ નહિ, અર્થાત્ સાધુએ સર્વત્ર પ્રતિલેખન કરીને જ બેસવું કે સૂવું જોઈએ (૫૫)

॥ टीका ॥

'गभीर' इत्यादि।

एते आसन्त्यादिस्थाः प्राणाः=प्राणिनः गम्भीरविचयाः=गम्भीरो=दुरवगमो विचयो=निश्चयो येषां ते तथोक्ताः, सूक्ष्मत्वाद्व्यवहितत्वाच्च तत्र निश्चेतु मशक्य इति भावः, अथवा 'गम्भीरविजयाः' इति छाया गम्भीरः=दुरवगाहो विजयः=आश्रयो येषां ते तथोक्ताः दुरवगाहस्थानवासिन इत्यर्थः; प्राणाः=प्राणिनः अतएव दुष्प्रतिलेख्याः=दुर्निरीक्ष्या भवन्ति, यद्वा एते आसन्त्यादयः गम्भीरविजयाः=गम्भीराः=प्रकाशरहिता विजयाः = आश्रयाः जीवानां विवरादीनि स्थानानि येषु ते तथोक्ताः, अतएव तत्र प्राणाः (प्राणिनः) दुष्प्रतिलेख्या भवन्ति। एतदर्थम्=एतन्निमित्तम् आसन्दी पर्यङ्कः च शब्दात् मञ्चकाऽऽशालकौ च विवर्जिताः = निषिद्धास्तीर्थङ्करादिभिरितिशेषः। निषद्यापीठकयोस्तु प्रतिलेखनं कर्तुं शक्यते इति न तत्र प्रतिषेधः कृत इति भावः ॥५६॥

आसन्दी आदि पर बैठने में दोष बताते हैं—'गभीर' इत्यादि।

आसन्दी आदि में रहने वाले प्राणियों का निश्चय होना बहुत ही कठिन है। अथवा वे ऐसे दुरवगाह स्थान में रहते है कि उनकी प्रतिलेखना दुष्कर है। अथवा आसन्दी आदि के छिद्र प्रकाश शून्य होते हैं इसलिए उनमें रहनेवाले खटमल आदि प्राणियो की प्रतिलेखना नहीं हो सकती। इस कारण तीर्थंकर भगवान ने आसन्दी पलंग और 'च' शब्द से माचा और आशालक (आराम कुरसी) पर बैठने सोनेका निषेध किया है। निषद्या और पीठक की तो प्रतिलेखना हो सकती है इसलिए भगवानने उनका निषेध नहीं किया ॥ ५६ ॥

ખુરશી આદિ પર બેસવામા દોષ બતાવે છે—गभीर० ઇત્યાદિ

ખુરશી આદિમા રહેનાર પ્રાણીઓનો નિશ્ચય થવો બહુજ કઠીન છે અથવા તેઓ એવા દુરવગાહ (ન જોઈ શકાય તેવા) સ્થાનમા રહે છે કે તેમની પ્રતિલેખના દુષ્કર છે અથવા ખુરશી આદિના છિદ્રો પ્રકાશરહિત હોય છે તેથી તેમા રહેનાર માકડ આદિ પ્રાણીઓની પ્રતિલેખના થઇ શકતી નથી એ કારણે તીર્થંકર ભગવાને ખુરશી પલંગ અને च શબ્દથી ખાટલો અને આરામ ખુરશી પર બેસવા-સૂવાનો નિષેધ કર્યો છે નિષદ્યા અને પીઠકની પ્રતિલેખના થઇ શકે છે, તેથી ભગવાને તેનો નિષેધ કર્યો નથી (૫૬)

निषद्यानामकं षोडशस्थानमाह—'गोयरग्ग' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

गोयरग्गपविट्ठस्स निसिज्जा जस्स कप्पइ।
इमेरिसमणायारं आवज्जइ अबोहियं ॥५७॥

॥ छाया ॥

गोचराग्रप्रविष्टस्य निषद्या यस्य कल्पते।
एतादृशमनाचारम् आपद्यते अबोधिकम् ॥५७॥

॥ टीका ॥

'गोयरग्ग' इत्यादि।

गोचराग्रप्रविष्टस्य=भिक्षाचर्यां गतस्य यस्य साधोः निषद्या=निषदनं कल्पते अर्थाद् भिक्षाचर्यां गतो यः साधुर्गृहिभवने उपविशतीति भावः; सः अबोधिकम्=अबोधिफलकं मिथ्यात्वफलकमित्यर्थः एतादृशं=वक्ष्यमाणस्वरूपम् अनाचारम् आपद्यते=प्राप्नोति ॥५७॥

निषद्यासेविनो दोषान् प्रदर्शयति—'विवत्ती' इत्यादि।

(मूलम्)

विवत्ती बंभचेरस्स पाणाणं च वहे वहो।
वणीमगपडिग्घाओ पडिकोहो अगारिणं ॥५८॥

निषद्या नामक सोलहवाँ स्थान कहते हैं— 'गोयरग्ग' इत्यादि।

भिक्षाचरी के लिए गया हुआ जो साधु गृहस्थ के घरमें बैठता है—वह मिथ्यात्व-रूप फल देने वाले अनाचार को प्राप्त होता है—जिस का कथन आगे करते हैं ॥ ५७ ॥

નિષદ્યા નામક સોળમું સ્થાન કહે છે—ગોયરગ્ગ૦ ઇત્યાદિ

ભિક્ષાચરીને માટે ગયેલો સાધુ ગૃહસ્થના ઘરમાં બેસે છે તે મિથ્યાત્વરૂપ ફળ આપનારા અનાચારને પ્રાપ્ત થાય છે, જેનું કથન આગળ કરવામાં આવે છે (૫૭)

॥ छाया ॥ —

विपत्तिर्ब्रह्मचर्यस्य प्राणानां च वधे वधः।
वनीपकप्रतिघातः प्रतिक्रोधः अगारिणाम् ॥५८॥

॥ टीका ॥

'विवत्ती' इत्यादि'

गृहस्थगेहोपवेशने ब्रह्मचर्यस्य=कुशलानुष्ठानलक्षणचतुर्थ-व्रतस्य विपत्तिः विनाशो भवतीति शेषः, सर्वत्र योज्यः। तथा प्राणानां=प्राणिनां वधे=हिंसायां सत्यां वधः=संयमोपघातो भवति, भिक्षार्थं समुपविष्टसाध्वर्थं पाकादिकरणे आधाकर्मिकाद्याहारग्रहणेन तत्रत्यजीवविराधनायाः साधुसम्बन्धादितिभावः। तथा वनीपकप्रतिघातः=वनीपकानां=भिक्षार्थमागतानां दुर्गतानां प्रतिघातः=भिक्षान्तरायो भवति तथा अगारिणां=गृहस्वामिनां प्रतिक्रोधः=स्त्रीसान्निध्यात्साधुं प्रति साधुसान्निध्यात् स्त्रियं प्रति च क्रोधो भवतीत्यर्थः ॥५८॥

गृहस्थ के घरमें बैठने वाले साधु के दोष बताते हैं— 'विवत्ती' इत्यादि।

गृहस्थ के घरमें बैठने से चतुर्थ—ब्रह्मचर्य—महाव्रत का विनाश हो जाता है प्राणियों की हिंसा होने से संयम का घात होता है, अर्थात् भिक्षार्थ बैठे हुए साधु के लिए आहार बनाने से वह आहार आधाकर्मिक आदि दोषों से दूषित होता है और उसके ग्रहण करने से पट्काय के जीवों की विराधना का दोष साधु को लगता है। तथा भिक्षाके लिए आये हुए वनीपक (भिखारी) आदि को भिक्षा में अन्तराय (विघ्न) पडता है। और स्त्रीके सानिध्य से साधु के प्रति और साधु के सानिध्य से स्त्री के प्रति गृहस्वामी को क्रोध होता है ॥ ५८ ॥

ગૃહસ્થના ઘરમાં બેસનારા સાધુના દોષો બતાવે છે-विवत्ती० ઇત્યાદિ

ગૃહસ્થના ઘરમાં બેસવાથી ચોથા બ્રહ્મચર્ય મહાવ્રતનો વિનાશ થાય છે, પ્રાણીઓની હિંસા થવાથી સંયમનો ઘાત થાય છે, અર્થાત્ ભિક્ષાર્થે બેઠેલા સાધુને માટે આહાર બનાવવાથી તે આહાર આધાકર્મિક આદિ દોષોથી દૂષિત થાય છે, અને તેને ગ્રહણ કરવાથી ષટ્કાયના જીવોની વિરાધનાનો દોષ સાધુને લાગે છે તેમજ ભિક્ષાને માટે આવેલા વનીપક (ભિખારી) આદિને ભિક્ષામાં અંતરાય (વિઘ્ન) પડે છે અને સ્ત્રીના સાનિધ્યથી સાધુની પ્રત્યે અને સાધુના સાનિધ્યથી સ્ત્રીની પ્રત્યે ગૃહસ્વામીને ક્રોધ આવે છે (૫૮)

अन्यदपि दूषणमाह— 'अगुत्ती' इत्यादि।

(मूलम्)

२ १ ५ ४ ३ ६

अगुत्ती बंभचेरस्स इत्थीओ वावि संकणं।

७ ८ ९ १०

कुसीलवड्ढणं ठाणं दूरओ परिवज्जए ॥५९॥

॥ छाया ॥

अगुप्तिः ब्रह्मचर्यस्य स्त्रीतो वाऽपि शङ्कनम्।
कुशीलवर्द्धनं स्थानं दूरतः परिवर्जयेत् ॥५९॥

॥ टीका ॥

'अगुत्ती' इत्यादि।

ब्रह्मचर्यस्य अगुप्तिः=अरक्षणं तत्र स्त्रिया सह संभाषणसानुरागाऽवलोकनादितो ब्रह्मचर्यव्रतस्य मालिन्यप्रसङ्गादिति भावः, अपिवा स्त्रीतः=स्त्रीसंसर्गतः शङ्कनम्=ब्रह्मचर्यव्रते शङ्काद्युत्पत्तिः; यथा तत्रोपवेशने स्त्रिया हावभावादिदर्शनसमुद्दीपितमदनविकाराक्रान्तमानसस्य विस्मृतसंयमानुपालनतन्महत्त्वतत्फल–परमपदलाभादिकस्य पुरोवर्त्तिनीं स्त्रियमेव सर्वसुखमूलभूतां मन्यमानस्य साधोः

और भी दोष कहते हैं— 'अगुत्ती' इत्यादि।

स्त्री के साथ भाषण करने से तथा सानुराग अवलोकन करने से ब्रह्मचर्य व्रत में मलीनता आती है। और स्त्री का सम्पर्क रहने से ब्रह्मचर्य व्रत में शङ्का होती है। तथा स्त्री के हावभाव आदि के दिखाव से साधु के भाव (परिणाम) कामवासनावासित हो जाते हैं। स्त्री को ही सब सुखों का मूल समझकर वह ऐसी कुतर्कणायें करने लगता है कि–'अगले जन्म में फल देने वाले तथा कठिनाई से पलने योग्य इस ब्रह्मचर्य में क्या

બીજા પણ દોષો કહે છે–अगुत्ती० ઇત્યાદિ

સ્ત્રીની સાથે ભાષણ કરવાથી તથા સાનુરાગ અવલોકન કરવાથી બ્રહ્મચર્યવ્રતમાં મલીનતા આવે છે સ્ત્રીનો સંપર્ક રહેવાથી બ્રહ્મચર્યવ્રતમાં શંકા થાય છે સ્ત્રીના હાવભાવ આદિના દેખાવથી સાધુના ભાવ (પરિણામ) કામવાસના-વાસિત થઇ જાય છે સ્ત્રીને જ સર્વ સુખોનું મૂળ સમજીને તે એવી કુતર્કણાઓ કરવા લાગે છે કે–આગલા જન્મમાં ફળ આપનાર તથા મુશ્કેલીથી પાળવા યોગ્ય આ બ્રહ્મચર્યમાં

'अलमनेन भवान्तरलभ्यफलदेन महाप्रयाससाध्येन ब्रह्मचर्यपालनेन' इत्यादि कुतर्कजालसमुद्भवने ब्रह्मचर्यव्रते शङ्काकाङ्क्षादिदोषोदयो भवति, उक्तञ्चागमे—

"निग्गंथस्स खलु इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोयमाणस्स निज्झायमाणस्य बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा भेयं वा लभिज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायकं हविज्जा केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा" इत्यादि। अतः कुशीलवर्द्धनं स्थानं निषद्यालक्षणं दूरतः परिवर्जयेत् नोपसेवेतेति भावः ॥५९॥

अत्रैवाऽपवादसूत्रमाह—'तिण्ह' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

५ ६ ८ ७ ९
तिण्हमन्नयरागस्स निसिज्जा जस्स कप्पइ।
१ २ ३ ४
जराए अभिभूयस्स वाहियस्स तवस्सिणो ॥६०॥

रक्खा है" ऐसी कुतर्कणाये उत्पन्न होने से ब्रह्मचर्य में शंका कांक्षा आदि दोष उत्पन्न होते है। आगम में कहा है—

"ब्रह्मचर्य महाव्रत पालन वाले निर्ग्रन्थ यदि स्त्री की मनोहर मनोरम इन्द्रियों का अवलोकन करे, विचार करे तो ब्रह्मचर्य में शंका कांक्षा विचिकित्सा उत्पन्न होती है, तथा संयम का भंग, उन्माद दीर्घकालीन रोग और आतंक उत्पन्न होते है तथा केवली भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है" इत्यादि।

इसलिए कुशील का बढाने वाला, गृहस्थ के घरमें बैठना साधुको नहीं कल्पता है ॥५९॥

શું ભળ્યું છે? એવા કુતર્કો ઉત્પન્ન થવાથી બ્રહ્મચર્યમાં શંકા કાંક્ષા આદિ દોષો ઉત્પન્ન થાય છે. આગળમાં કહ્યું છે કે—"બ્રહ્મચર્ય મહાવ્રત પાળવા માટે નિર્ગ્રન્થ જો સ્ત્રીની મનોહર-મનોરમ ઇંદ્રિયોનું અવલોકન કરે, વિચાર કરે, તો બ્રહ્મચર્યમાં શંકા-કાંક્ષા-વિચિકિત્સા ઉત્પન્ન થાય છે, તથા સંયમનો ભંગ, ઉન્માદ, દીર્ઘકાલીન રોગ અને પીડા ઉત્પન્ન થાય છે તથા કેવલી ભગવાને પ્રરૂપેલા ધર્મથી ભ્રષ્ટતા, એ દોષો ઉત્પન્ન થાય છે" ઇત્યાદિ એથી કરીને કુશીલને વધારનારું એવું ગૃહસ્થના ઘરમાં બેસવું સાધુને કલ્પતું નથી (૫૯)

॥ छाया ॥

त्रयाणामन्यतमस्य निषद्या यस्य कल्पते ।
जरयाऽभिभूतस्य व्याधितस्य तपस्विनः ॥६०॥

॥ टीका ॥

'तिण्ह' इत्यादि।

जरयाऽभिभूतस्य=वृद्धस्य, व्याधितस्य=रोगिणः तपस्विनः=तपश्चर्यापरायणस्य त्रयाणामेषा वृद्धादीनाम् अन्यतरागस्स 'सौत्रत्वाद्बहुनिर्द्धारणे तरप्'= अन्यतमस्य, एकस्य अन्यतमत्वलक्षणस्य प्रत्येकं समन्वयात् कस्यचिदित्यर्थः, यस्य साधोः निषद्या=गृहस्थगृहोपवेशनं कल्पते तस्य तत्रोपवेशनतो न दोष इति सम्बन्धः ॥६०॥

अथ स्नानाख्यं सप्तदश स्थानमाह—'वाहिओ' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ७ ५ ६ ८
वाहिओ वा अरोगी वा सिणाणं जो उ पत्थए।
१० ११ ९ १३ १४ १२
वुक्कंतो होइ आयारो जढो हवइ संजमो ॥६१॥

॥ छाया ॥

व्याधितो वा अरोगी वा स्नानं यस्तु प्रार्थयते ।
व्युत्क्रान्तो भवति आचारः त्यक्तो भवति संयमः ॥६१॥

यहां अपवाद बताते हैं— 'तिण्ह' इत्यादि।

वृद्ध, व्याधिग्रस्त (रोगी) और तपस्वी, इन तीनों में से प्रत्येक को गृहस्थ के घरमें बैठना कल्पता है। इसलिए उनके बैठने में दोष नहीं है ॥ ६० ॥

એમાં અપવાદ બતાવે છે, तिण्ह० ઇત્યાદિ

વૃદ્ધ, વ્યાધિગ્રસ્ત (રોગી) અને તપસ્વી, એ ત્રણમાંના પ્રત્યેકને જ ગૃહસ્થના ઘરમાં બેસવું કલ્પે છે, તેથી એના બેસવાનો દોષ નથી (૬૦)

(टीका)

'वाहिओ' इत्यादि।

व्याधितः=रोगी वा=अथवा अरोगी=व्याधिरहितो वा यस्तु=साधुः स्नानं देशतः सर्वतो वा प्रार्थयते कुरुते तेन साधुना आचारः=बाह्यतपोलक्षणः साधुसमाचारः व्युत्क्रान्तः=उल्लङ्घितो भवति जल्लपरीषहसहनाभावात् संयमः= दयालक्षणः त्यक्तो भवति अप्कायविराधनात् ॥६१॥

अचित्तजलेन स्नाने साधोः को दोषः? इत्याह-'संतिमे' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१२ ९ १० ११ ८ ६ ५
संतिमे सुहुमा पाणा घसासु भिलगासु य।
७ ८ ३ २ १ १३
जे य भिक्खू सिणायंतो वियडेणुप्पिलावए ॥६२।

॥ छाया ॥

सन्ति इमे सूक्ष्माः प्राणाः घसासु भिलगासु च।
ये च भिक्षुः स्नान् विकृतेन उत्प्लावयति ॥६२॥

स्नान नामक सत्तरहवाँ स्थान दरसाते हैं— 'वाहिओ' इत्यादि।

रोगी या नीरोगी जो कोई भी साधु एक देश से या सर्व देश से स्नान करता है वह आचार से च्युत होता है, क्योंकि वह मलपरीषह को सहन नहीं करता, तथा दयारूप संयम से रहित होता है, क्योंकि स्नान करने से अप्काय की विराधना होती है ॥ ६१ ॥

स्नान नामक सत्तरमुं स्थान हवे दर्शावे छे—वाहिओ० इत्यादि रोगी या नीरोगी जे कोइ पण साधु एक देशे या सर्व देशे स्नान करे छे ते आचारथी च्युत थाय छे, कारण के ते पण परीषहने सहन करतो नथी, तथा दयारूप संयमथी रहित थाय छे, कारण के स्नान करवाथी अप्कायनी विराधना थाय छे (६१)

॥ टीका ॥

'सति मे' इत्यादि।

विकृतेन=अचित्तजलेन स्नान=देशतः सर्वतो वा स्नानं कुर्वाणः भिक्षुः= साधुः घसासु='देशीयशब्दः' क्षारभूमिषु सच्छिद्रभूमिषु वा, च=पुनः भिलगासु= 'अयमपि देशीयशब्दः' वीर्दार्णभूमिषु श्लक्ष्णभूमिषु 'चिकनी' इति भाषा-प्रसिद्धासु भूमिषु च ये इमे=लोकप्रसिद्धाः सूक्ष्माः=लघुतनवः प्राणाः=प्राणिनः द्वीन्द्रियादयः सन्ति भूमौ कृतावासाः आहारार्थं संचरमाणा वा विद्यन्ते गम्य-मानत्वात् तान्=शतशताण्डशिशुसमूहसहितावाससमेतान भूमौ कृतावासान, इष्टाहारप्राप्तेः प्राक्तदाहारसहितान् वा अनवाप्तावासान संचरमाणान् विविधान जीवसंघातान् वा उत्प्लावयति=जलोर्ध्वभाग नयति जलोपरितनभा प्रापयन प्रवाहयति, आवासादितो वियोजयन अनिष्टदेश प्रापयन जलवेगेन व्याकुली-

अचित्त जलसे भी स्नान करने मे दोष लगता है सो कहते है— 'सतिमे' इत्यादि।

अचित्त जलसे भी एक देश मे या सर्वदेश से स्नान करने वाला साधु क्षार भूमि मे अथवा तिल छिद्र वाली भूमि में दराट वाली भूमि में अथवा चिकनी भूमि में रहे हुए सूक्ष्म शरीर वाले द्वीन्द्रिय आदि प्राणी, जो कि आहार आदि के लिए सचार करते हैं, उनको आहार प्राप्तिके पहले अथवा आहार के साथ स्नानजल बहा देता है। अर्थात अपने अभीष्ट स्थान पर पहुचने से पहेले ही वे पानी मे बहकर अपने निवासस्थान से वियुक्त होते हुए, अनिष्ट स्थान पर पहुच जाते है, यहा तक कि—उनके प्राणो का

અચિત્ત જળથી પણ સ્નાન કરવાથી દોષ લાગે છે, તે કહે છે—सतिमे० ઇત્યાદિ

અચિત્ત જળથી પણ એક દેશે યા સર્વદેશે સ્નાન કરનાર સાધુ ક્ષાર ભૂમિમા અથવા દર-છિદ્રવાળી ભૂમિમા, ચીગવાળી ભૂમિમા અથવા ચીકણી ભૂમિમા રહેલા સૂક્ષ્મ શરીરવાળા દ્વીન્દ્રિય આદિ પ્રાણીઓ જે આહાર આદિને માટે સચાર કરતા હોય છે તેમને આહાર પ્રાપ્તિની પહેલા અથવા આહારની સાથે સ્નાનનું જળ વહાવી દે છે-વહી જાય છે અર્થાત્ પોતાના અભીષ્ટ સ્થાન પર પહોચ્યા પહેલા જ તેઓ પાણીના પ્રવાહે જઈને પોતાના નિવાસ સ્થાનથી વિયુક્ત થઈ જઈને અનિષ્ટ સ્થળ પર પહોચી જાય છે, તે એટલે સુધી કે તેમના

कुर्वन तदीयप्राणात्ययमपि साधयतीत्यर्थः। स्नानीयसलिलस्य भूविवरादिषु प्रवेशे तत्रत्यानां जीवानां स्वस्वस्थानविनाशात् तत्रैव बहिर्निःसरणादिना वा विराधनाऽवश्यम्भाविनीत्याशयः ॥६२॥

(मूलम्)

१ ७ ११ १२ ८ ९ १०

तम्हा ते ण सिणायंति सीएण उसिणेण वा।

५ ४ ३ २ ६

जावज्जीवं वयं घोरं असिणाणमहिट्ठिगा ॥६३॥

॥ छाया ॥

तस्मात् ते न स्नान्ति शीतेन उष्णेन वा।
यावज्जीवं व्रतं घोरम् अस्नानमधिष्ठातारः ॥६३॥

॥ टीका ॥

'तम्हा' इत्यादि।

तस्मात्=उक्तदोषप्रसङ्गात् अस्नान=स्नानवर्जनलक्षणं घोरं=दुष्करं व्रतं यावज्जीवं=मरणावधि अधिष्ठातारः=पालयितारः ते=निर्ग्रन्थत्वेन प्रसिद्धाः साधवः शीतेन उष्णेन वा उदकेन न स्नान्ति=स्नानं न कुर्वन्तीत्यर्थः ॥६३॥

भी अन्त हो जाता है। तथा जब स्नानका जल बिल में घुस जाता है तो वहाँ के प्राणियों को स्थान भ्रष्ट होनेसे वहीं अथवा बहकर बाहर आजानेसे कष्ट पहुंचता है अत उनकी विराधना अवश्य होती है, इसलिए साधु को स्नान का त्याग करना चाहिए ॥६२॥

'तम्हा' इत्यादि। इसलिए उक्त दोषों का प्रसंग होने से स्नान त्याग करने का दुष्कर तप यावज्जीव पालने वाले निर्ग्रन्थ साधु ठंढ या गर्म किसी प्रकार के पानी से स्नान नहीं करते ॥ ६३ ॥

પ્રાણીઓનો પણ અંત થઇ જાય છે વળી જો સ્નાનનું જળ દરમાં પેસી જાય છે તો ત્યાંના પ્રાણીઓને સ્થાનભ્રષ્ટ થવાથી ત્યાં અથવા ખેંચાઇને બહાર આવી જવાથી કષ્ટ પહોંચે છે એટલે તેમની વિરાધના અવશ્ય થાય છે, તેથી સાધુએ સ્નાનનો ત્યાગ કરવો જોઇએ (૬૨)

तम्हा० ઇત્યાદિ તેથી ઉક્ત દોષોનો પ્રસંગ ઉત્પન્ન થવાથી સ્નાનનો ત્યાગ કરવાનું દુષ્કર તપ યાવજ્જીવન પાળનારા નિર્ગ્રન્થ સાધુ ઠંડા યા ગરમ કોઇ પ્રકારના પાણીથી સ્નાન કરતા નથી (૬૩)

॥ मूलम् ॥

२ ३ ४ ५ ६ ७
सिणाण अदुवा कक्कं लुद्धं पउमगाणि य ।
१ ९ ८
गायस्सुवणट्ठाए नायरंति कयाइवि ॥६४॥

॥ छाया ॥

स्नानम् अथवा कल्कं लोध्रं पद्मकानि च ।
गात्रस्योद्वर्त्तनार्थाय नाचरन्ति कदाचिदपि ॥६४॥

॥ टीका ॥

'सिणाण' इत्यादि ।

साधवः गात्रस्योद्वर्त्तनार्थाय=अङ्गपरिष्काराय शरीरमलापनयनपुरस्सर-कान्तिविशेषाऽऽधानायेत्यर्थः स्नान=स्नानोपकरणद्रव्यम् , अथवा कल्कं=सर्षपादि-खल, लोध्र=गन्धद्रव्य, पद्मकानि=पद्मकाष्ठानि तत्साधिततैलानीत्यर्थः, च शब्दा-दन्यदपि स्नानोपयोगि द्रव्यं 'सावुन' इत्यादि भाषाप्रसिद्ध कदाचिदपि नाऽऽचरन्ति=न सेवन्ते ॥६४॥

अथाष्टदश स्थानमाह—

(मूलम्)

१ २ ३ ४ ५
नगिणस्स वावि मुडस्स दीहरोमनहंसिणो ।
६ ७ ९ ८ १०
मेहुणा उवसंतस्स किं विभूसाइ कारियं ॥६५॥

'सिणाण' इत्यादि। शरीर का मैल उतार कर शोभायमान करने के लिए साधु स्नान योग्य सामग्री का, सरसौ आदि की खल का, लोध्र का तथा पद्मकाठ अर्थात् उसके तैल का और 'च' शब्द से अन्य सावुन आदि स्नानोपयोगी द्रव्य का कदापि सेवन नहीं करते ॥ ६४ ॥

सिणाण० ઇત્યાદિ શરીરનો મેલ ઉતારીને શોભાયમાન કરવાને માટે સાધુ સ્નાન યોગ્ય સામગ્રીનું, સરસવ આદિના ખોળનું, લોધ્રનું તથા પદ્મકાષ્ઠ અર્થાત્ તેના તેલનું અને च શબ્દથી અન્ય સાબુ આદિ સ્નાનોપયોગી દ્રવ્યોનું સેવન કદાપિ કરતા નથી (૬૪)

(छाया)

नग्नस्य वाऽपि मुण्डस्य दीर्घरोमनखवतः ।
मैथुनाद् उपशान्तस्य किं विभूषया कार्यम् ॥६५॥

॥ टीका ॥

'नगिणस्स' इत्यादि ।

नग्नस्य=वस्त्रमूर्च्छारहितस्य गच्छनिवासिनः स्थविरकल्पिकस्य गच्छ निर्गतस्य जिनकल्पिकस्य वेत्यर्थः। अपिवा मुण्डस्य=द्रव्यतो लुञ्चितकेशस्य, भावतो विषयविरतस्य दीर्घरोमनखवतः=प्रवृद्धकेशनखवतः एतद् विशेषणं जिनकल्पिकापेक्षया, स्थविरकल्पिनस्तु प्रमाणोपेतमेव केशनखादिकं धारयन्ति । मैथुनादुपशान्तस्य=मैथुनोपरतस्य च विभूषया=अङ्गपरिष्कारेण किं कार्यं=किं प्रयोजनं, न किञ्चिदित्यर्थः ॥६५॥

अब अठारहवाँ स्थान कहते हैं— 'नगिणस्स' इत्यादि। वस्त्र विषयक मूर्छा-रहित (गच्छवास) स्थविर कल्पी, अथवा गच्छनिर्गत जिनकल्पी द्रव्यसे-लुंचित केश वाले तथा भावसे-विषयों के त्यागी मुंडित, जिनके केश, तथा नख आदि बढे हुए हैं ऐसे मैथुन से उपरत साधुओं को शरीर विभूषा का क्या प्रयोजन है?। अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं।

यहां, 'दीर्घ केश नख वाले' यह विशेषण जिनकल्पी साधुकी अपेक्षासे कहा गया है क्योंकि स्थविरकल्पी साधु प्रमाणोपेत केश और नख रखते हैं ॥ ६५ ॥

હવે અઢારમું સ્થાન કહે છે— नगिणस्स० ઇત્યાદિ વસ્ત્ર વિષયક મૂર્છારહિત (ગચ્છવાસ) સ્થવિરકલ્પી, અથવા ગચ્છનિર્ગત જિનકલ્પી દ્રવ્યથી લુંચિત કેશવાળા તથા ભાવથી વિષયોના ત્યાગી મુંડિત, જેના કેશ તથા નખ આદિ વધેલા છે એવા, મૈથુનથી ઉપરત સાધુઓને શરીરની વિભૂષાનું શું પ્રયોજન છે? અર્થાત કશું પ્રયોજન નથી

અહીં 'દીર્ઘકેશનખવાળા' એ વિશેષણ જિનકલ્પી સાધુની અપેક્ષાથી કહેવામાં આવ્યું છે કારણ કે સ્થવિર કલ્પી સાધુ પ્રમાણોપેત કેશ અને નખ રાખે છે (૬૫)

निष्प्रयोजनत्वप्रदर्शनेन निषिद्धस्य विभूषाकरणस्य कदाचित्साधुना दोषाभावदर्शनाद् विभूषाकरणप्रसङ्गः स्यादतस्तद्वारणाय तद्दोषानपि प्रदर्शयति- 'विभूसा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

६ ९ ८ १० ७
विभूसावत्तियं भिक्खू कम्मं बंधइ चिक्कणं।
४ २ १ ५ ३
संसारसायरे घोरे जेण पडइ दुरुत्तरे ॥६६॥

॥ छाया ॥

विभूषाप्रत्ययं भिक्षुः कर्म बध्नाति चिक्कणम्।
संसारसागरे घोरे येन पतति दुरुत्तरे ॥६६॥

॥ टीका ॥

'विभूसा' इत्यादि।

येन कर्मणा जीवः घोरे=भयंकरे जन्मजरामरणादिभयाकुले इत्यर्थः। अतएव दुरुत्तरे=उत्तरीतुमशक्ये संसारसागरे=भवसमुद्रे पतति तत्=तथाविधं= विभूषाप्रत्ययं=शरीरपरिष्कारहेतुकं चिक्कणं=दुश्छेदं कर्म ज्ञानावरणीयादिलक्षणं भिक्षुः=साधुः बध्नाति=संगृह्णातीत्यर्थः ॥६६॥

निष्प्रयोजन कहकर निषेध किये हुए विभूषाकरण को कदाचित् कोई निर्दोष समझकर आचरण करने लगे अतः अब उसके दोष बताते हैं-' विभूसावत्तियं ' इत्यादि।

जिस क्रियासे जीव, जन्म मरण के दुःखों से व्याकुल दुस्तर संसारसागर में गिरता है, ऐसी शरीरविभूषा से उत्पन्न होने वाले ज्ञानावरणीय आदि चिकने कर्मों को साधु बाँधता है। अर्थात् शरीर की विभूषा से चिकने कर्मों का बंध होता है ॥ ६६ ॥

નિષ્પ્રયોજન કહીને નિષેધ કરેલા વિભૂષાકરણને કદાચિત્ કોઈ નિર્દોષ સમજીને આચરણ કરવા લાગે, તેથી હવે એના દોષ બતાવે છે વિભૂસાવત્તિય ઇત્યાદિ

જે ક્રિયાથી જીવ જન્મમરણના દુઃખોથી વ્યાકુળ દુસ્તર સંસારસાગરમાં પડે છે, એવી શરીરવિભૂષાથી ઉત્પન્ન થનાર જ્ઞાનાવરણીય આદિ ચીકણા કર્મોને સાધુ બાંધે છે અર્થાત્ શરીરની વિભૂષાથી ચીકણા કર્મોનો બંધ ઉત્પન્ન થાય છે (૬૬)

बाह्यविभूपादोषकथनानन्तर विभूषासकल्पदोषमाह—

॥ मूलम् ॥

२ ३ १ ५ ४
विभूसावत्तिय चेय वुद्धा मन्नति तारिस ।
८ ७ ६ १० ९ ११
सावज्जबहुल चेयं, नेयं ताईहि सेवियं ॥६७॥

॥ छाया ॥

विभूषाप्रत्ययं चेतः बुद्धा मन्यन्ते तादृशम् ।
सावद्यबहुलं चैव नैतत् त्रायिभिः सेवितम् ॥६७॥

॥ टीका ॥

' विभूषा ' इत्यादि—

बुद्धाःसर्वज्ञाः तीर्थकरादयः विभूषाप्रत्ययं=प्रत्येति=प्रतिगच्छति स्मरतीति यावत् प्रत्ययः, विभूषायाः=शरीरमण्डनस्य प्रत्ययः स्मरणकर्तृ, तम्–विभूषाप्रत्यय शरीरमण्डनाभिलाषीत्यर्थः, प्रत्ययशब्दस्य नित्यपुँल्लिङ्गतया न लिङ्गव्यत्ययः। यद्वा–विभूषायाः प्रत्ययो हेतुः विभूषाप्रत्ययः तम् , विभूषाकरणप्रवृत्तौ कारणीभूतमित्यर्थः, लोके हि प्रायो मनसि प्रथम सकल्प्य (कर्तव्यार्थान्निश्चित्य) क्रियामात्रे प्रवृत्तिर्दृश्यते इति चित्तस्य प्रवृत्तिकारणत्वमिति भावः। चेतः=चित्त, तादृश=बाह्यविभूषातुल्य, ससारसागरान्तःपतनकारणत्वेन चिक्कणकर्मबन्ध-

बाह्य विभूषा के दोष दिखाकर अब विभूषाके सकल्पके दोष दिखलाते हैं—
' विभूसावत्तिय ' इत्यादि ।

जिस चित्तमे शरीर की विभूषा की अभिलाषा होती है उस चित्त को भी तीर्थंकर भगवान ने वैसा ही अथात् अपार ससारसागर में गिराने वाला तथा बाह्य विभूषा करने

બાહ્ય વિભૂષાના દોષો બતાવીને હવે વિભૂષાના સંકલ્પના દોષો બતાવે છે–
विभूसावत्तिय० ઇત્યાદિ

જે ચિત્તમાં શરીરની વિભૂષાની અભિલાષા હોય છે, તે ચિત્તને પણ તીર્થંકર ભગવાન એવું જ અર્થાત્ અપાર સંસાર સાગરમાં પાડનારૂં તથા બાહ્ય વિભૂષા

हेतुत्वसाम्यादिति भावः, मन्यन्ते=केवलालोकेन जानन्ति, एवंच=गाढविभूषा-तुल्यत्वे सति च एतत्=विभूषानुचिन्तन मावद्यबहुलम्=पापप्रचुर विविधपापजनक-मित्यर्थः। अतः त्रायिभिः=स्वपररक्षापरायणैः (मोक्षाभिलाषिभिरित्यर्थः) न सेवित=न कृतमित्यर्थः ॥६७॥

उत्तरगुणकथनप्रसङ्गे शोभावर्जनरूपाऽष्टादशस्थानकथनेनाष्टादशापि स्थानान्यभिहितानि, संप्रति तेषां यथाविधिमाराधनप्रदर्शनपूर्वकमुपसंहारमाह—

(मूलम्)

८ ७ ५ २ ४ १ ३

खवंति अप्पाणममोहदंसिणो, तवे रया संजमअज्जवे गुणे।

११ १० ९ १ १२ १४ १३ १५

धुणंति पावाइं पुरेकडाइं, नवाइं पावाइं न ते करंति ॥६८॥

॥ छाया ॥

क्षपयन्ति आत्मानममोह (त्र) दर्शिनः, तपसि रताः संयमार्जवे गुणे।
धुन्वन्ति पापानि पुराकृतानि, नवानि पापानि न ते कुर्वन्ति ॥६८॥

वाले के समान चिकन कर्मबन्धका कारण माना है अर्थात् विभूषाका अनुचिन्तन (अभिलाप) करने से भी पापों की उत्पत्ति होती है। ऐसी विभूषा के संकल्प को स्वपररक्षा (हित) चाहने वाले महापुरुषों ने सेवन नहीं किया है। ॥ ६७ ॥

उत्तर गुणों के कथन के प्रसंगमें शरीर की शोभा का परित्याग रूप अठारहवाँ स्थान कहने से अठारहों स्थानों का कथन हो चुका। अब उनका यथाविधि आराधन करना बताते हुए उपसंहार करते हैं— 'खवंति' इत्यादि।

કરનારાની સમાન ચીકણા કર્મબંધનું કારણ માન્યું છે, અર્થાત્ વિભૂષાનું અનુચિંતન (અભિલાષા) કરવાથી પણ પાપોની ઉત્પત્તિ થાય છે એવી વિભૂષાના સંકલ્પને સ્વપર રક્ષા (હિત) ચાહનારા મહાપુરૂષોએ સેવન કર્યું નથી (૬૭)

ઉત્તર ગુણોના કથનના પ્રસંગમાં શરીરની શોભાના પરિત્યાગરૂપ અઢારમું સ્થાન કહેવાથી અઢારે સ્થાનોનું કથન થઈ ગયું હવે તેનું યથાવિધિ આરાધન કરવાનું બતાવતા ઉપસંહાર કરે છે ખવંતિ૦ ઇત્યાદિ

बाह्यविभूषादोषकथनानन्तर विभूषासकल्पदोषमाह—

॥ मूलम् ॥

२ ३ १ ५ ४
विभूसावत्तिय चेय बुद्धा मन्नति तारिस ।
८ ७ ६ १० ९ ११
सावज्जबहुल चेयं, नेयं ताईहि सेवियं ॥६७॥

॥ छाया ॥

विभूषाप्रत्ययं चेतः बुद्धा मन्यन्ते तादृशम् ।
सावद्यबहुलं चैव नैतत् त्रायिभिः सेवितम् ॥६७॥

॥ टीका ॥

' विभूषा ' इत्यादि—

बुद्धाःसर्वज्ञाः तीर्थकरादयः विभूषाप्रत्यय=प्रत्येति=प्रतिगच्छति स्मरतीति यावत् प्रत्यय', विभूषाया'=शरीरमण्डनस्य प्रत्यय' स्मरणकर्तृ, तम्–विभूषाप्रत्यय शरीरमण्डनाभिलाषीत्यर्थः, प्रत्ययशब्दस्य नित्यपुँल्लिङ्गतया न लिङ्गव्यत्ययः। यद्वा–विभूषायाः प्रत्ययो हेतुः विभूषाप्रत्ययः तम् , विभूषाकरणप्रवृत्तौ कारणीभूतमित्यर्थः; लोके हि प्रायो मनसि प्रथम सकल्प्य (कर्तव्यार्थान्निश्चित्य) क्रियामात्रे प्रवृत्तिर्दृश्यते इति चित्तस्य प्रवृत्तिकारणत्वमिति भाव । चेत=चित्त, तादृश=बाह्यविभूषातुल्य, ससारसागरान्तःपतनकारणत्वेन चिक्कणकर्मबन्ध-

---

बाह्य विभूषा के दोष दिखाकर अब विभूषाके सकल्पके दोष दिखलाते हैं—
' विभूसावत्तिय ' इत्यादि।

जिस चित्तमें शरीर की विभूषा की अभिलाषा होती है उस चित को भी तीर्थंकर भगवान ने वैसा ही अर्थात् अपार ससारसागर मे गिराने वाला तथा बाह्य विभूषा करने

બાહ્ય વિભૂષાના દોષો બતાવીને હવે વિભૂષાના સંકલ્પના દોષો બતાવે છે-
विभूसावत्तिय० ઇત્યાદિ

જે ચિત્તમાં શરીરની વિભૂષાની અભિલાષા હોય છે, તે ચિત્તને પણ તીર્થંકર ભગવાન એવું જ અર્થાત્ અપાર સંસાર સાગરમાં પાડનારું તથા બાહ્ય વિભૂષા

हेतुत्वसाम्यादिति भावः, मन्यन्ते=केवलालोकेन जानन्ति, एवंच=वाद्यविभूषा-तुल्यत्वे सति च एतत्=विभूषानुचिन्तन मावत्रबहुलम्=पापप्रचुर विविधपापजनक-मित्यर्थः। अतः त्रायिभिः=स्वपररक्षापरायणैः (मोक्षाभिलाषिभिरित्यर्थः) न सेवित=न कृतमित्यर्थः ॥६७॥

उत्तरगुणकथनप्रसङ्गे शोभावर्जनरूपाऽष्टादशस्थानकथनेनाष्टादशापि स्थानान्यभिहितानि, सम्प्रति तेषा यथाविधिसमाराधनप्रदर्शनपूर्वकमुपसंहारमाह—

(मूलम्)

८ ७ ६ ३ ४ १ २

खवंति अप्पाणममोहदंसिणो, तवे रया संजमअज्जवे गुणे।

११ १० ९ १२ १३ १४ , १५

धुणंति पावाइ पुरेकडाइं, नवाइ पावाइ न ते करंति ॥६८॥

॥ छाया ॥

क्षपयन्ति आत्मानममोह (घ) दर्शिनः, तपसि रताः संयमार्जवे गुणे।
धुन्वन्ति पापानि पुराकृतानि, नवानि पापानि न ते कुर्वन्ति ॥६८॥

वाले के समान चिक्कन कर्मबन्धका कारण माना है अर्थात् विभूषाका अनुचिन्तन (अभिलाष) करने से भी पापों की उत्पत्ति होती है। ऐसी विभूषा के संकल्प को स्वपररक्षा (हित) चाहने वाले महापुरुषों ने सेवन नहीं किया है। ॥ ६७ ॥

उत्तर गुणों के कथन के प्रसगमें शरीर की शोभा का परित्याग रूप अठारहवाँ स्थान कहने से अठारहों स्थानों का कथन हो चुका। अब उनका यथाविधि आराधन करना बताते हुए उपसहार करते हैं— 'खवंति' इत्यादि।

કરનારાની સમાન ચીકણા કર્મબંધનું કારણ માન્યું છે, અર્થાત્ વિભૂષાનું અનુચિંતન (અભિલાષા) કરવાથી પણ પાપોની ઉત્પત્તિ થાય છે એવી વિભૂષાના સંકલ્પનું સ્વપર રક્ષા (હિત) ચાહનારા મહાપુરૂષોએ સેવન કર્યું નથી (૬૭)

ઉત્તર ગુણોના કથનના પ્રસંગમાં શરીરની શોભાના પરિત્યાગરૂપ અઢારમું સ્થાન કહેવાથી અઢારે સ્થાનોનું કથન થઈ ગયું હવે તેનું યથાવિધિ આરાધન કરવાનું બતાવતા ઉપસંહાર કરે છે ખવંતિ૦ ઇત્યાદિ

(टीका)

' खवति ' इत्यादि—

सयमार्जवे=संयमः सप्तदशप्रकारकः, आर्जवं=सरलता निष्कपटभावः ते यस्य तत् सयमार्जव तस्मिन् द्वेषमायादिरहिते इत्यर्थः; तपसि=चतुर्भक्तादिलक्षणे गुणे च रताः=तत्पराः, यद्वा– 'तपसि, सयमे, आर्जवे, गुणे च रताः' इत्यन्वयः। तत्र गुणे=गुणपदप्रतिपाद्ये पञ्चमहाव्रतलक्षणे मूलगुणे, नानाविधाभिग्रहादिस्वरूपे उत्तरगुणे चेत्यर्थः, अन्यतरत्-प्राग्व्याख्यातम्। अमोहदर्शिनः= अवितथपदार्थदर्शिनः आचारगोचरविवेकवन्त इत्यर्थः। अथवा=अमोघदर्शिनः इतिच्छाया, अमोघ=स्वकार्यपरमपदसाधनाव्यभिचारित्वेन सर्वथा सर्वदाऽवश्य फलदातृत्वाद् अव्यर्थं सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयमित्यर्थः तत् पश्यन्ति तच्छीला अमोघदर्शिनः मोक्षमार्गैकलक्ष्या इत्यर्थः, ते=साधवः, आत्मानम्=आत्मनः कषायादिमलं क्षपयन्ति=विनाशयन्ति कषायमलापहारेणात्मानं शोधयन्तीत्यर्थः। यद्वा—आत्मानं क्षपयन्ति=अनुपशान्तमात्मानं शमयन्ति शमेन योजयन्तीत्यर्थः, तथा पुराकृतानि=अनन्तभवोपार्जितानि पापानि=ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि धुन्वन्ति=नाशयन्ति, नवानि=नूतनानि पापानि न कुर्वन्ति=नोत्पादयन्ति ॥

सत्तरह प्रकार के सयम म, सरलता (निष्कपटता) रूप गुण में तथा चतुर्भक्त आदि तपों में तत्पर, अथवा गुण अर्थात् पच महाव्रत रूप मूल गुण तथा नाना प्रकार के अभिग्रह आदि रूप उत्तर गुणों मे अनुरक्त, आचार गोचर के विवेकी अथवा मोक्ष के निश्चय के साधक सम्यग्ज्ञान आदि रत्नत्रयको ही मोक्षफलदाता समझने वाले अर्थात् मोक्षमार्ग मे ही उपयोग लगाने वाले वे साधु अपनी आत्मा को शान्तियुक्त बनाते हैं, तथा पूर्व के अनन्त भवो म उपार्जन किए हुए ज्ञानावरण आदि पाप कर्मों को नाश करते हैं और नवीन कर्मों को नहीं बाधते।

સત્તર પ્રકારના સયમમા, સરળતા (નિષ્કપટતા) રૂપ ગુણમા તથા ચતુર્થ ભક્ત આદિ તપોમા તત્પર અથવા ગુણ એટલે કે પચ મહાવ્રતરૂપ મૂળ ગુણો તથા નાના પ્રકારના અભિગ્રહ આદિરૂપ ઉત્તર ગુણોમા અનુરક્ત, આચાર-ગોચરના વિવેકી, અથવા મોક્ષના નિશ્ચયના સાધક સમ્યગ્જ્ઞાન આદિ રત્નત્રયને જ મોક્ષ ફળદાતા સમજનારા અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગમા જ ઉપયોગ લગાડનારા એ સાધુઓ પોતાના આત્માને શાન્તિયુક્ત બનાવે છે તથા પૂર્વના અનત ભવોમા ઉપાર્જન કરેલા જ્ઞાનાવરણ આદિ પાપકર્મોનો નાશ કરે છે અને નવીન કર્મોને બાધતા નથી

'अमोहदंसिणो' इत्यस्य 'अमोहदर्शिनः' 'अमोघदर्शिनः' इति-च्छायाद्वय, तत्र 'अमोहदर्शिनः' इति पदे मोहरहितानामेव मोक्षमार्गाऽऽराधना भवतीति, आचारगोचरविवेकवतामेव आत्मशुद्धिर्जायत इति च सूचितम्। 'अमोघदर्शिनः' इति पक्षे तु अमोघदर्शिना सविधे सर्वे कामगुणा मोघा भवन्तीत्यावेदितम्। 'सजमअज्जवे गुणे' इत्यत्रत्येन 'संजम' पदेन तपसः सर्व-भूतोपघातानुत्पादकत्वम्, 'अज्जवे' इति पदेन तपसो निदानराहित्य च सूचितम् ॥६८॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५
सओवसता अममा अकिंचणा, सविज्जविज्जाणुगया जसंसिणो।
७ ८ १० ९ ११ १२ १३ ६
उउप्पसन्ने विमले व चंदिमा, सिद्धिं विमाणाइ उवति ताइणो
१४
त्तिबेमि ॥६९॥

'अमोहदसिणो' पदसे यह सूचित किया है कि मोहरहित मुनि ही मोक्ष मार्ग की आराधना कर सकते है, और आचार गोचर के ज्ञाता की ही आत्मा शुद्ध होती है जब इस पद की 'अमोघदर्शिन' छाया करते है। तो ऐसा तात्पर्य ध्वनित होता है कि अमोघदर्शियो के सामने शब्द आदि कामगुण निष्फल हो जाते हैं, 'सजमअज्जवे गुणे' इसमें रहे हुए 'सजम' पदसे तपकी निदानरहितता सूचित का है ॥ ६८ ॥

अमाहदसिणो पदथी એમ સૂચિત કર્યું છે કે મોહરહિત મુનિજ મોક્ષ-માર્ગની આરાધના કરી શકે છે, અને આચાર-ગોચરના જ્ઞાતાનીજ આત્મશુદ્ધિ થાય છે જ્યારે આ પદની अमोघदशिन છાયા થાય છે, ત્યારે એવુ તાત્પર્ય ધ્વનિત થાય છે કે અમોઘદર્શીઓની સામે શબ્દ આદિ કામગુણ નિષ્ફળ જાય છે सजमअज्जवे गुणे એમા રહેલા सयम શબ્દથી તપની નિદાનરહિતતા સૂચિત કરી છે (૬૮)

॥ टीका ॥

'चउण्ह' इत्यादि—

प्रज्ञावान्=हेयोपादेयविवेकवान् चतसृणां=सत्याऽसत्यमिश्रव्यवहाररूपाणां वाचां खलु=निश्चयेन स्वरूपमिति शेषः, परिसंख्याय=विज्ञाय द्वयोः भाषयोः=सत्यव्यवहाररूपयोस्तु विनयं=निरवद्यप्रयोगं शिक्षेत=आचार्यादितो विजानीयात्, द्वे भाषे=असत्यमिश्ररूपे सर्वशः=सर्वथा न भाषेत=न वदेत् ॥१॥

आस्वपि विवेकमाह—'जा य सच्चा' इत्यादि।

(मूलम्)

१ २ ३ ४ ५ ७ ६ ८
जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा य जा मुसा।
९ १० ११ १२ १५ १३ १६ १४
जा य बुद्धेहि नाइन्ना, न तं भासिज्ज पन्नवं ॥२॥

अथवा भाषाशुद्धि के बिना धर्मकथा नहीं हो सकती इस लिए इस अध्ययन में वाक्यशुद्धि का वर्णन किया जाता है— 'चउण्ह' इत्यादि।

हेय और उपादेय का विवेकी साधु सत्य असत्य मिश्र और व्यवहार, इन चार प्रकार की भाषाओं का स्वरूप समझकर सत्य और व्यवहार भाषा का निरवद्य प्रयोग करना गुरु महाराज आदिसे सीखे—जाने, असत्य और मिश्र (सत्यासत्य) भाषा का कदापि उच्चारण न करे ॥ १ ॥

અથવા ભાષાશુદ્ધિ વિના ધર્મકથા થઈ શકતી નથી, તેથી આ અધ્યયનમાં વાક્યશુદ્ધિનું વર્ણન કરવામાં આવે છે ચઉણ્હ૦ ઇત્યાદિ

હેય અને ઉપાદેયનો વિવેકી સાધુ સત્ય અસત્ય મિશ્ર અને વ્યવહાર એ ચાર પ્રકારની ભાષાઓનું સ્વરૂપ સમજીને સત્ય અને વ્યવહાર ભાષાનો નિરવદ્ય પ્રયોગ કરવાનું ગુરૂ મહારાજ આદિ પાસેથી શીખે-જાણે અસત્ય અને મિશ્ર (સત્યાસત્ય) ભાષાનું કદાપિ ઉચ્ચારણ ન કરે (૧)

(छाया)

या च सत्या अवक्तव्या सत्यामृषा च या मृषा।
या च बुद्धैः नाचीर्णा न ता भाषेत प्रज्ञावान ॥२॥

॥ टीका ॥

'जा य' इत्यादि।

या च भाषा सत्या=वाङ्मनसयोर्यथार्थरूपा किन्तु सा अवक्तव्या=वक्तुमयोग्या चेत् अप्रियत्वादहितत्वाच्चेति भावः, ता=तादृशी भाषा प्रज्ञावान् न भाषेत=न वदेदिति सर्वत्र सम्बन्धः (१) तथा सत्यामृषा=सत्यरूपा मृषारूपा च मिश्रेत्यर्थः (२) या च भाषा मृषा=असत्यरूपा क्रोधादिहेतुका (३) या च भाषा असत्यामृषा न सत्या नापि मृषा व्यवहाररूपा किन्तु सा बुद्धैः=तीर्थङ्करादिभिः

इनमें भी विशेषता दिखलाते हैं— 'जायसच्चा' इत्यादि।

जो भाषा सत्य हो किन्तु यदि वह अप्रिय या स्वपर का अहित करने वाली होने से बोलने योग्य न हो उस भाषा को विवेकी मुनि न बोलें (१) जो सत्यासत्य अर्थात् मिश्र हो (२) तथा क्रोध आदि कारण वश निकली हुई होने से असत्य हो (३) तथा जो न सत्य हो न असत्य हो अर्थात् व्यवहारभाषा हो किन्तु भगवान तीर्थङ्कर और गणधरों ने जिसका प्रयोग न किया हो उस भाषा को भी साधु न बोलें (४) जैसे अस-

---

એમા પણ વિશેષતા બતાવે છે જાયસચ્ચા० ઇત્યાદિ

જે ભાષા સત્ય હોય કિન્તુ તે અપ્રિય યા સ્વપરનું અહિત કરનારી હોવાથી બોલવા યોગ્ય ન હોય એ ભાષાને વિવેકી મુનિ બોલે નહિ (૧) જે ભાષા સત્યાસત્ય અર્થાત્ મિશ્ર હોય (૨) તથા ક્રોધ આદિ કારણ વશ મુખમાંથી નીકળી હોવાને લીધે અસત્ય હોય (૩) તથા જે ન સત્ય હોય ન અસત્ય હોય અર્થાત્ વ્યવહાર ભાષા હોય પરન્તુ ભગવાન્ તીર્થંકર અને ગણધરો એનો ને પ્રયોગ ન કર્યો હોય, તે ભાષા પણ સાધુ બોલે નહિ (૩) જેમકે અસંયતીને કહેવું

नाचीर्णा=न व्यवहृता चेत् यथा आमन्त्रण्यादिका–असंयतं प्रति 'एहि' 'एवंकुरु' इत्यादिरूपा, (४) ता प्रज्ञावान न भाषेतेत्यर्थः ॥२॥

वक्तुमनुज्ञातयोर्व्यवहारसत्ययोरपि भाषयोः संभाषणविशेषविधिमाह–

(मूलम्)

असच्चमोसं सच्च च अणवज्जमकक्कसं ।
समुप्पेहमसंदिद्धं गिर भासिज्ज पन्नवं ॥३॥

॥ छाया ॥

असत्यामृषा सत्या च अनवद्याम् अकर्कशाम् ।
समुत्प्रेक्ष्याम् असन्दिग्धा गिर भाषेत प्रज्ञावान् ॥३॥

॥ टीका ॥

'असच्चमोस' इत्यादि।

प्रज्ञावान्=भाषागुणदोषज्ञः असत्यामृषा=न सत्या न मृषा व्यवहाररूपेत्यर्थः;

यती से कहना कि 'आओ' 'ऐसा करो' इत्यादि प्रकार की आमन्त्रणी आदि व्यवहार भाषा भी साधु को नहीं बोलना चाहिए ॥ २ ॥

व्यवहारभाषा तथा सत्यभाषा बोलने का शास्त्र में आज्ञा है किन्तु उन्हें किस प्रकार बोलना चाहिए सो विधि बताते हैं— 'असच्चमोस' इत्यादि।

प्रज्ञावान् अर्थात् भाषा के गुण दोष का ज्ञाता मुनि व्यवहार भाषा तथा सत्य

કે 'આવો' 'આમ કરો' ઇત્યાદિ પ્રકારની આમંત્રણી આદિ વ્યવહારભાષા પણ સાધુએ બોલવી ન જોઈએ (૨)

વ્યવહારભાષા તથા સત્યભાષા બોલવાની શાસ્ત્રમાં આજ્ઞા છે, પરંતુ તે કેવે પ્રકારે બોલવી જોઈએ તે વિધિ બતાવે છે-અસચ્ચમોસ૦ ઇત્યાદિ

પ્રજ્ઞાવાન્ અર્થાત ભાષાના ગુણ દોષનો જ્ઞાતા મુનિ વ્યવહારભાષા તથા

ताम्, तथा सत्या=वाङ्मनसयोर्यथार्थरूपा, चतसृषु भाषासु इमा द्वयीमपि गिरं= भाषां समुत्प्रेक्ष्या=सम्यगुत्प्रेक्षितु योग्या व्यवहरणीयामिति यावत्, यद्वा इमां द्वयीं गिरं समुत्प्रेक्ष्य=भाषागुणदोषान् विचार्येत्यर्थः, अनवद्या=परदुःखानुत्पादिका हितकरीमित्यर्थः, अकर्कशाम्=अकठिना प्रियामित्यर्थः, असन्दिग्धा=असत्यभाषा-द्वयसन्देहरहिता स्पष्टवर्णां सकलसंशयदोषरहितामिति यावत् भाषेत=वदेत्। सत्यव्यवहाररूपे अपि भाषे अहिताऽप्रियसंशयित्वे सति मृषावचारित्रभङ्गाय-भवत इति भावः ॥३॥

सत्याप्रपानिषेधमाह–'एयं च' इत्यादि।

(मूलम्)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ९ ८
एयं च अट्ठमन्नं वा जं तु नामेइ सासयं।
१० १६ १४ १३ १२१५ ११ १७
स भासं सच्चमोसं च तंपि धीरो विवज्जए ॥४॥

भाषा को भी इस प्रकार बोले कि जो भली भाँति बोलने योग्य हो। अथवा इन दोनों भाषाओं के गुण–अवगुण को विचार कर बोले। तथा जिस भाषा से किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचता हो जो हित करने वाली हो, कठोर न हो–प्रिय हो, और जिसके प्रयोग करने में असत्य और मिश्र भाषा होने का सन्देह न हो, समस्त संशयों से रहित स्पष्ट हो, उसी भाषाका प्रयोग करे। तात्पर्य यह है कि बोलने योग्य सत्य और व्यवहार भाषा में भी यदि अहितकारिता अप्रियता और सन्देहउत्पादकता रूप पूर्वोक्त दोष हों तो वे भी असत्य की तरह चारित्र का नाश करने वाली है ॥ ३ ॥

સત્યભાષા પણ એવી રીતે બોલે કે જે સારી પેઠે બોલવા યોગ્ય હોય અથવા એ બેઉ ભાષાઓના ગુણ-અવગુણનો વિચાર કરીને બોલે તથા જે ભાષાથી કોઇ પ્રાણીને કષ્ટ ન ઉપજે, જે હિત કરનારી હોય, કઠોર ન હોય-પ્રિય હોય, અને જેનો પ્રયોગ કરવામા અસત્ય અને મિશ્ર ભાષા હોવાનો સદેહ ન હોય, સશયોથી રહિત-સ્પષ્ટ હોય, એવી ભાષાનો પ્રયોગ કરે તાત્પર્ય એ છે કે બોલવાને યોગ્ય સત્ય અને વ્યવહાર ભાષામા પણ જો અહિતકારિતા અપ્રિયતા અને સદેહોત્પાદકતા રૂપ પૂર્વોક્ત દોષ હોય તો તે પણ અસત્યની પેઠે જ ચારિત્રનો નાશ કરનારી છે (૩)

॥ छाया ॥

एत च अर्थमन्य वा यस्तु नामयति शाश्वतम् ।
स भाषा सत्यामृषा च तामपि धीरो विवर्जयेत् ॥४॥

(टीका)

'एयंच' इत्यादि ।

एत = पूर्वगाथाप्रतिषिद्धम्, अर्थम्=सावद्यकर्कशसंशयितरूपमन्य वा तत्सजातीयम् अन्तरेतिशेषः सावद्यादिदोषरूपस्यार्थस्यान्यस्य वा मध्ये इत्यर्थः, यस्तु=स्वल्पोऽपि सावद्यरूपः कर्कशरूपश्च अर्थ. शाश्वत=नित्यमविनाशि मोक्षमिति यावत्, नामयति=अपरोमुखीकरोति प्रतिकूलयति विनाशयतीत्यर्थः; तमर्थ सावद्यादिषु कथञ्चिदाश्रित्य धीरः=भाषादोषविवर्जनसावधानः स साधुः ता सत्यामृषामपि= मिश्रामपि भाषा=वाच विवर्जयेत्=न वदेदित्यर्थः। सत्यसमिश्राऽपि भाषा अहित कर्कशत्वादिदोषलेशसम्पर्कान्मोक्षं प्रतिरुणद्धीति भाव'। यद्वा यस्तु शाश्वत नाम-

---

मिश्रभाषा का निषेध करते हैं— 'एयच' इत्यादि।

जिस भाषा मे पूर्वोक्त सावद्यता कर्कशता सदिग्धता अथवा अन्य इसी प्रकार का कोई अश भी दोष हो तो वह भाषा शाश्वत सिद्धिको प्रतिकूल कर देती है अर्थात् मोक्षमार्ग से नीचे गिरा देती है। इसलिए भाषाके दोष का परित्याग करने में सावधान धीर साधु उस मिश्रभाषा का त्याग करे। यह भाषा सत्य से मिली हुई होने पर भी कर्कशता आदि किसी दोष का लेश मात्र विद्यमान होने से मोक्ष प्राप्ति में बाधा पहुचाती है। अथवा जो

મિશ્રભાષાનો નિષેધ કરે છે-एयचं ઇત્યાદિ

જે ભાષામા પૂર્વોક્ત સાવદ્યતા કર્કશતા સદિગ્ધતા અથવા એ પ્રકારનો બીજો કોઇ પણ દોષ હોય તો તે ભાષા શાશ્વત સિદ્ધિને પ્રતિકૂળ કરી નાખે છે, અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગથી નીચે પાડી દે છે તેથી ભાષાના દોષોનો પરિત્યાગ કરવામા સાવધાન ધીર સાધુ એવી મિશ્રભાષાનો ત્યાગ કરે એ ભાષા સત્યથી મિશ્રિત થએલી હોવા છતા પણ કર્કશતા આદિ કોઇ દોષ લેશમાત્ર વિદ્યમાન હોવાથી મોક્ષપ્રાપ્તિમા બાધા ઉપજાવે છે અથવા કર્કશતા આદિ દોષો સદા ચારિત્રથી

यति तमेतमर्थम् अन्य वा तत्सजातीयमर्थम् अपि च सत्यामृषा भाषा स धीरः साधुर्विवर्जयेदित्यन्वयः ॥४॥

अथ मृषाभाषादोषमाह—'वितहपि' इत्यादि।

(मूलम्)

५ ३ २ ४ ६ ७ १०
वितहपि तहामुत्तिं जं गिर भासए नरो।
८ ९ १२ ११ १३ १४ १ १५ १०
तम्हा सो पुट्ठो पावेण किं पुण जो मुसं वए ॥५॥

(छाया)

वितथामपि तथामूर्त्तिं, या गिर भाषते नरः।
तस्मात्स स्पृष्टः पापेन, किं पुनर्यो मृषा वदेत् ॥५॥

॥ टीका ॥

'वितहंपि' इत्यादि।

यो नरः तथामूर्तिमपि=कल्पिताऽऽकृत्यनुसारिणीमपि या स्त्रीवेषधारिणं पुमांसमनुसृत्य प्रवृत्ताम् 'इयं नारी'–त्यादिरूपा, पुरुषवेषधारिणीं स्त्रियमनुसृत्य प्रवृत्ताम् 'अयं पुरुषः' इत्यादि रूपा वेत्यर्थः वितथाम्=असत्या गिर=भाषा भाषते,

---

कर्कशता आदि दोष सदा चारित्र से गिराते रहेते हैं उनका और उनके जैसे अन्य दोषों का साधु को परित्याग करना चाहिए ॥ ४॥

मृषाभाषा के दोष दिखलाते हैं—'वितहपि' इत्यादि।

यदि किसी पुरुषने स्त्री का रूप धारण कर लिया हो या किसी स्त्रीने पुरुष का वेष पहन लिया हो और उस स्त्रीरूपधारी पुरुष को कोई स्त्री कहे अथवा पुरुषवेषधारिणी

નીચે પાડે છે તેનો અને તેના જેવા બીજા દોષોનો સાધુએ પરિત્યાગ કરવો જોઈએ (૪)

મૃષાભાષાના દોષ બતાવે છે वितहपि० ઇત્યાદિ

જો કોઇ પુરૂષે સ્ત્રીનુ રૂપ ધારણ કરી લીધુ હોય યા કોઇ સ્ત્રીએ પુરૂષનો વેશ પહેરી લીધો હોય, અને એ સ્ત્રીરૂપધારી પુરૂષને કોઇ સ્ત્રી કહે અથવા

तस्मात्=तथाविधभाषणात् स नरः पापेन=अशुभकर्मणा स्पृष्टः=बद्धो भवति, किं पुनः यो मृषा=साक्षादसत्यं वदेत्? स पापकर्मणा बद्धो भवेत्तत्र किमाश्चर्य-मित्यर्थः। स्त्रीवेषधारिषु पुरुषेषु 'इयं नारी' पुरुषवेषधारिणीषु स्त्रीषु च 'अयं पुरुषः' इत्यादि वाक्यानां कल्पितवेषानुसारेण सत्यत्वेऽपि वस्तुतोऽसत्यरूपतया पापोत्पादकत्वकथनेन साक्षान्मृषाभाषिणा महादोषभागित्वं प्रतीयते इत्याशयः ॥५॥

(मूलम्)

१ २ ३ ४ ६ ५ ७

तम्हा गच्छामो वक्खामो अमुगं वा णे भविस्सइ।

८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५

अहं वा णं करिस्सामि एसो वा णं करिस्सइ ॥६॥

॥ छाया ॥

तस्माद् गमिष्यामः वक्ष्यामः अमुकं वा नः भविष्यति।
अहं वा तत् करिष्यामि एष वा तत् करिष्यति ॥६॥

करने वाली स्त्री को पुरुष कहे तो ऐसा भी असत्य कहने वाला मनुष्य पाप का बंध करता है, फिर जो साक्षात् मिथ्या बोलता है उसका तो कहना ही क्या है? अर्थात् उसे पाप कर्म का बंध हो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

स्त्री के वेष धारण करने वाले पुरुष को स्त्री कहना और पुरुषवेषधारी स्त्री को पुरुष कहना यद्यपि बनावटी वेष के कारण ऊपरी सत्य है तथापि वास्तव में असत्य होने के कारण पाप का जनक बतलाया गया है, इससे यह आशय निकलता है कि साक्षात् मिथ्या बोलने वाले तो महान् पाप के भागी होते हैं ॥५॥

પુરૂષવેશ ધારણ કરનારી સ્ત્રીને પુરૂષ કહે તો એવું પણ અસત્ય બોલનારો મનુષ્ય પાપનો બંધ ઉત્પન્ન કરે છે, પછી જે સાક્ષાત્ મિથ્યા બોલે છે એનું તો કહેવું જ શું? અર્થાત્ તેને પાપકર્મનો બંધ પડે એમાં કોઇ આશ્ચર્યની વાત જ નથી

સ્ત્રીના વેશ ધારણ કરનારા પુરૂષને સ્ત્રી કહેવી અને પુરૂષવેશધારી સ્ત્રીને પુરૂષ કહેવો એ જો કે બનાવટી વેશને કારણે ઉપલક સત્ય છે, તો પણ વાસ્તવમાં અસત્ય હોવાને કારણે પાપનું જનક બતાવ્યું છે, તેથી એવો આશય નીકળે છે કે સાક્ષાત્ મિથ્યા બોલનારા તો મહાન્ પાપના ભાગી બને છે (૫)

॥ टीका ॥

'तम्हा' इत्यादि।

तस्माद्=वेषानुसारिभाषणस्यापि असत्यस्वरूपत्वेन पापोत्पादकत्वात्, गमिष्यामः=आचार्यदर्शनाद्यर्थमितो व्रजिष्यामः, वक्ष्यामः=तस्मै हितोपदेशादि कथयिष्यामः, नः=अस्माकम् अमुकम्=अदःकार्यं भविष्यति=सपत्स्यते, अहं वा तत्=भिक्षाचर्यादिकार्यं करिष्यामि, एष वा साधुः तत्=वैयावृत्त्यादिकं कार्यं करिष्यति ॥६॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६
एवमाइ उ जा भासा एसकालम्मि संकिया।
७ ८ ९ १० ११ १२ १३
संपया इयमट्ठे वा तं पि धीरो विवज्जए ॥७॥

॥ छाया ॥

एवमाद्या तु या भाषा एष्यत्काले शङ्किता।
साम्प्रताऽतीतार्थयोर्वा तामपि धीरो विवर्जयेत् ॥७॥

॥ टीका ॥

'एवमाइ उ' इत्यादि।

एवमाद्या=इत्यादिका पूर्वगाथाप्रतिपादिता भाषा, या तु एष्यत्काले=

'तम्हा' इत्यादि। वेष के अनुसार कथन करना भी असत्य होने से पाप का उत्पादक है अतः– मैं आचार्य महाराज के दर्शन आदि के लिए जाऊँगा, उसे हित का उपदेश दूँगा, अमुक कार्य हो जायगा, मैं भिक्षाचरी आदि कार्य करूँगा, अथवा यह साधु वैयावृत्य आदि कार्य करेगा ॥ ६ ॥

'एवमाइ उ' इत्यादि। पूर्वगाथा में प्रतिपादित सन्देहयुक्त भाषा का तथा

तम्हा० ઇત્યાદિ વેશને અનુસરીને કથન કરવુ એ પણ અસત્ય હોવાથી પાપનુ ઉત્પાદક છે તેથી–હુ આચાર્ય મહારાજના દર્શનાદિને માટે જઇશ, તેમને હિતનો ઉપદેશ આપીશ, અમુક કાર્ય થઇ જશે, હુ ભિક્ષાચરી આદિ કર્મ કરીશ, અથવા આ સાધુ વૈયાવૃત્ય આદિ કાર્ય કરશે (૬)

एवमाइउ० ઇત્યાદિ પૂર્વ ગાથામા પ્રતિપાદિત સદેહયુક્ત ભાષાનો, તથા

अनागते काले वा=अथवा साम्प्रताऽतीतार्थयोः, तत्र साम्प्रतार्थे=वर्तमान कालार्थे, अतीतार्थे=भूतकालार्थे वा शङ्किता=संशययुक्ता भाषा तामपि धीरः=विवेकी साधुः विवर्जयेत्=परित्यजेत् न वदेदित्यर्थः। तत्र एष्यत्काले शङ्किता-भाविनार्थस्य प्रतिसमय बहुविघ्नबाधितत्वात्, वर्तमानार्थे शङ्किता यथा-स्त्री-पुरुषनिश्चयाभावे 'अयं पुरुषः' 'इयं स्त्री' इत्यादिरूपा। अतीतार्थे शङ्किता कालबाहुल्यात्कदाचिद्विस्मरणादिकारणवशाद्भवतीति भावः ॥७॥

॥ मूलम् ॥

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए।
जमट्ठं तु न जाणिज्जा, एवमेयंति नो वए ॥८॥

॥ छाया ॥

अतीते च काले प्रत्युत्पन्ने अनागते।
यमर्थं तु न जानीयात् एवमेतदिति वदेत् ॥८॥

भविष्य काल सम्बन्धी या भूतकाल सम्बन्धी शंकित भाषा को भी बुद्धिमान् साधु त्याग करे। समय-समयपर बहुत विघ्नों की संभावना रहती है इसलिए भविष्य काल में सन्देह रहता है। दूर आदि के कारण 'यह स्त्री है या पुरुष' इस प्रकार का निश्चय न होना वर्तमान कालीन संशय है। अधिक समय बीत जाने के कारण कभी विस्मरण हो जाता है इसलिए अतीत कालीन संशय हो जाता है ॥ ७ ॥

ભવિષ્ય કાળ સંબંધી વર્તમાન કાળ સંબંધી યા ભૂતકાળ સંબંધી શંકિત ભાષાનો પણ બુદ્ધિમાન સાધુ ત્યાગ કરે. સમયે-સમયે બહુ વિઘ્નોની સંભાવના રહે છે, તેથી ભવિષ્ય કાળમાં સંદેહ રહે છે. દૂર આદિને કારણે 'આ સ્ત્રી છે કે પુરુષ' એ પ્રકારનો નિશ્ચય ન થવો એ વર્તમાન કાલીન સંશય છે. વધારે સમય વીતી જવાને કારણે કોઈ વાર વિસ્મરણ થઈ જાય છે, તેથી અતીતકાલીન સંશય થઈ જાય છે (૭)

॥ टीका ॥

'अईयम्मि' इत्यादि।

अतीते=भूते प्रत्युत्पन्ने=वर्त्तमाने अनागते=भविष्यति च काले, यमर्थं=यद्वस्तु न जानीयात् तस्मिन्नर्थे एवमेतत्=ईदृशमेतद्वस्तु न वदेत्=न कथयेत्, अविदितवस्तुविषयेऽवधारणार्थकं वाक्यं न ब्रूयादिति भावः ॥८॥

॥ मूलम् ॥

अईयम्मि य कालम्मि पच्चुप्पण्णमणागए।

जत्थ सङ्का भवे तं तु एवमेयति नो वए ॥९॥

॥ छाया ॥

अतीते च काले प्रत्युत्पन्ने अनागते।

यत्र शङ्का भवेत् त तु एवमेतदिति नो वदेत् ॥९॥

॥ टीका ॥

'अईयम्मि' इत्यादि।

अतीते प्रत्युत्पन्ने अनागते च काले कालत्रये इत्यर्थः, यत्र=यस्मिन्नर्थे शङ्का='अयमेवं न वा' इत्यादिलक्षणः संशयो भवेत् तं=शङ्कितार्थमभिमेत्य

'अईयम्मि' इत्यादि। अतीत वर्तमान और भविष्य काल सम्बन्धी जिस बात को न जानता हो, उस के विषय में यह नहीं कहना चाहिए कि यह बात ऐसी है, अर्थात् अनजान चीजमें निश्चयद्योतक वाक्य न कहे ॥ ८ ॥

'अईयम्मि' इत्यादि। अतीत वर्त्तमान और भविष्य काल सम्बन्धी जिस वस्तु में सन्देह हो उसके विषय में 'यह ऐसी ही है' इस प्रकार निश्चयकारी भाषा न बोले

अईयम्मि० इत्यादि अतीत वर्तमान अने भविष्य काळ संबधी जे वात न जाणता होय ओ, तेनी बाबतमा ओम न कहेवु जोईओ के ओ वात आवी छे, अर्थात् अजाणी चीजमा निश्चयद्योतक वाक्य कहेवु नहि (८)

अईयम्मि० इत्यादि अतीत वर्तमान तथा भविष्य काळ संबधी जे वस्तुमा सदेह होय ओनी बाबतमा 'ओ आवी ज छे' ओ प्रकारनी निश्चयकारी

'एवमेत' दिति निश्चयबोधक वाक्य नो वदेत्=न भाषेत सशयितार्थविषये निश्चयार्थक वाक्य न भाषणीयमिति भावः ॥९॥

'एवमेत' दिति कदा वदेत् ? इत्याह—

॥ मूलम् ॥

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए।
निस्संकियं भवे ज तु, एवमेय तु निद्दिसे ॥१०॥

॥ छाया ॥

अतीते च काले प्रत्युत्पन्ने अनागते ।
निश्शङ्कित भवेद् यत्तु एवमेतत्तु निर्दिशेत् ॥१०॥

॥ टीका ॥

'अईयम्मि' इत्यादि।

अतीतादिकालत्रये यद्वस्तु निश्शङ्कित=सशयविषयत्वरहितं निश्चितं निरवद्यमित्यर्थः, भवेत् तदभिमेत्य 'एवमेतत्' इति निर्दिशेत्=उच्चरेत्। भाषा गुणदोषौ सम्यग विचार्य सशोधितमेव वाक्य वदेदिति भावः ॥१०॥

अर्थात् सदिग्ध विषय म निश्चित वाक्य न बोलना चाहिए ॥ ९ ॥

'यह ऐसा ही है' ऐसा कब कहे' सो बताते हैं— 'अईयम्मि' इत्यादि।

अतीत आदि तीनो कालो मे जो वस्तु बिलकुल शकारहित हो अर्थात् जिसके विषय मे जरा भी सन्देह न हो उसी के विषय में यह कहे कि "यह ऐसा है", तात्पर्य यह है कि भाषा के गुण दोषो का सम्यक् प्रकार विचार करके निरवद्य भाषा बोलना चाहिए ॥ १० ॥

ભાષા બોલવી નહિ અર્થાત્ સદિગ્ધ વિષયમા નિશ્ચિત વાક્ય બોલવું ન જોઇએ (૯)

'એ આમજ છે' એમ ક્યારે કહે? તે બતાવે છે—અઈયમ્મિ૦ ઇત્યાદિ

અતીત આદિ ત્રણે કાળમા જે વસ્તુ બિલકુલ શકા રહિત હોય અર્થાત જેની બાબતમા જરા પણ સદેહ ન હોય તેના સબધમા જ એમ કહે છે 'એ એમ છે' તાત્પર્ય એ છે કે ભાષાના ગુણ દોષોનો સમ્યક્ પ્રકાર વિચાર કરીને નિરવદ્ય ભાષા બોલવી જોઇએ (૧૦)

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ५
तहेव फरुसा भासा, गुरुभूओवघाइणी ।
४ ६ ७ ८ ९ १० ११
सच्चावि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥११॥

॥ छाया ॥

तथैव परुषा भाषा गुरुभूतोपघातिनी ।
सत्यापि सा न वक्तव्या यतः पापस्य आगमः ॥११॥

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि ।

तथैव=शङ्कितभाषावत् परुषा=कठोरा भाषा सत्याऽपि=यथार्थरूपाऽपि-लोके गुरुभूतोपघातिनी=गुर्वी चासौ भूतोपघातिनी चेति कर्मधारयसमासः, जन्तु-जातानामतिशयेनोपघातकारिणी बह्वनर्थकरी भवतीत्यर्थः, अतः सा (सत्यापि परुषा भाषा) न वक्तव्या=नोच्चारणीया यतः=यस्मात् भाषणात् पापस्य=अशुभ-कर्मसन्ततेः आगमः=प्राप्तिर्भवति ॥११॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ५ ६ ४
तहेव काणं काणत्ति, पंडगं पंडगत्ति वा ।
९ ८ ७ १० ११ १२ १३ १४
वाहियं वा वि रोगित्ति, तेण चोरत्ति नो वए ॥१२॥

'तहेव' इत्यादि । शकित भाषा के समान कठोर भाषा सत्य होनेपर भी लोक में प्राणियों का घात करने वाली अर्थात् अत्यन्त अनर्थ कारक होती है अत कठोर वाक्य का भी प्रयोग न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा बोलने से पाप कर्मका बंध होता है ॥ ११ ॥

तहेव० ઇત્યાદિ શકિત ભાષાની પેઠે કઠોર ભાષા સત્ય હોવા છતા પણ લોકમા પ્રાણીઓનો ઘાત કરનારી અર્થાત્ અત્યત અનર્થ કારક હોય છે, તેથી કઠોર વાક્યનો પણ પ્રયોગ ન કરવો જોઇએ કારણ કે એવુ બોલવાનું પાપકર્મનો બધ પડે છે (૧૧)

॥ छाया ॥

तथैव काणं काण इति, पण्डकं पण्डक इति वा।
व्याधितं वाऽपि रोगीति, स्तेनं चौर इति नो वदेत् ॥१२॥

(टीका)

'तहेव' इत्यादि ।

तथैव=परुषभाषावत् काणम्=एकचक्षुषं प्रति=काण इति='त्वं काणोऽसि, अयं काणोऽस्ति, हे काण' इत्यादि वा=अथवा पण्डकं=क्लीबं प्रति पण्डक इति='त्वं पण्डकोऽसी' त्यादि, अपिवा व्याधितं=रोगिणं प्रति रोगीति='त्वं रोग्यसी' त्यादि, स्तेनं=चौरं प्रति चौर इति=त्वं चौरोऽसीत्यादि न वदेत् ॥१२॥

(मूलम्)

४ ५ ६ ७ ३ ८
एएणन्नेण अट्ठेण, परो जेणुवहम्मइ।
१ ९ १० ११ २
आयारभावदोसन्नू, न तं भासिज्ज पन्नवं ॥१३॥

॥ छाया ॥

एतेनाऽन्येन अर्थेन, परो येनोपहन्यते।
आचारभावदोषज्ञः, न तं भाषेत प्रज्ञावान् ॥१३॥

'तहेव' इत्यादि। जैसे कठोर भाषा सत्य होनेपर भी त्यागने योग्य है उसी प्रकार काने को 'हे काना!' कहना, नपुंसक को 'हे नपुंसक' कहना रोगी को 'हे रोगी' कहना, चोर को चोर कहना, भी नहीं कल्पता है ॥ १२ ॥

तहेव० इत्यादि જેમ કઠોર ભાષા સત્ય હોવા છતાં પણ ત્યાગવાયોગ્ય છે, તેમ કાણાને કાણો કહેવો, નપુંસકને 'ઓ નપુંસક' કહેવો, રોગીને 'હે રોગી' કહેવો, ચોરને ચોર કહેવો, એ પણ કલ્પતું નથી (૧૨)

॥ टीका ॥

'एएणन्नेण' इत्यादि।

आचारभावदोषज्ञः=आचारः=साधुसमाचारी भावः=अन्तःकरणस्य परिणतिविशेषः तयोर्दोषान् जानातीति स तथोक्तः बाह्याभ्यन्तरक्रियादोषवेत्ता, अतएव प्रज्ञावान्=हेयोपादेयविवेचकः साधुः येन एतेन=काणं प्रति हे काण इत्यादि कथनरूपेण अन्येन वा=तत्सजातीयेन वा अन्धबधिरादीन् प्रति अन्धबधिरादिकथनलक्षणेन अर्थेन=अर्थोपलक्षितवाक्येन परः=अन्यो जीवः उपहन्यते=हिंसितो भवति मनस्तापादियुक्तो भवतीत्यर्थः, तं=तथाभूतम् अर्थं मनसि निधाय न भाषेत=न वदेत् परपीडाप्रापकं वचो न भाषणीयमिति भावः। 'आचारभावदोसन्नू' इत्यत्राचारशब्देन अभाषणीयभाषाऽनुमन्यानवत्त्वं भावशब्देन कषायपरवशतया भाषणं न कदाचिद्विधेयमिति च ध्वनितम् ॥१३॥

'एएणन्नेण' इत्यादि। साधु के आचार और अन्तःकरण के परिणामों के दोषों को जानने वाला अर्थात् बाह्य और आन्तरिक क्रियाओं का ज्ञाता प्रज्ञावान (हिताहित का विवेकी) श्रमण काणे को काणा कहने आदि रूप तथा उसी प्रकार की-जैसे नेत्र हीन को अंधा कहना, श्रवणशक्ति विकल को बहरा कहना आदि, जिससे अन्य प्राणी को दुःख उत्पन्न हो ऐसी भाषा का प्रयोग न करे। तात्पर्य यह है कि ऐसी भाषा न बोले जिससे किसी को किसी प्रकार का कष्ट हो।

'आयारभावदोसन्नू' पद मे आचार शब्द से यह सूचित किया है कि साधु को अवाच्य भाषा का सदा उपयोग रखना चाहिए। तथा 'भाव' पदसे यह व्यक्त किया गया है कि कषायवश होकर कहीं नहीं बोलना चाहिए ॥ १३ ॥

एएणन्नेण० ઇત્યાદિ સાધુના આચાર અને અંતઃકરણના પરિણામો દોષોને જાણનાર અર્થાત્ બાહ્ય અને આંતરિક ક્રિયાઓનો જ્ઞાતા પ્રજ્ઞાવાન્ (હિતાહિતનો વિવેકી) શ્રમણ, કાણાને કાણો કહેવો આદિ રૂપ તથા એવી જ રીતે નેત્રહીનને આંધળો કહેવો, શ્રવણ શક્તિ વિકલને બહેરો કહેવો, આદિ, જેથી અન્ય પ્રાણીને દુઃખ ઉત્પન્ન થાય એવી ભાષાનો પ્રયોગ ન કરે તાત્પર્ય એ છે કે એવી ભાષા બોલવી નહિ કે જેથી કોઇને કોઇ પ્રકારનું કષ્ટ થાય

आचारभावदोसन्नू પદમાં આચાર શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે સાધુએ અવાચ્ય ભાષાનો સદા ઉપયોગ રાખવો જોઇએ તથા ભાવ શબ્દથી એમ વ્યક્ત કરવામાં આવ્યું છે કે કષાય વશ થઇને કાંઇ પણ બોલવું જોઇએ નહિ (૧૩)

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
तहेव होले गोलित्ति साणे वा वसुलित्ति य ।
८ ९ १० १३ ११ १४ १२
दम्मए दुहए वावि नेवं भासिज्ज पन्नवं ॥१४॥

॥ छाया ॥

तथैव होलः गोल इति श्वा वा वसुल इति च ।
द्रमकः दुर्हतः वाऽपि नैवं भाषेत प्रज्ञावान् ॥१४॥

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि ।

तथैव=तद्वत् होलः अवज्ञार्थको देशीयोऽयं शब्दः, तथाच–अरे होल !=दुःशील ? इत्यादि, तथा गोलः=जारजः 'अरे जारज ?' इत्यादि, श्वा=श्वन शब्देन सम्बोधनम्–'रे श्वन ? श्वाऽय' मित्यादि, वसुल इति च, अयमपि देशीयः शब्दो निष्ठुरताबोधक आमन्त्रणार्थे कुत्सार्थे च, तेन रे वसुल ? निष्ठुर ?, यद्वा रेवृषल ? इत्यादि, तथा द्रमकः=रङ्क 'रे रङ्क' इत्यादि, अपि वा दुर्हतः=दुर्भाग्यशाली 'अरे दुर्भाग्यशालिन् ?' इत्यादि, एवम्=अनया रीत्या परदुःखोत्पादिनीं भाषामित्यर्थः प्रज्ञावान न वदेत्, सम्बोधनवाक्येऽपि नैव भाषणीयमिति भावः ॥१४॥

'तहेव' इत्यादि । प्रज्ञावान् साधु को ऐसा पर को पीड़ा पहुँचाने वाला भाषण नहीं करना चाहिए कि— "अरे दुराचारी', अरे जारज', यह तो कुत्ता है, ये निठुर', अरे नीच', अरे दरिद्री', ओ अभागे'," ऐसा बोलने से दूसरे का अयन्त दुःख होता है ॥ १४ ॥

तहेव० इत्यादि प्रज्ञावान् साधुओ ओवुं परने पीडा पहोंचाडनारु भाषण न करवुं जोईओ के–'अरे दुराचारी' अरे जारज ! ओ तो कुतरो छे ! ओ निष्ठुर ! अरे नीच ! अरे दरिद्री ! ओ अभागिया ! ओवु बोलवाथी बीजाने अत्यन्त दुःख थाय छे (१४)

एतद्गाथापर्यन्तं स्त्रीपुरुषावधिकृत्य भाषादोषो विचारितः, साम्प्रतं स्त्रियमेवाऽऽश्रित्य भाषाप्रतिषेधमाह— 'अज्जिए' इत्यादि।

(मूलम्)

२ ५ ४ ३ १ ६ ७
अज्जिए पज्जिए वावि अम्मो माउसियत्ति य ।
८ ९ १० १२ ११
पिउस्सिए भायणिज्जत्ति धूए णत्तुणियत्ति य ॥१५॥

(छाया)

आर्यिका प्रार्यिका वाऽपि अम्बा मातृष्वसेति च ।
पितृष्वसा भागिनेयी इति दुहिता नप्त्री च ॥१५॥

॥ टीका ॥

'अज्जिए' इत्यादि ।

'काञ्चित् स्त्रियं प्रति साधुरेव न वदेत्' इत्युत्तरगाथास्थेन सम्बन्धः। यथा–आर्यिका=मातामही अथवा पितामही, 'हे आर्यिके!' 'इयं मे आर्यिका' इत्यादि, प्रार्यिका=मातृमातामही यद्वा पितृमातामही, यथा 'हे प्रार्यिके!' यद्वा 'इयं मे प्रार्यिका' इत्यादि। तथा मातृष्वसा=मातृभगिनी, यथा 'हे मातृष्वसः' इयं मे मातृष्वसा' इत्यादि, पितृष्वसा=पितृभगिनी, यथा–हे पितृष्वसः! इयं मे पितृष्वसा, इत्यादि, तथा भागिनेयी=भगिनीपुत्री, यथा 'हे भगिनीपुत्रि! इयं मे भगिनीपुत्री' इत्यादि, च पुनः नप्त्री=दौहित्री यद्वा पौत्री यथा–'हे नप्त्रि!'

यहां तक स्त्री–पुरुष दोनों को लक्ष्य करके सामान्य रूप से भाषा के दोष बताये हैं, अब स्त्री विषयक भाषा का निषेध करते हैं— 'अज्जिए' इत्यादि।

किसी स्त्री को उद्देश्य करके–हे दादी, हे नानी, हे परदादी, हे परनानी, हे माँ, हे मौसी, हे फूआ, हे भानजी, हे बेटी, हे दुहती, हे पोती आदि भाषा न बोले अथवा

અહીં સુધી સ્ત્રી–પુરૂષ બેઉને લક્ષ્ય કરીને સામાન્ય રૂપે ભાષાના દોષો બતાવ્યા છે હવે સ્ત્રીવિષયક ભાષાનો નિષેધ કરે છે-अज्जिए० ઇત્યાદિ

કોઇ સ્ત્રીને ઉદ્દેશીને હે દાદી, હે નાની, હે વડદાદી, હે વડનાની, હે મા, હે માસી, હે ફુવા, હે ભાણેજી, હે પુત્રી, હે દૌહિત્રી, હે પૌત્રી, આદિ ભાષા ન

इय मे नप्त्री' इत्यादि सम्बन्धबोधिका भाषा साधुभिः कदाऽपि न वाच्येति भावः ॥१५॥

किञ्च–'हले' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६
हले हलित्ति अन्नित्ति भट्टे सामिणि गोमिय।
७ ८ ९ १० १२ ११ १३
होले गोले वसुलित्ति इत्थियं नेवमालवे ॥१६॥

॥ छाया ॥

हले हले इति अन्ने इति भट्टे स्वामिनि गोमिनि।
होले गोले वसुलि इति स्त्रियं नैवमालपेत् ॥१६॥

॥ टीका ॥

'हले हले' इति।

सखी सम्बोधने तत्र–हे सखि ? हे अन्ने ! हे भट्टे ! हे स्वामिनि ! हे गोमिनि !' एते शब्दाः पूज्याऽऽमन्त्रणवाचकाः। 'हे होले ! हे गोले ! हे वसुलि!

यह मेरी नातो है, यह मेरी नानी है, इत्यादि गृहस्थसम्बन्धी भाषा साधु को बोलना नहीं कल्पता है ॥ १५ ॥

फिर भी कहते हैं— 'हले हले' इत्यादि। हे सखी तथा हे अन्ने, हे माँ! हे स्वामिनी, हे गोमिनी इत्यादि पूज्या के सम्बोधन का, तथा हे होले, हे वसुलि,

---

બોલવી, અથવા આ મારી દાદી છે, આ મારી નાની છે, ઇત્યાદિ ગૃહસ્થી સંબંધી ભાષા સાધુએ બોલવી કલ્પતી નથી (૧૫)

વળી પણ કહે છે–हले हले ઇત્યાદિ હે સખી તથા હે અન્ને, હે ભટ્ટે હે સ્વામિનિ, હે ગોમિનિ, ઇત્યાદિ પૂજ્યોના સંબોધનોનો તથા હે હોલે હે ગોલે

इति एते शब्दा देशविशेषापेक्षया हीनस्त्रीणामामन्त्रणवाचकाः । एवम्=उक्तरीत्या स्त्रिय =काञ्चिदपि नारी प्रति नापलेत्=न वदेत् । एवमालपतः साधोः स्वकीयनिन्दा स्त्रीप्रद्वेषप्रवचनलाघवादयो दोषाः समुत्पद्यन्ते इति भावः ॥१६॥

तर्हि स्त्रियं प्रति कीदृशं ब्रूयात्? इत्याह—'नामधिज्जेण' इत्यादि।

(मूलम्)

७ १ २ ४ ३ ६
नामधिज्जेण णं ब्रूया इत्थीगुत्तेण वा पुणो।
७ ८ ९ ११ १०
जहारिहमभिगिज्झ आलविज्ज लविज्ज वा ॥१७॥

॥ छाया ॥

नामधेयेन तां ब्रूयात् स्त्रीगोत्रेण वा पुनः।
यथार्हम् अभिगृह्य आलपेत् लपेत् वा ॥१७॥

॥ टीका ॥

'नामधिज्जेण' इत्यादि।

तां=स्त्रियं प्रति नामधेयेन=तन्नाम्ना वा पुनः=अथवा स्त्रीगोत्रेण=स्त्रियाः

इत्यादि खराब स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होने वाले सम्बोधन का प्रयोग किसी भी स्त्री के प्रति साधु न करे। इस प्रकार बोलने से साधु की निन्दा होती है, स्त्रियों को द्वेष होता है, प्रवचन की लघुता प्रगट होती है और चारित्र मलिन होता है ॥ १६ ॥

स्त्रियों से किस प्रकार की भाषा बोले सो कहते हैं— 'नामधिज्जेण' इत्यादि।

स्त्री का नाम लेकर अथवा उसके गोत्र का उच्चार करके बोले। तथा गुण,

---

હે વસુલિ, ઇત્યાદિ ખરાબ સ્ત્રીઓને માટે ઉપયોગમાં આવતા સંબોધનનો પ્રયોગ કોઇ પણ સ્ત્રીની પ્રત્યે સાધુ ન કરે એ પ્રકારે બોલવાથી સાધુની નિંદા થાય છે, સ્ત્રીઓને દ્વેષ થાય છે, પ્રવચનની લઘુતા પ્રકટ થાય છે અને ચારિત્ર મલિન થાય છે (૧૬)

સ્ત્રીઓને કેવા પ્રકારની ભાષાથી બોલાવવી તે કહે છે-નામધિજ્જેણ૦ ઇત્યાદિ સ્ત્રીનું નામ લઈને અથવા તેના ગોત્રનું ઉચ્ચારણ કરીને તેને બોલાવવી તથા ગુણ,

काश्यपादिगोत्रं निर्दिश्य ब्रूयात्=सम्बोधयेत्, तथा यथार्हं=यथायोग्यं गुणाऽवस्थैश्वर्यादियोग्यतानुसारेण अभिगृह्य=योग्यतापदं निर्दिश्य यथा-'बाले? वृद्धे' धर्मशीले? श्रेष्ठिनि?' इत्यादि, आलपेत्=सकृद् भाषेत वा=अथवा लपेत्=आवश्यकताऽनुसारेण असकृद्वा भाषेत ॥१७॥

पुरुषमधिकृत्य भाषणनिषेधमाह—'अज्जए' इत्यादि

॥ मूलम् ॥

१ ४ ३ २ ५ ६ ७

अज्जए पज्जए वा वि बप्पो चुल्लपिउत्ति वा।

८ ९ १० ११

माउला भाइणिज्जत्ति पुत्ते णत्तुणियत्तिय ॥१८॥

॥ छाया ॥

आर्यक! प्रार्यक! वाऽपि बप्प! क्षुल्लकपितः! इति वा।
मातुल! भागिनेय! इति पुत्र! नप्तृक! इति च ॥१८॥

॥ टीका ॥

'अज्जए' इत्यादि।

हे आर्यक! =हे पितामह! अथवा हे मातामह! हे प्रार्यक! =हे पितृमातामह! अथवा हे मातृमातामह! हे बप्प! =हे पितः! हे क्षुल्लकपितः! =हे

अवस्था, ऐश्वर्य आदि की योग्यता के अनुसार बोले, जैसे बाई, वृद्धा, धर्मशीला, सठानी आदि ऐसे शब्द एक बार बोले या आवश्यकता हो तो कई बार बोले किन्तु पूर्वोक्त निषिद्ध भाषा न बोले ॥ १७ ॥

अब पुरुष को अधिकृत करके भाषण का निषेध करते हैं— 'अज्जए' इत्यादि।

हे दादाजी, हे नानाजी, हे परदादाजी, हे परनानाजी, हे पिताजी, हे काकाजी,

---

અવસ્થા, ઐશ્વર્ય આદિની યોગ્યતાને અનુસારે બોલાવવી, જેમકે બાઈ, વૃદ્ધા, ધર્મશીલા શેઠાણી, ઇત્યાદિ એવા શબ્દો એકવાર બોલવા અને જરૂર પડે તો અનેક વાર બોલવા, પરન્તુ પૂર્વોક્ત નિષિદ્ધ ભાષા ન બોલવી (૧૭)

હવે પુરુષને અધિકૃત કરીને ભાષણનો નિષેધ કરે છે અજ્જ૦ ઇત્યાદિ

હે દાદાજી, હે નાનાજી, હે પરદાદાજી, હે પરનાનાજી, હે પિતાજી, હે કાકાજી,

---

१-'[illegible] पुरुष [illegible] मार नहीं [illegible]।

पितृव्य! इति, हे मातुल!, हे भागिनेय! इति, हे पुत्र! हे नप्तः! हे पौत्र! हे दौहित्र! इति च पुरुषं प्रति नैवमालपेत्, इत्युत्तरगाथया सम्बन्धः ॥१८॥
किञ्च–'हे भो' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

हे भो हलित्ति अन्नित्ति भट्टे सामिय गोमिय।
होल गोल वसुलित्ति पुरिस नेवमालवे ॥१९॥

॥ छाया ॥

हे भो हल! इति अन्न! इति भट्ट स्वामिन्! गोमिक!।
होल! गोल! वसुल! इति पुरुष नैवमालपेत् ॥१९॥

॥ टीका ॥

'हे भो' इत्यादि।

'हे' अथवा 'भो' इति सम्बोधनद्योतकं पदं सर्वत्र योज्यम्। यथा हे हल! भो हल' इत्यादि, हे अन्न! इति, हे भट्ट! हे स्वामिन्। हे गोमिक! हे होल! हे गोल! हे वसुल!, इत्येवम्=अनया रीत्या पुरुषं प्रति नालपेत्=न ब्रूयात्। एवमालपतः साधोरात्मनिन्दा–तद्द्वेषप्रवचनलघुतादयो दोषाः संभवन्तीति भावः ॥१९॥

हे मामाजी हे भानज, हे पुत्र, हे पोता, हे दुहिता, इत्यादि गृहस्थ सम्बन्धी वाक्य किसी पुरुष से न कहे ॥ १८ ॥

तथा 'हेभो' इत्यादि। हे हल, हे अन्न, हे भट्ट, हे स्वामी, हे गोमिक, हे होल, हे गोल (गोला), हे वसुल, इत्यादि वाक्य भी पुरुष से न कहे। ऐसा कहने वाले साधुको स्वनिन्दा, द्वेष प्रवचनलघुता, ममता आदि दोष लगता हैं ॥ १९ ॥

હે મામાજી, હે ભાણેજ, હે પુત્ર, હે પૌત્ર, હે દૌહિત્ર ઇત્યાદિ ગૃહસ્થ સંબંધી વાક્ય કોઈ પુરૂષને ન કહે (૧૮)

તથા હેભો૰ ઇત્યાદિ હે હલ, હે અન્ન, હે ભટ્ટ, હે સ્વામી, હે ગોમિક, હે હોલ, હે ગોલ, (ગોલા), હે વસુલ, ઇત્યાદિ વાક્ય પણ પુરૂષને ન કહેવા એમ કહેનાર સાધુને સ્વનિંદા દ્વેષ, પ્રવચન લઘુતા, મમતા આદિ દોષ લાગે છે (૧૯)

पुरुषमधिकृत्य भाषणविधिमाह—'नामधिज्जेण' इत्यादि।

(मूलम्)

२ १ ३ ५ ३ ४

नामधिज्जेण णं बूया पुरिसगुत्तेण वा पुणो।

७ ८ ९ ११ १०

जहारिहमभिगिज्झ आलविज्ज लविज्ज वा ॥२०॥

॥ छाया ॥

नामधेयेन तं ब्रूयात् पुरुषगोत्रेण वा पुनः।
यथाऽर्हमभिगृह्य आलपेत् लपेद् वा ॥२०॥

॥ टीका ॥

'नामधिज्जेण' इत्यादि।

तं पुरुषं प्रति नामधेयेन=तन्नाम्ना वा पुनः=अथवा पुरुषगोत्रेण=पुरुषस्य काश्यपादि गोत्रं निर्दिश्य ब्रूयात् तथा यथार्हम्=योग्यतानुसारेण अभिगृह्य= योग्यताबोधकं पदं निर्दिश्य, यथा 'बाल' 'वृद्ध'! धार्मिक! श्रेष्ठिन्! इत्यादि आलपेत् लपेद्वेति प्रकृताध्ययनस्यसप्तदशगाथावत् ॥२०॥

तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्राणिविषये भाषणविधिमाह—'पंचिंदियाण' इत्यादि।

(मूलम्)

१ २ ३ ४ ५ ६

पंचिंदियाण पाणाण एस इत्थी अयं पुमं।

८ ७ ९ १० ११ १२ १३

जाव णं न विजाणिज्जा ताव जाइत्ति आलवे ॥२१॥

पुरुषको अधिकृत करके बोलने की विधि बताते हैं— 'नामधिज्जेण' इत्यादि।

कोई प्रयोजन हो तो पुरुष का नाम लेकर, अथवा उसका काश्यप आदि जो गोत्र हो उसका निर्देश करके योग्यता के अनुसार बालक, वृद्ध, धार्मिक, सेठ आदि पद का एकवार प्रयोग करे और आवश्यकता हो तो बारम्बार प्रयोग करे ॥ २० ॥

પુરૂષને અધિકૃત કરીને બોલવા ની વિધિ બતાવે છે—નામધિજ્જેણ૰ ઇત્યાદિ

કદિ પ્રયોજન હોય તો પુરૂષનું નામ લઇને અથવા એનું કશ્યપ આદિ જે ગોત્ર હોય તેનો નિર્દેશ કરીને યોગ્યતા અનુસાર બાળક, વૃદ્ધ, ધાર્મિક, શેઠ આદિ પદનો એકવાર પ્રયોગ કરે અને આવશ્યકતા હોય તો વારંવાર પ્રયોગ કરે (૨૦)

॥ छाया ॥

पञ्चेन्द्रियाणां प्राणिनां एषा स्त्री अयं पुमान्।
यावत्तं न विजानीयात् तावत् 'जाति' इत्यालपेत् ॥२१॥

॥ टीका ॥

'पंचिंदियाण' इत्यादि।

पञ्चेन्द्रियाणां प्राणिनां = गवादीनां मध्ये एषा स्त्री='एषा धेनुः, एषा महिषी, एषा वडवा' इत्यादि रूपेण, अयं पुमान्='अयं वृषः, अयं महिषः, अयमश्वः' इत्यादिरूपेण, तं प्राणिनं यावत्=यदवधि न विजानीयात् = न विनिश्चिनुयात् तावत्=तदवधि 'जाति'-रिति=जाति शब्दं निर्दिश्य यथा-'अयं गोजातीयोऽस्ति गच्छति वा' इत्यादि आलपेत्=वदेत्! दूरस्थत्वादिकारणवशेन पञ्चेन्द्रियाणां स्त्रीत्व-पुंस्त्वानिश्चये तां जातिं निर्दिश्य भाषणं विधेयमिति भावः॥

अब तिर्यंच पचेन्द्रिय प्राणियों के विषय मे बोलने की विधि बताते हैं---
'पंचिंदियाण' इत्यादि ।

गाय आदि पचेन्द्रिय प्राणियों में जब तक यह निश्चय न हो जाय कि-'यह गाय है, यह भैंस है, यह घोडी है, या यह बैल है या भैंस है या घोडा है' इत्यादि, तब तक गाय अथवा बैल न कहकर उस की जाति का ही निर्देश करे कि यह 'गो जाति का है' इत्यादि तात्पर्य यह है कि दूर के कारण पंचेन्द्रिय प्राणियों में स्त्री-पुरुष (नर-मादा) का निश्चय न होने पर उस की जाति का ही कथन करे ॥

હવે તિર્યંચ પંચેન્દ્રિય પ્રાણીઓના વિષયમા બોલવાની વિધિ બતાવે છે
પંચિંદિયાણ૦ ઇત્યાદિ

ગાય આદિ પંચેન્દ્રિય પ્રાણીઓના જ્યા સુધી એમ નિશ્ચય ન થઇ જાય કે એ ગાય છે, એ ભેંસ છે, એ ઘોડી છે, યા એ બળદ છે, એ પાડો છે યા એ ઘોડો છે' ઇત્યાદિ, ત્યા સુધી ગાય અથવા બળદ ન બોલતા એની જાતિનો નિર્દેશ કરે કે એ 'ગોજાતિનો' છે, ઇત્યાદિ તાત્પર્ય એ છે કે દૂરત્વ ને કારણે પંચેન્દ્રિય પ્રાણીઓમા સ્ત્રી-પુરૂષ (નર માદા)નો નિશ્ચય ન થાય તો એની જાતિનું જ કથન કરે

नन्वेवमेकेन्द्रियविकलेन्द्रिय-नारकाणां प्राणिनां शास्त्रसंमते क्लीवत्वे "इयं मृत्तिका, अयं प्रस्तरः, इमा आपः, अयमग्निः अयं वायुः, इयं लता, अयं शङ्खः, इयं शुक्तिका, इयं पिपीलिका, अयं मत्कोटकः, अयं भृङ्गः, इयं मक्षिका, अयं नारकः" इत्यादिस्त्रीलपुस्त्वनिर्देशपूर्वकभाषणे मुनीनां मृषावादाऽऽपत्तिः! इतिचेच्छृणु असत्यामृषाख्यव्यवहारभाषया. तीर्थङ्करादीष्टत्वादेतेषां वाक्यानां तद्भाषाविषयतया न मुनीनां मृषावाददोषः इत्यपरेऽपि-किञ्च-तत्त्वस्वरूपापलापपरं प्राणिपीडाकरं च वचनं मृषावाद इति नात्र तादृशदोषावकाशः ॥२१॥

प्रश्न-हे गुरुमहाराज! शास्त्रों में ऐसा माना गया है कि समस्त एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय तथा नारकी प्राणी नपुसक ही होते हैं, तो "यह मिट्टी है, यह पत्थर है, यह जल है, यह अग्नि है, यह वायु है, यह वेल (लता) है, यह शङ्ख है, यह सीप है, यह चिउटी है, यह मकोड़ा है, यह भौंरा है, यह मक्खी है, यह नारक है" ऐसा स्त्रीलिंग या पुँल्लिंग का कथन करने से साधु को असत्य का दोष लगेगा?

उत्तर-हे शिष्य! सुनो। व्यवहार भाषा से ऐसा बोलने के कारण मुनियों को असत्य दोष नहीं लगता, क्योंकि यह सब वाक्य उसी भाषा की अपेक्षा रखकर बोले जाते हैं। इस प्रकार व्यवहारभाषा का भाषण करने की आज्ञा तीर्थंकर भगवान् ने दी है। और साथ ही यह बात है कि-जिस भाषासे तत्त्वों का अपलाप या प्राणियों को दुःख हो, वही मृषावाद कहलाता है, इसलिए पूर्वोक्तभाषा में मृषावाद दोष नहीं है ॥ २१ ॥

પ્રશ્ન-હે ગુરૂ મહારાજ! શાસ્ત્રમાં એમ માન્યું છે કે સમસ્ત એકેન્દ્રિય વિકલેન્દ્રિય તથા નારકી પ્રાણી નપુંસક જ હોય છે, તો "આ માટી છે, આ પથ્થર છે, આ જળ છે, અગ્નિ છે, આ વાયુ છે, આ વેલ (લતા) છે, આ શંખ છે, સીપ છે, આ કીડી છે, આ મંકોડો છે, આ ભમરો છે, આ માખી છે, આ નારક છે" એમ સ્ત્રીલિંગ યા પુંલ્લિંગનું કથન કરવાથી સાધુને અસત્ય દોષ લાગે?

ઉત્તર-હે શિષ્ય! સાંભળો વ્યવહારભાષાથી એમ બોલવાને કારણે મુનિઓને અસત્ય દોષ લાગતો નથી, કારણ કે એ બધા વાક્યો એ ભાષાની અપેક્ષા રાખીને બોલવામાં આવે છે એ પ્રમાણે વ્યવહાર ભાષાનું ભાષણ કરવાની આજ્ઞા તીર્થંકર ભગવાને આપી છે તે સાથે એ વાત પણ છે કે-જે ભાષાથી તત્ત્વોનો અપલાપ યા પ્રાણીઓને દુઃખ થાય તે મૃષાવાદ કહેવાય છે, એટલે પૂર્વોક્ત ભાષામાં મૃષાવાદદોષ નથી (૨૧)

मनुष्यादिविषये भाषणनिषेधमाह—'तहेव' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
तहेव माणुसं पसु पक्खिं वा वि सरीसिवं।
८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
थूले पमेइले वज्झे पायमित्ति य नो वए ॥२२॥

(छाया)

तथैव मनुष्य पशु पक्षिणं वाऽपि सरीसृपम्।
स्थूलः प्रमेदुर वध्यः पाक्य इति च नोवदेत् ॥२२॥

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि।

तथैव= तद्वत् मनुष्य =नरनार्यादिलक्षण पशुम्=अजादिक, पक्षिणं= तित्तिरादिकम्, अपिवा सरीसृपम्=अजगरादिक प्रति, अय मनुष्यादि स्थूलः= परिपुष्टदेहः प्रमेदुरः=मेदोऽतिशययुक्तः, वध्यः=शस्त्रेण हन्तव्यः पाक्यः=पक्तु-मर्हश्च, इति नो वदेत्। एव भाषणेन हिंसकाना वधादौ प्रवृत्तिसंभावनया तत्प्रद्वेषेण च चारित्रभङ्गो भवतीति भावः ॥२२॥

मनुष्य आदि के विषय में अवाच्य भाषा का निषेध करते है 'तहेव' इत्यादि।

इसी प्रकार साधुको मनुष्य, पशु, पक्षी अजगर आदि के विषय में ऐसा भाषण न करना चाहिए कि–यह मनुष्य पशु पक्षी आदि कैसा मोटा ताजा है, इस की तोंद निकली हुई है, यह शस्त्र से मार डालने योग्य है, अग्नि आदि में पकाने लायक है। ऐसा भाषण करने से हिंसक लोग उन पशु पक्षि आदि को मारने में प्रवृत्ति करेंगे, उससे तथा तत्सम्बन्धी प्रद्वेष से चारित्र भंग हो जायगा ॥ २२ ॥

મનુષ્ય આદિના વિષયમાં અવાચ્ય ભાષાનો નિષેધ કહે છે– તહેવ૦ ઇત્યાદિ

એ પ્રકારે સાધુએ મનુષ્ય, પશુ, પક્ષી, અજગર, આદિના વિષયમાં એવું ભાષણ ન કરવું જોઈએ કે–આ મનુષ્ય, પશુ પક્ષી આદિ કેવો મોટો-તાજો-જાડો છે, તેની ફાંદ નીકળી છે, એ શસ્ત્રથી મારી નાખવા યોગ્ય છે, અગ્નિ આદિમાં પકાવવા લાયક છે એવું ભાષણ કરવાથી હિંસક લોકો પશુ પક્ષી આદિને મારવામાં પ્રવૃત્તિ કરશે, તેથી તથા તત્સંબંધી પ્રદ્વેષથી ચારિત્ર ભંગ થશે (૨૨)

तर्हि कथं ब्रूयादित्याह–'परिवूढत्ति' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

२ १ ३ ६ ४ ५
परिवूढत्ति ण बूया, बूया उवचियत्ति य।
७ ८ १० ९ ११ १२ १३
सजाए पीणिए वा वि, महाकाय त्ति आलवे ॥२३॥

॥ छाया ॥

परिवृढ इति न ब्रूयात्, ब्रूयात् उपचित इति च।
संजातः प्रीणितो वाऽपि महाकाय इत्यालपेत् ॥२३॥

॥ टीका ॥

'परिवूढत्ति' इत्यादि।

तं=मनुष्यादिकं, 'परिवृढः=सामर्थ्यवान्' इति ब्रूयात्, 'उपचितः=परिपुष्टावयवः' इति च ब्रूयात्, 'संजातः=संजात इव अभूतपूर्व इव परिचितोऽप्यपरिचित इवेति यावत् प्रीणितः=प्रसन्नः दुःखबाधारहित इत्यर्थः, अपिवा महाकायः बृहत्काय इत्यालपेत् ॥२३॥

पुनरपि तिर्यग्विषये भाषाप्रतिषेधमाह— 'तहेव गाओ' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ६ ५ ७ ४
तहेव गाओ दुज्झाओ दम्मा गोरहगत्ति य।
८ ९ १२ १० १३ ११
वाहिमा रहजोगित्ति नेव भासिज्ज पन्नव ॥२४॥

प्रसग उपस्थित हो जाय तो क्या कहे? सो बताते हैं— 'परिवूढत्ति' इत्यादि।

उन मनुष्य आदि को बलवान्, अथवा पुष्ट अवयव वाला तथा परिपूर्ण अग उपाग वाला कहे। अथवा प्रसन्न (दु खबाधारहित) या महाकाय कहे ॥ २३ ॥

પ્રસગ ઉપસ્થિત થાય તો શું કહે? તે બતાવે છે-परिवूढत्ति० ઇત્યાદિ

એ મનુષ્ય આદિને બળવાન અથવા પુષ્ટ અવયવવાળો તથા પરિપૂર્ણ અંગોપાંગવાળો કહે, અથવા પ્રસન્ન (દુખ બાધા રહિત)યા મહાકાય કહે (૨૩)

॥ छाया ॥

तथैव गावः दोह्याः दम्या गोरथका इति च ।
वाह्या रथयोग्या इति नैवं भाषेत प्रज्ञावान् ॥२४॥

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि ।

तथैव=तद्वत् एता गावो दोह्याः=दोग्धुमर्हाः, इदानीमासां गवां दोहनकालो व्यत्येतीत्यर्थः । च=पुनः इमे गोरथकाः=वत्सा दम्या निग्रहार्हाः, तथा वाह्याः=हलादिवहनयोग्याः, रथयोग्याः=शकटयोजनार्हाः, इत्येवं प्रज्ञावान् न भाषेत । गवादीनां दोहनादौ हि बन्धनादिबहुविधक्लेशसम्भवनया लोकनिन्दया च साधोश्चारित्रमालिन्यं प्रवचनलघुता च समापद्यते इति भावः ॥२४॥

फिर भी तिर्यञ्चों के विषय में भाषा का निषेध करते हैं— 'तहेव' इत्यादि ।

ये गायें दुहने योग्य है— इनके दुहन का समय हो गया है, ये वछडे दमन करने योग्य है, ये हल आदि में जुतने योग्य हो गये हैं, या रथ अथवा गाडी में जुतने लायक हैं, ऐसा कथन, प्रज्ञावान् साधु न करे ।

तात्पर्य यह कि गायों का दुहने, बछडों को दमन करने आदि से अनेक प्रकार का कष्ट होता है, इसलिए और लोकनिन्दा के कारण साधु के चारित्र मे मलिनता आती है और प्रवचन की लघुता होती है ॥ २४ ॥

વળી પણ તિર્યંચોના વિષયમાં ભાષાનો નિષેધ કરે છે–तहेव० ઇત્યાદિ

આ ગાયો દોહવા યોગ્ય છે, તેમને દોહવાનો વખત થઇ ગયો છે, આ વાછડા દમન કરવા યોગ્ય છે, એ હળ આદિને જોડવા યોગ્ય થઇ ગયા છે, યા રથ કે ગાડામાં જોડવા લાયક છે, એવું કથન પ્રજ્ઞાવાન સાધુ ન કરે તાત્પર્ય એ છે કે ગાયો ને દોહવી, વાછડાને દમવા, આદિથી તેમને અનેક પ્રકારનું કષ્ટ થાય છે, તેથી અને લોકનિંદાને કારણે સાધુના ચારિત્રમાં મલિનતા આવે છે અને પ્રવચનની લઘુતા થાય છે (૨૪)

गवादिविषये भाषणावश्यकतायां तत्प्रकारमाह— 'जुव' इत्यादि।

(मूलम्)

२ ३ १ ४ ५ ७ ६
जुव गवित्ति णं बूया, धेणु रसदयत्ति य।
८ ११ १० ९ १४ १३ १२
रहस्से महल्लए वावि, वए संवहणित्ति य ॥२५॥

॥ छाया ॥

युवा गौरिति त ब्रूयात् धेनुं रसदा इति च।
ह्रस्वो वा महान् वाऽपि वदेत् संहवनमिति च ॥२५॥

॥ टीका ॥

'जुवं' इत्यादि।

तं=गवादिकं प्रति युवा गौरिति=तरुणोऽयंबलीवर्द इति, च=पुनः धेनुं प्रति रसदा इति=इयं दुग्धदायिनीति ब्रूयात्। तथा ह्रस्वः=तनुकायः अपिवा=अथवा महान्=महाकायः, च=पुनः सवहनमिति=धुर्य-इति वदेत्। अल्पवयस्कं वत्सं प्रति ह्रस्व इति, हलादिवहनयोग्यं प्रति महाकाय इति, युवा इति च, रथयोजन योग्यं प्रति संवहनमिति शब्दं प्रयुञ्जीत, येन वत्सादिक्लेशयोगानुचिन्तनं साधोर्न भवेदिति भावः ॥२५॥

गवादि के विषय में बोलने का आवश्यकता होने पर उसका प्रकार कहते हैं— 'जुव' इत्यादि।

यह बैल जवान है, यह गाय दूध देने वाली है तथा यह बैल छोटा है, यह बडा है, धुर्य है, ऐसा कहे। तात्पर्य यह है कि छोटे बछडे को छोटा कहे, हल आदिमें जुतने योग्य को बडा या युवा कहे, रथमें जोतने योग्य को सवहन आदि कहे जिससे कि बछडे आदि को कष्ट देने की भावना न हो ॥ २५ ॥

ગાય ઇત્યાદિના વિષયમાં બોલવાની આવશ્યકતા જણાતાં તેનો પ્રકાર કહે છે-जुवं० ઇત્યાદિ

આ બળદ જવાન છે, આ ગાય દૂધ આપે તેવી છે, તથા આ બળદ નાનો છે, આ યોગ્ય છે, ધુર્ય છે, એમ કહે તાત્પર્ય એ છે કે નાના વાછડાને નાનો કહે, હળ આદિમાં જોડવા યોગ્યને મોટો યા જુવાન કહે, રથમાં જોડવા યોગ્ય ને સવહન આદિ કહે કે જેથી વાછડા આદિને કષ્ટ આપવાની ભાવના ન થાય (૨૫)

॥ मूलम् ॥

१ ६ २ ३ ४ ५
तहेव गंतुमुज्जाण, पव्वयाणि वणाणि य।
८ ७ ९ १२ ११ १३ १०
रुक्खा महल्ल पेहाए, नेव भासिज्ज पन्नव ॥२६॥

॥ छाया ॥

तथैव गत्वोद्यान पर्वतान् वनानि च।
वृक्षान् महतः प्रेक्ष्य नैवं भाषेत प्रज्ञावान ॥२६॥

(टीका)

'तहेव' इत्यादि।

तथैव=तद्वत् उद्यानं=प्रसिद्धं तथा पर्वतान=प्रतीतान् च=पुनः वनानि=काननानि गत्वा=विहारकर्मणोपेत्य, महतः=विशालान वृक्षान=तरून् उद्यानादिस्थितानिति भावः, प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा प्रज्ञावान् साधुः एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण न भाषेत ॥२६॥

(मूलम्)

वृक्षविषये भाषानिषेधमाह–'अलं' इत्यादि।

२ १ ३ ५ ४
अलं पासायखंभाण, तोरणाणि गिहाणि य।
६ ८ ७
फलिहग्गलनावाण, अलं उदगदोणिण ॥२७॥

'तहेव' इत्यादि। प्रज्ञावान् साधु, विचरता हुआ उद्यान, पर्वतों, और वनों में जाकर वहां बडे बडे वृक्ष देखकर इस प्रकार (आगे कहे जाने के अनुसार) न बोले ॥ २६ ॥

तहेव० ઇત્યાદિ પ્રજ્ઞાવાન્ સાધુ વિચરતા ઉદ્યાન, પર્વતો અને વનોમાં જઇને ત્યાં મોટા મોટા વૃક્ષો જોઇને એમ (આગળ કહેવામાં આવે છે તે પ્રમાણે) ન બોલે (૨૬)

॥ छाया ॥

अलं प्रासादस्तम्भेभ्यः तोरणेभ्यः गृहेभ्यः च।
परिघाऽर्गलनौभ्यः अलम् उदकद्रोणीभ्यः ॥२७॥

॥ टीका ॥

'अलं' इत्यादि।

इमे महावृक्षाः प्रासादस्तम्भेभ्यः=प्रासादाना स्तम्भेभ्यः, अलं=पर्याप्ताः=समर्थाः स्तम्भयोग्या इत्यर्थः। तथा तोरणेभ्यः=बहिर्द्वारेभ्यः बहिर्द्वारोपयोगिस्तम्भेभ्य इत्यर्थः; अलम्, च=पुनः गृहेभ्यः=भवनेभ्यः अलम् भवनसाधनपर्याप्ता इत्यर्थः; परिघार्गलनौभ्यः=परिघश्च अर्गला च नौश्चेति परिघाऽर्गलानावस्ताभ्यः अलम्, तत्र परिघ=नगरद्वारार्गला, अर्गला=गृहद्वारार्गला, नौः=नौका तथा उदकद्रोणीभ्यः=काष्ठनिर्मितोदकपात्रविशेषेभ्यः अलम्=पर्याप्ताः पात्रनिर्माणोपयोगिन इत्यर्थः, नैव भाषेत प्रज्ञावानिति, इतोऽग्रिमतृतीयगाथया समन्वयः ॥२७॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६
पीढए चगबेरे य नगले मइय सिया।
८ ७ १० ९ १२ ११ १३ १४
जंतलट्ठी व नाभी वा गंडिया व अलं सिया ॥२८॥

वृक्षों के विषय में भाषा का निषेध कहते हैं— 'अलं' इत्यादि।

ये वृक्ष महल के खमे बनाने योग्य हैं, फाटक बनाने योग्य हैं, मकान बनाने योग्य हैं शहर के दरवाजे की भोगल (बेडा) घर के दरवाजे की भोगल या नौका बनाने योग्य हैं, काठ के वर्तन बनाने योग्य हैं, 'ऐसा भाषण न करे' इसका अभिग्र तीसरी गाथा से सम्बन्ध है ॥ २७ ॥

વૃક્ષોના વિષયમાં ભાષાનો નિષેધ કહે છે-अलं० ઇત્યાદિ

આ વૃક્ષ મહેલના થાંભલા બનાવવા યોગ્ય છે, ફાટક બનાવવા યોગ્ય છે, મકાન બનાવવા યોગ્ય છે, શહેરના દરવાજાની ભોગળ, ઘરના દરવાજાની ભોગળ યા નૌકા બનાવવા યોગ્ય છે, લાકડાના વાસણ બનાવવા યોગ્ય છે. (એવું ભાષણ ન કરે) એનો આગળ ત્રીજી ગાથા સાથે સંબંધ છે (૨૭)

॥ छाया ॥

पीठक चंगवेरश्च, लाङ्गल. मतिक स्यात् ।
यन्त्रयष्टिर्व नाभिर्वा गण्डिका व अलं स्यात् ॥२८॥

॥ टीका ॥

'पीढए' इत्यादि ।

अयं वृक्षः पीठकाय=दारुमयाऽऽसनविशेषाय अलं स्यात् तथा चगवेराय =काष्ठनिर्मितलघुपात्राय तथा लाङ्गलाय=हलाय तथा मतिकाय=मतिकं=कृष्ट-क्षेत्रस्य समीकरणार्थं काष्ठविशेषः तस्मै, वा=अथवा यन्त्रयष्ट्यै=इक्षुरस-तैलादि-निस्सारणयन्त्राधिष्ठितकाष्ठविशेषाय, वा = अथवा नाभये = रथचक्रमध्यावयव-विशेषाय व=अथवा गण्डिकायै=स्वर्णकारोपकारककाष्ठोपकरणविशेषाय अल-स्यात्=समर्थो भवेत्, गाथाया चतुर्थ्यर्थे प्रथमा ॥२८॥

(मूलम्)

१ ४ ७ ३ ५ ६
आसण सयण जाण हुज्जा वा किंचुवस्सए ।
८ १० ९ ९ १२ ११
भूओवघाइणिं भासं ने व भासिज्ज पन्नवं ॥२९॥

'पीढए' इत्यादि । यह वृक्ष पीढ, (बाजोट) बनाने योग्य है, चगवेर (पायली) बनाने योग्य है, हल बनाने योग्य है, मतिक (जोतेहुए खेत को बराबर करने का काठ "चौकी") बनाने योग्य है, कोल्हू (घानी) बनाने योग्य है, पहिये का मध्य भाग बनाने योग्य है, अथवा सुनार के काम आने वाले काठ के उपकरण के योग्य है ॥ २८ ॥

पीढए० ઇત્યાદિ આ વૃક્ષ બાજોઠ બનાવવાને યોગ્ય છે, પાયલી બનાવવા યોગ્ય છે, હળ બનાવવા યોગ્ય છે, મતિક (ખેતરને બરાબર કરવાની લાકડાની ચોકી) બનાવવા યોગ્ય છે, ઘાણી બનાવવા યોગ્ય છે, પાયાનો મધ્ય ભાગ બનાવવા યોગ્ય છે, અથવા સોનીના કામ આવે તેવા લાકડાના ઉપકરણ (ઓજાર)ને યોગ્ય છે (૨૮)

॥ छाया ॥

आसनं शयनं यानं भवेद्वा किञ्चोपाश्रयः ।
भूतोपघातिनीं भाषां नैवं भाषेत प्रज्ञावान् ॥२९॥

॥ टीका ॥

'आसणं' इत्यादि ।

अस्य वृक्षस्य आसनम्=आसन्द्यादिकं, शयनं=शय्या खट्वादिकं, वा=अथवा यानं=वाहनं शिबिकादिकं, किञ्च उपाश्रयः=साधोरावासः तदुपकरणविशेष इत्यर्थः, भवेत्, एवम्=उक्तप्रकारां भूतोपघातिनीम्=एकेन्द्रियादिप्राण्युपमर्दनफलां भाषां प्रज्ञावान् साधुः न भाषेत=न ब्रूयादित्यर्थः । यद्वाऽत्रापि गाथायाम् 'अलं'-मित्यनुवृत्त्या चतुर्थी समानार्थिका प्रथमा, तथा च अयं वृक्षः आसनादिभ्योऽलं=समर्थः, इत्यपि समन्वयः ॥२९॥

वृक्षविषये भाषाविधिमाह-'तहेव' इत्यादि ।

(मूलम्)

१ ६ २ ३ ५ ४
तहेव गंतुमुज्जाणं पव्वयाणि वणाणि य ।
८ ७ ९ ११ १२ १०
रुक्खा महल्ल पेहाए एवं भासिज्ज पन्नवं ॥३०॥

'आसण' इत्यादि । इस वृक्ष से आसन्दी आदिक आसन, पलंग आदि शय्या, पालकी आदि यान, अथवा उपाश्रय के उपकरण आदि बनाना ठीक है । प्रज्ञावान् साधु एकेन्द्रिय आदि प्राणियों की हिंसा करने वाली इस प्रकार की भाषा न बोले । अथवा ऐसा न कहे कि यह वृक्ष आसन, शयन, यान आदि बनाने योग्य है ॥ २९ ॥

आसण० ઇત્યાદિ આ વૃક્ષમાથી ખુરશી આદિ આસન, પલંગ આદિ શય્યા, પાલખી આદિ વાહન, અથવા ઉપાશ્રયના ઉપકરણો આદિ બનાવવા એ ઠીક છે પ્રજ્ઞાવાન્ સાધુ એકેન્દ્રિય આદિ પ્રાણીઓની હિંસા કરનારા એ પ્રકારની ભાષા ન બોલે, અથવા એમ ન કહે કે આ વૃક્ષ આસન, શયન, યાન આદિ બનાવવા યોગ્ય છે (૨૯)

॥ छाया ॥

तथैव गत्वोद्यान पर्वतान वनानि च।
वृक्षान् महतः प्रेक्ष्य एव भाषेत प्रज्ञावान् ॥३०॥

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि।

तथैव उद्यानादिक गत्वा तत्र महावृक्षान विलोक्य प्रज्ञावान साधुः एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण भाषेतेति भावार्थः, व्याख्या तु सुगमा ॥३०॥

तदेव भाषणप्रकार दर्शयति-'जाइमंता' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

३ १ २ ४ ५
जाइमंता इमे रुक्खा दीहवट्टा महालया
६ ७ १० ९ ८
पयायसाला विडिमा वए दरिसणित्ति य ॥३१॥

(छाया)

जातिमन्त इमे वृक्षाः दीर्घवृत्ता महालयाः।
प्रजातशाखा विडिमाः वदेद् दर्शनीया इति च ॥३१॥

॥ टीका ॥

'जाइमता' इत्यादि।

इमे वृक्षाः, अस्य प्रतिपद सम्बन्धः, जातिमन्तः=उच्चजातीया अशोकादयः,

---

वृक्ष के विषय में भाषण करने की विधि कहते हैं— 'तहेव' इत्यादि।

साधु विहार करता हुआ उद्यान पर्वत और वनों में वृक्षों को देखकर आवश्यकता होतो इस प्रकार बोले ॥ ३० ॥

વૃક્ષના વિષયમા ભાષણ કરવાની વિધિ કહે છે તહેવ૦ ઇત્યાદિ સાધુ વિહાર કરતા ઉદ્યાન પર્વત અને વનોમા વૃક્ષોને જોઇને આવશ્યકતા હોય તો આ પ્રમાણે બોલે (૩૦)

तथा दीर्घवृत्ताः=दीर्घाश्च ते वृत्ताश्चेति दीर्घवृत्ताः=आयतवर्त्तुलाः शिंशपा नारिकेल-ताल-पूगादयः, तथा महालयाः=विस्तीर्णाः वटादयः, प्रजातशाखाः=शाखा समृद्धा आम्रादयः, तथा विटपिनः=प्रतिशाखावन्तः शाखासमुद्भूतशाखावन्त इत्यर्थः। यद्वा 'प्रजातशाखाविडिमाः' इत्येक पदम्, प्रजाताः=समुत्पन्नाः शाखा-प्रशाखाश्च येषु ते तथाभूता इति पर्कटीवृक्षादयः च=अथवा दर्शनीयाः=सर्वस्मिन वृक्षादौ द्रष्टुं योग्याः शोभना इति वदेत् ॥३१॥

॥ मूलम् ॥

फलविषये भाषाप्रतिषेधमाह–'तहा फलाइ' इत्यादि।

१ २ ३ ४ ५ ६
तहा फलाइ पक्काइ पायखज्जाइ नो वए।
७ ८ ९ १० ११ १२
वेलोइयाइं टालाइ वेहिमा इत्ति नो वए ॥३२॥

॥ छाया ॥

तथा फलानि पक्वानि पाकखाद्यानि नो वदेत्।
वेलोचितानि टालानि द्वैधिकानि इति नो वदेत् ॥३२॥

॥ टीका ॥

'तहा फलाई' इत्यादि।

तथा=तेनैव प्रकारेण इमानि फलानि=आम्रादीनि पक्वानि=परिपाक

अब वृक्षों के विषय में भाषण का प्रकार दिखलाते हैं— 'जाइमंता' इत्यादि।

ये वृक्ष उच्च जाति के हैं, लम्बे हैं, गोल हैं, विस्तृत हैं, शाखा प्रशाखाओं से समृद्ध हैं। ये सब वृक्ष दर्शनीय (सुन्दर) हैं, ऐसा भाषण करे ॥ ३१ ॥

હવે વૃક્ષોના વિષયમા ભાષણનો પ્રકાર બતાવે છે-जाइमंता० ઇત્યાદિ

આ વૃક્ષો ઉચ્ચ જાતિના છે, લાંબા છે, ગોળ છે, વિસ્તૃત છે, શાખા પ્રશાખાઓથી સમૃદ્ધ છે આ બધા વૃક્ષો દર્શનીય (સુંદર) છે, એવું ભાષણ કરે (૩૧)

दशाऽऽपन्नानि स्वत एव पक्वानीत्यर्थः, इमानि च फलानि पाकखाद्यानि=पाकेन= गर्त्तपलालादिषु = क्षेपेण तुषविजयादिपरिपूर्णसच्छिद्रमृण्मयादिपात्रनिहिताऽग्नि-फूत्कारसमुत्थिततापसंयोगेन वा प्राप्तपरिपाकावस्थया खाद्यानि = खादितुं-योग्यानि, इति नो वदेत्। तथा इमानि फलानि वेलोचितानि=पाकातिशयतो वर्त्तमानकालिकभक्षणयोग्यानि, तथा इमानि फलानि टालानि=कोमलानि अबद्ध-बीजानीत्यर्थः, देशीयोऽयंशब्दः, तथा इमानि द्वैधिकानि द्विधाकरणयोग्यानि शस्त्रेण खण्डयितु योग्यानीत्यर्थ. इति नो वदेत ॥३२॥

कथ वदेदित्याह—'असंथडा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

असंथडा इमे अंबा बहुनिव्वडिमाफला।
वएज्ज बहुसंभूया भूयरूवेत्ति वा पुणो ॥३३॥

फलों के विषय में भाषा का निषेध करते है— 'तहाफलाइ' इत्यादि।

इसी प्रकार ये आम आदि फल स्वय पके हुए हैं, अथवा खड्डेमें भूसामें दबा देने से अथवा तुष भग आदि भरे छेद वाले मिट्टी आदि के बरतन में रखकर अग्नि-ज्वाला की गर्मी के सयोग से पकने के पश्चात खाने योग्य हैं, ऐसा न कहे। ये फल खूब पकजान से इसी समय खाने लायक हैं, ये फल अभी कोमल है इनमें बीज नहीं पडे हैं, ये फल फोडने–चीरने (दो टुकडे करने) योग्य हैं, ऐसा भी प्रज्ञावान् साधु न कहे ॥३२।

ફળોના વિષયમા ભાષાનો નિષેધ કરે છે तहा फलाइ ઇત્યાદિ

એ પ્રકારે, આ કેરી આદિ ફળો પાકેલા છે, અથવા ખાડાના ભૂસામા દબાવી રાખવાથી અથવા તુષભગ આદિ ભરેલા છિદ્રવાળા માટી આદિના વાસણમા રાખીને અગ્નિજ્વાલાની ગરમીના સયોગથી પકાવીને પછી ખાવા યોગ્ય છે, એમ ન કહે આ ફળ ખૂબ પાકી ગયા હોવાથી અત્યારે જ ખાવા લાયક છે, આ ફળ અત્યારે કોમળ છે, તેમા બીજ પડયા નથી, આ ફળ ચીરવા ફાડવા યોગ્ય છે, એવુ પણ પ્રજ્ઞાવાન્ સાધુ ન કહે (૩૨)

॥ छाया ॥

असमर्था इमे आम्रा बहुनिर्वर्त्तितफलाः,
वदेद् बहुसंभूता भूता रूपा इति वा पुनः ॥३३॥

॥ टीका ॥

''असथडा'' इत्यादि।

इमे आम्राः=आम्रवृक्षाः असमर्थाः=फलाना भार वोढुमशक्ताः फलभार भरेण त्रुटितुमुद्यताः अथवा बहुनिर्वर्त्तितफलाः=बहूनि निर्वर्त्तितानि=संकुलानि फलानि येषु ते तथोक्ताः, बहुतरफलसमृद्धिसम्पन्ना इत्यर्थः, वा=अथवा बहुसंभूताः=बहूनि सम्भूतानि सम्यग्भूतानि चरमावस्थापन्नानि परिपक्वानि फलानीत्यर्थः, येषु ते बहुसंभूता अतिशयपरिपक्वफलवन्त इत्यर्थः, पुनः भूतरूपाः= भूत=सञ्जात रूपं=विलक्षणस्वरूप येषा ते तथोक्ताः फलोत्पादानन्तर समाप्तशोभन रूपाः बाल्यावस्थावर्जितफलातिशयलब्धरूपविशेषा इत्यर्थः ; अबद्धबीजमृदुफल समन्विता इतियावत्, इति=पूर्वोक्तप्रकारेण वदेत्=भाषेत ॥३३॥

किस प्रकार बोले ? सो कहते हैं— 'असथडा' इत्यादि।

ये आम आदि वृक्ष फलों का भार सहन में असमर्थ हैं, फलों के बोझ से टूट पडते हैं, इन में बहुत फल लगे हुए हैं, ये फल चुके हैं, फल लगने से सुन्दर हो गये हैं अर्थात् बाल्यावस्था वाले कच्चे बहुत से फलों से ये सुन्दर हो गये हैं, तथा बीज न पडने के कारण कोमल फलवाले हैं इस प्रकार भाषण करे ॥ ३३ ॥

કેવે પ્રકારે બોલે? તે હવે કહે છે– અસથડા ઈત્યાદિ

આ આંબા આદિ વૃક્ષો ફળોનો ભાર સહેવામાં અસમર્થ છે ફળોના બોજાથી તૂટી પડે છે, એમાં ઘણાં ફળો લાગેલાં છે, એ ફળી ચૂક્યાં છે, ફળ લાગવાથી સુંદર બની ગયો છે, અર્થાત બાલ્યાવસ્થાવાળાં (કાચાંકાચાં) ઘણાં ફળોથી એ સુંદર થઈ ગયાં છે, તથા બીજ ન પડવાને કારણે કોમળ ફળવાળાં છે, એ પ્રમાણે ભાષણ કરે (૩૩)

शाल्यादिविषये निषिद्धभाषणमाह—'तहेवोसहीओ' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ६ ५
तहेवोसहीओ पक्काओ नीलियाओ छवीइ य।
७ ८ ९ १० ११ १२
लाइमा भज्जिमाउत्ति पिहुखज्जत्ति नो वए ॥३४॥

॥ छाया ॥

तथैवौषधयः पक्काः नीलिकाः छवयश्च।
लवनीया भर्जनीया इति पृथुखाद्या इति नो वदेत् ॥३४॥

॥ टीका ॥

'तहेवोसहीओ' इत्यादि।

तथैव=तद्वत् इमा ओषधयः=शालिगोधूमादयः पक्वाइति, च=अथवा, इमाः छवयः=वल्लचणकादिफलिका नीलाः=हरितावस्थासंपन्नाः सुकोमला इत्यर्थ इति; तथा लवनीयाः=लवनयोग्याः त्रोटनीया इत्यर्थ इति; तथा भर्जनीयाः= कटाहिकादौ शाल्यादिकं निधाय घृतादिसंमिश्रणेन तदमिश्रणेन वा पावकतापेन संस्करणीया इति, तथा पृथुखाद्याः=पृथुका इव भक्ष्याः अर्द्धपक्वशाल्यादीना-मुदूखलादौ मुशलाग्रघातेन 'चूडा' इति देशविशेषभाषाविश्रुता भक्ष्या

अब शाली आदि के विषय में निषिद्ध भाषा कहते हैं— 'तहेवोसहीओ' इत्यादि।

इसी प्रकार ये चावल, गेहूँ आदि पक गये हैं, ये चोले चवले (चोले) की

હવે શાલી આદિના વિષયમાં નિષિદ્ધ ભાષા કહે છે 'તહેવોસહીઓ' ઇત્યાદિ

એ પ્રકારે આ ડાંગર, ઘઉં આદિ પાકી ગયા છે, આ કુણી ચોળાની શીંગો

निष्पाद्यन्ते ते पृथुका उच्यन्ते; पृथुक कृत्वा भक्ष्या इति, यद्वा पृथु=बृहद् यथा स्यात्तथा खाद्या इति, अथवा पृथुकं=त्वक्नालादिसहितानामर्द्धपक्वयवगोधूम चणककलायादीनामग्नौ साक्षात्प्रक्षेपणरूप 'होला' इति 'ओरहा' इति च भाषा प्रसिद्धं कृत्वा खाद्याः=भक्ष्या इति च नो वदेत्=न कथयेत्, एवं भाषणे शाल्यादीना छेदनादिप्रसङ्गेन चारित्रविराधना भावनामालिन्य च भवतीति भावः ॥३४॥

शाल्यादिविषये भाषणप्रकारमाह-'रूढा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५
रूढा बहुसभूया थिरा ओसढावि य।
६ ७ ८ ९ १०
गब्भियाओ पसूयाओ संसाराउत्ति आलवे ॥३५॥

॥ छाया ॥

रूढा बहूसभूताः स्थिरा उत्सृता अपि च।
गर्भिताः प्रसूता' ससारा इति आलपेत् ॥३५॥

फलियाँ हरी हैं— कोमल हैं, तोडने योग्य हैं, कडाही में डालकर घीका छौंक लगाकर या विना छौंक लगायें अग्नि में भूजने योग्य हैं, चिवडा बनाकर खाने योग्य है, अथवा होला बना कर खाने योग्य हैं, ऐसा भाषण न करे। ऐसा कहने से यदि उन्हें कोई काट लेगा तो साधु को चारित्र की विराधना होगी तथा भावमलिनता आदि दोष होंगे ॥३४॥

લીલી છે-કોમળ છે, તોડવા યોગ્ય છે, કડાઈમા નાખીને ઘી માં વઘારીને યા વઘાર્યા વિના અગ્નિમા ભૂજવા યોગ્ય છે, ચીવડો બનાવીને ખાવા યોગ્ય છે, અથવા ચોળો બનાવીને ખાવા યોગ્ય છે, એવું ભાષણ ન કરે એમ. કહેવાથી જો તેને કોઇ કાપી લે તો સાધુને ચારિત્રની વિરાધનાનો દોષ લાગે, તથા ભાવમલિનતા આદિ દોષ ઉત્પન્ન થાય (૩૪)

॥ टीका ॥

'रूढा' इत्यादि।

इमे शाल्यादयो रूढाः=अङ्कुरिताः बहुसभूताः=पत्रकाण्डादिसकलावयवमण्डिताः स्थिराः=अतिवृष्ट्याद्युपद्रवविनिर्मुक्ततया स्थैर्यमागताः उत्सृताः=सम्यगुपचयं गताः काण्डप्रकाण्डादिवृद्ध्या सुसमृद्धा इत्यर्थः, अपि च गर्भिताः=काण्डान्तर्गतशीर्षकाः प्रसूता.=उद्गतशीर्षकाः ससाराः=सजातकणा इति च आलपेत्=वदेत् ॥३५॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ५ ४ ६ १४ १५
तहेव संखडिं नच्चा किच्च कज्जति नो वए।
९ ८ ७ १० १२ १३ ११
तेणगं वा वि वज्झित्ति सुतित्थित्ति य आवगा ॥३६॥

॥ छाया ॥

तथैव संखडिं ज्ञात्वा कृत्य कार्यम् इति नो वदेत्।
स्तेनकं वाऽपि वध्य इति सुतीर्था इति च आपगाः ॥३६॥

शालि आदि के विषय में किस प्रकार बोले? सो कहते हैं— 'रूढा' इत्यादि।

ये शालि आदि अकुरित होगये है, पत्ता काण्ड आदि सब अवयवो से शोभित हैं, अति वृष्टि आदि उपद्रव न होने के कारण स्थिर है, अच्छी तरह बढगये है अर्थात् काण्ड–प्रकाण्ड आदि की वृद्धि से समृद्ध हैं, मजरी वाले है, इन की मजरी निकल आई है, इनमें दाने पड गये है, इस प्रकार भाषण करे ॥ ३५ ॥

શાલિ આદિના વિષયમા કેવી રીતે બોલે? તે કહે છે-રૂઢા૦ ઇત્યાદિ

આ શાલિ આદિ અંકુરિત થઇ ગયા છે, પાદડા દાંડલી આદિ સર્વ અવયવોથી શોભિત છે, અતિવૃષ્ટિ આદિ ઉપદ્રવો ન હોવાને કારણે સ્થિર છે, સારી પેઠે વધી ગયા છે, અર્થાત્ દાડલી–ડાખલી આદિની વૃદ્ધિથી સમૃદ્ધ છે, મંજરીવાળા છે, એની મંજરી નિકળી આવી છે, એમા દાણા બેસી ગયા છે, એ પ્રકારે ભાષણ કરે (૩૫)

(टीका)

'तहेव' इत्यादि।

तथैव=तद्वत् संखडिं=संखण्ड्यन्ते=उपहन्यन्ते प्राणिनो यत्र सा संखडिः ताम्=मृतपित्रादिनिमित्त विवाहाद्युत्सवनिमित्तं च ज्ञातिभोजन 'जीमनवार' इति भाषाप्रसिद्धं ज्ञात्वा=विज्ञाय इदं कार्यं=कर्म कृत्यं=कर्तुं योग्यमिति नो वदेत्। अपि वा स्तेनकं=चौरं ज्ञात्वा वध्योऽयमिति, च पुनः आपगाः=नदीः ज्ञात्वा सुतीर्थाः =शुभतीर्थस्वरूपाः सुखसन्तरणयोग्या वा, इति नो वदेत्, एवं भाषणे साधोः वाध्यारम्भादिदोषप्रसङ्ग इति भावः ॥३६॥

तर्हि कथं वदेत्? इत्याह-'संखडिं' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

सखडिं संखडिं बूया पणिअट्ठत्ति तेणगं।

बहुसमाणि तित्थाणि आवगाणं वियागरे ॥३७॥

॥ छाया ॥

संखडिं संखडिः (इति) स्तेनकं पणितार्थ इति ब्रूयात्।

बहुसमानि तीर्थानि आपगानां इति व्यागृणीयात् ॥३७॥

'तहेव' इत्यादि। इसी प्रकार मृतक के निमित्त या विवाह आदि उत्सव के निमित्त जीमनवार जानकर, यह कार्य करने योग्य है, ऐसा न कहे। चोरको देखकर 'यह मारने के योग्य है' नदी को देखकर 'यह तीर्थस्वरूप है या सरलता से पार की जा सकती है' ऐसा भी भाषण न करे, ऐसा कहने से साधु को मिथ्यात्व तथा आरम्भ आदि दोष लगते हैं ॥ ३६ ॥

तहेव० ઇત્યાદિ એ જ પ્રકારે મરણને નિમિત્તે યા વિવાહ આદિ ઉત્સવ ને નિમિત્તે જમણવાર જાણીને આ કાર્ય કરવા યોગ્ય છે એમ ન કહે ચોરને જોઈને "આ મારવા યોગ્ય છે,' નદીને જોઈને 'આ તીર્થ સ્વરૂપ છે, યા સરલતાથી પાર કરી શકાય તેવી છે' એવું ભાષણ ન કરે એમ કહેવાથી સાધુને મિથ્યાત્વ તથા આરંભ આદિના દોષ લાગે છે (૩૬)

॥ टीका ॥

'संखडिं' इत्यादि।

सखडिं ज्ञात्वा सखडिरिति ब्रूयात् इय सखडिरिति वदेत्, तथा स्तेनकः= चौरं ज्ञात्वा अय पणितार्थ इति=पणितः=पणयुक्तः प्राणार्पणरूपं पणं पुरस्कृत्य सजातः अर्थः=प्रयोजनम् अर्थग्रहणस्वरूपं यस्य स तथोक्तः, प्राणसंकटपुरस्सर-स्वार्थसाधनपरोऽयमिति ब्रूयात्, आपगानां=नदीनां तीर्थानि=अवतरणस्थानानि बहुसमानि=समतलानि निम्नोन्नतभागरहितानीत्यर्थः, इति व्यागृणीयात्= वदेत् ॥३७॥

नदीविषये भाषानिषेधमाह–'तहानईउ' इत्यादि।

(मूलम्)

तहा नईउ पुन्नाउ कायतिज्जत्ति नो वए।
नावाहिं तारिमाउत्ति पाणिपिज्जत्ति नो वए ॥३८॥

॥ छाया ॥

तथा नदीस्तु पूर्णाः कायतरणीया इति नो वदेत्।
नौभिस्तरणीया इति प्राणिपेया इति नो वदेत् ॥३८॥

तो किस प्रकार से बोले? सो कहते हैं— 'सखडिं' इत्यादि।

जीमनवार को देखकर केवल यही कहे कि यह जीमनवार है। चोर को देख-कर कहे कि यह प्राणों को सकट में डालकर स्वार्थ की सिद्धि मे तत्पर है। नदी को देखकर कहे कि इसके घाट समतल हैं अर्थात ऊँचे नीचे नहीं हैं ॥ ३७ ॥

તો કેવી રીતે બોલવુ ? તે કહે છે-સખડિં૦ ઇત્યાદિ

જમણવારને જોઇને કેવળ એમ કહે કે આ જમણવાર છે ચોરને જોઇને કહે કે આ પ્રાણને સકટમા નાખીને સ્વાર્થની સિદ્ધિમા તત્પર છે નદીને જોઇને કહે કે એના ઘાટ સમતળ છે અર્થાત્ ઉંચા-નીચા નથી (૩૭)

॥ टीका ॥

'तहानईउ' इत्यादि।

तथा=तेन प्रकारेण पूर्णाः=सलिलोपचिताः नदीः=सरितो ज्ञात्वा इमाः कायतरणीयाः=शरीरव्यापारेण तरीतुं योग्याः अस्या वा, वेगसहकारेण सुख सन्तरणार्हा इत्यर्थः, इति नो वदेत्, इमा नद्यो नौभिः=नौकाभिस्तरणीया इति, तथा प्राणिपेयाः=प्राणिभिः पेयाः=पातुं योग्या जलाहरणार्थं कूलादवतरणे जलान्तिकादारोहणे च जायमानदुःखस्याभावात्सुखपेया इति च नो वदेत् ॥३८॥

नदीविषये भाषाविधिमाह— 'बहुवाहडा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३
बहुवाहडा अगाहा बहुसलिलुप्पिलोदगा।
६ ५ ४ ७ ९ ८
बहुवित्थडोदगा यावि एव भासेज्ज पन्नवं ॥३९॥

॥ छाया ॥

बहुधाभृता अगाधा बहुसलिलोत्पीडोदका।
बहुविस्तृतोदका चापि एवं भाषेत प्रज्ञावान ॥३९॥

नदी के विषय में नहीं बोलने की भाषा कहते हैं— 'तहानईउ' इत्यादि।

उसी प्रकार जलसे भरी हुई नदी देखकर यह शरीर द्वारा पार करने योग्य है, यह भुजाओं से पार की जा सकती है, ये नदियाँ नौकासे तिरने योग्य हैं, तथा जल लाने के लिए घाट में उतरने या जलके समीप से ऊपर आने में होने वाले दुःख के अभाव के कारण इनका पानी सुख से पीने योग्य है, ऐसा न कहे ॥ ३८ ॥

નદીના વિષયમા નહીં બોલવાની ભાષા કહે છે तहानइउ ઈત્યાદિ

એ પ્રકારે જળથી ભરેલી નદી જોઈને આ નદી શરીરદ્વારા પાર કરવા યોગ્ય છે, આ નદી ભુજાઓથી પાર કરી શકાય તેમ છે, આ નદીઓ નૌકાથી તરવા યોગ્ય છે, તથા જળ લાવવાને માટે ઘાટમા Cતારવા યોગ્ય છે યા જળની સમીપેથી ઉપર આવવામા થનારા દુખના અભાવને કારણે એનું પાણી સુખથી પીવા યોગ્ય છે એમ ન કહે (૩૮)

॥ टीका ॥

'बहुवाहडा' इत्यादि—

इमा नद्यः बहुधाभृताः=बहुविधजलागमनमार्गेण समाप्तजलोपचिताः पूर्णप्राया वा तथा अगाधाः=अतिगम्भीराः दुरवगमप्रमाणा इत्यर्थः; तथा बहुसलिलोत्पीडोदकाः=जलातिशयावरुद्धेतरजलसञ्चाराः अन्यमार्गागतवारिविरोधिवेगवत्य इत्यर्थः यद्वा जलातिशयसमुच्छलितोदकवत्य इत्यर्थः, अपि च बहुविस्तृतोदकाः=बहुतरप्रदेशाक्रमण-शालि-सलिलाः, एवम्=उक्तरीत्या प्रज्ञावान साधुः भाषेत ॥३९॥

साधोः स्वार्थसावद्ययोगप्रतिषेधस्य सुतरा सिद्धत्वात् परार्थसावद्ययोगविषये भाषणप्रतिषेधमाह— 'तहेव सावज्ज' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१ ७ ८ ३ ४
तहेव सावज्ज जोग परस्सट्ठाए निट्ठियं ।
५ ११ ६ ९ १० १२ १३ २
कीरमाणति वा नच्चा सावज्जं न लवे मुणी ॥४०॥

॥ छाया ॥

तथैव सावद्य योग परस्यार्थाय निष्ठितम् ।
क्रियमाणमिति वा ज्ञात्वा सावद्य न लपेत् मुनिः ॥४०॥

नदी के विषय में भाषा की विधि बताते हैं— 'बहुवाहडा' इत्यादि ।

इन नदियों मे जल आने के अनेक मार्ग हैं इसलिए ये जल से खूब भरी हुई हैं, अथाह है, इनका वेग इतना तीव्र है कि दूसरी जगह का पानी नहीं आ सकता, अथवा अधिकता के कारण इनका जल उछल उछल रहा है, इनका पाट बहुत चौडा है— इनका जल बहुत स्थान को घेरे हुए है, प्रज्ञावान् साधु ऐसा भाषण करे ॥ ३९ ॥

નદીના વિષયમા ભાષાની વિધિ બતાવે છે-બહુવાહડા ઇત્યાદિ

આ નદીઓમા જળ આવવાના અનેક માર્ગો છે તેથી તે જળથી ખૂબ ભરેલા છે, અથાગ છે, એમનો વેગ એટલો તીવ્ર છે કે બીજી જગ્યાનું પાણી આવી શકતુ નથી, અથવા અધિકતાને કારણે એ જળ છલકાઇ રહ્યુ છે, એનો પટ બહુજ પહોળો છે, એનું જળ ઘણા સ્થાન વિસ્તારને ઘેરે છે, પ્રજ્ઞાવાન્ સાધુ એવુ ભાષણ કરે (૩૯)

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि—

तथैव=पूर्वोक्तवत् मुनिः परस्यार्थाय=अन्यार्थं निष्ठितं=कृतम् अतीतकालिकमित्यर्थः, क्रियमाणं वर्त्तमानकालिकं, वा शब्दात् करिष्यमाणं=भविष्यत्कालिकम्, इति=इत्थम्भूतं सावद्यं योगं=सपापं कर्म गृहनिर्माणादि ज्ञात्वा सावद्यं न लपेत् सुष्ठुकृतं, सुष्ठुकरोति, सुष्ठु करिष्यतीत्यादि न भाषेतेत्यर्थः ॥४०॥

(मूलम्)

सुकडेत्ति सुपक्केत्ति सुच्छिन्ने सुहडे मडे ।
सुनिट्ठिए सुलट्ठेत्ति सावज्जं वज्जए मुणी ॥४१॥

॥ छाया ॥

सुकृतमिति सुपक्वमिति सुच्छिन्नं सुहृतं मृतः ।
सुनिष्ठितं सुलष्टमिति सावद्यं वर्जयेत् मुनिः ॥४१॥

स्वार्थ के लिए साधु का सावद्य बोलना स्वतः निषिद्ध ही है, अतएव परार्थ सावद्ययोग के विषय में बोलने का निषेध करते हैं— 'तहेव सावज्ज' इत्यादि।

इसी प्रकार मुनि, दूसरे के लिए अतीत कालीन, वर्तमान कालीन तथा भविष्य कालीन घर बनाना आदि रूप पापकर्मों को सावद्य समझकर ऐसा न कहे कि—तुमने ठीक किया, ठीक करते हो, या जो तुम करोगे—वह ठीक है ॥ ४० ॥

સ્વાર્થને માટે સાધુએ સાવધ બોલવું એ નિષિદ્ધ જ છે, એટલે પરાર્થ સાવધયોગના વિષયમાં બોલવાનો નિષેધ કરે છે-તહેવસાવજ્જં ઇત્યાદિ

એ પ્રકારે મુનિ, બીજાઓને માટે ભૂત કાલીન, વર્તમાન કાલીન તથા ભવિષ્યકાલીન, ઘર બનાવવું આદિ રૂપ પાપકર્મોને સાવધ ગણીને એમ ન કહે કે-તમે ઠીક કર્યું, ઠીક કરો છો, યા જે તમે કરશો તે ઠીક છે (૪૦)

॥ टीका ॥

'सुकडेत्ति' इत्यादि।

सुकृत=सुष्ठु कृतमनेन संग्रामादिकमिति, सुपक्व=सुष्ठु पक्वमनेनाऽपूपादिक सहस्रपाकादितैलं वेति, सुच्छिन्न=सुष्ठु छिन्नमनेनोद्यानादिकं वैरिशाकादिकं वेति, सुहत=सुष्ठु हृतं चौरेणास्य धनादिकमिति, 'मडे' इत्यनेन पूर्वापरसाहचर्यात् 'सुमडे' इति बोध्यते, तेन सुमृतः=सुष्ठु मृतोऽय दुष्ट इति, यद्वा 'सुमृष्ट' इतिच्छाया, तेन सुमृष्ट=सुष्ठु मृष्ट घृतात्यतिशयेन पाचित घृतपूरादिकमिति, सुनिष्ठितं= सुष्ठु नष्टमस्य दुष्टस्य द्रविणादिकमिति. सुलष्टा रुचिरावयवेयं. राजकन्येति च सावद्य=सावद्यभाषणचेति वर्जयेत्=न वदेदित्यर्थ ॥ 'सावद्यं वर्जयेत्' इत्यनेन उक्तमेव भाषण निरवद्य चेद् तन न प्रतिषेध इति ध्वन्यते, तथा च पक्षद्वयमनया

'सुकडेत्ति' इत्यादि। इसन युद्ध अच्छा किया, इसन मालपूए या शतपाक सहस्रपाक आदि तैल अच्छे पकाये, इसन उद्यान या वैरी के शाक आदि को अच्छा काटा, चोरने धन आदि अच्छा चुराया, वह दुष्ट मर गया सो अच्छा हुआ या इस घेवर आदि में घी खूब रमाया है, इस दुष्ट की सम्पत्ति नष्ट हो गई सो ठीक हुआ, यह राजा की कन्या ऐसी सुन्दरी है। इस प्रकार की सावद्य भाषा न बोले।

'सावज्ज वज्जए' इस पदसे यह सूचित किया है कि उक्त भाषा यदि निरवद्य हो तो बोलने का निषेध नहीं है। इस पदमे दोनों पक्ष झलकते हैं, जिनमे सावद्यपक्ष तो

सुकडेत्ति० ઇत्यादि એણે યુદ્ધ સારૂ કર્યું, એણે માલપૂઆ યા શતપાક સહસ્રપાક આદિ તેલ સરસ પકાવ્યા, એણે ઉદ્યાનને યા વૈરીના શાક આદિને સારી પેઠે કાપી નાખ્યું ચોરે ધન આદિ સારી પેઠે ચોર્યું છે, દુષ્ટ મરી ગયો તે સારૂ થયુ, યા આ ઘેવર આદિમા ઘી ખૂબ નાખ્યું છે, આ દુષ્ટની સંપત્તિ નષ્ટ થઈ ગઈ તે ઠીક થયું, આ રાજાની કન્યા એવી સુંદરી છે, એ પ્રકારની સાવદ્ય ભાષા ન બોલે

सावज्जवज्जए० એ પદથી સૂચિત કર્યું છે કે ઉક્ત ભાષા જો નિરવદ્ય હોય તો બોલવાનો નિષેધ નથી એ પદથી બેઉ પક્ષો ઝળકે છે એમાથી સાવદ્ય

गाथया गम्यते, तत्र सावद्यपक्षो व्याख्यातः, निरवद्यपक्षो व्याख्यायते यथा सुकृतमिति=सुष्ठु कृतमनेन वैयावृत्यमभयदानं सुपात्रदानादिकं वेति, सुपक्व मिति=सुष्ठु पक्वमस्य ब्रह्मचर्यादिकमिति, सुच्छिन्नं=सुष्ठु छिन्नमनेन स्नेहबन्धनमिति, सुहृत=सुष्ठु हृत स्वायत्तीकृत ज्ञानादिरत्नत्रयमिति सुनिष्ठित=सुष्ठु नष्टमस्या प्रमत्तसाधोः कर्मजाल सुमृत=सुष्ठु मृतं तेन पण्डितमरणमिति, सुलष्टा=सुष्ठ मनोज्ञा क्रियाऽस्य साधोः, यद्वा सुलष्टा=दीक्षायोग्या कन्येति वदेत् ॥४१॥

अपवादमाह— 'पयत्तपक्कत्ति' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

२ ३ ४ १ ५ ७ ८ ९ ६ १०
पयत्तपक्कत्ति य पक्कमालवे, पयत्तछिन्नत्ति व छिन्नमालवे ।
१३ ११ १२ १५ १४ १५ १७
पयत्तलट्ठित्ति व कम्महेउयं, पहारगाढत्ति व गाढमालवे ॥४२॥

॥ छाया ॥

प्रयत्नपक्वम् इति च पक्वमालपेत्, प्रयत्नच्छिन्नम् इति छिन्नमालपेत्।
प्रयत्नलष्टेति च कर्महेतुकं, प्रहारगाढ इति च गाढमालपेत् ॥४२॥

व्याख्यान ऊपर कर चुके हैं, निरवद्य पक्ष का व्याख्यान इस प्रकार है—इसने वैयावच्च या अभयदान सुपात्र दान आदि अच्छा किया है, इसका ब्रह्मचर्य अच्छा पका हुआ है, इसने ममता के बन्धन का अच्छी तरह काटा है, इसने ज्ञानादिक की अच्छी प्राप्ति की है, अच्छा हुआ इस अप्रमत्त साधु का कर्मजाल नष्ट हो गया, वह पण्डितमरण से अच्छा मरा, अमुक साधु की क्रिया मनोज्ञ है, इस प्रकार निरवद्य भाषा बोले ॥ ४१ ॥

પક્ષનું વ્યાખ્યાન ઉપર કરવામાં આવ્યું છે, નિરવદ્ય પક્ષનું વ્યાખ્યાન આ પ્રમાણે છે – એણે વૈયાવચ્ચ યા અભયદાન સુપાત્રદાન આદિ સારાં કર્યાં છે, એનું બ્રહ્મચર્ય સારી પેઠે પકવ થયું છે, એણે મમતાના બંધનને સારીરીતે કાપ્યાં છે, એણે જ્ઞાનાદિકની સારી પ્રાપ્તિ કરી છે, સારૂ થયું કે આ અપ્રમત્ત સાધુની કર્મ જાળ નષ્ટ થઈ ગઈ, તે પંડિત મરણથી સારી રીતે મરણ પામ્યો, અમુક સાધુની ક્રિયા મનોજ્ઞ છે, એ પ્રકારની નિરવદ્ય ભાષા બોલે (૪૧)

॥ टीका ॥

'पयत्तपक्ति' इत्यादि।

पक्व=शतपाक-सहस्रपाकतैलादिकं प्रति इद प्रयत्नपक्वमिति वा आलपेत्=वदेत्, छिन्नम् ओषधिशाकादिकं प्रति इद प्रयत्नछिन्नमिति वा आलपेत्। लष्टा कन्या प्रति प्रयत्नलष्टेति=प्रयत्न. लष्ट:=सुन्दरो यस्याः सा तथोक्ता चारुचरित्रेत्यर्थः, अहो धन्येय कन्या यत् स्वसौन्दर्यादिकं केवल तपश्चर्यादिधर्मक्रियाया समापयतीति भाव.। वा=अथवा लष्टा=कन्या प्रति कर्महेतुकमित्यालपेदित्यन्वय., अस्याः सौन्दर्य पूर्वोपार्जितपुण्यकर्मजनितमि ति भावः, तथा गाढं=विलोडितं केनचित्कारणेनाऽऽघातमनुप्राप्त प्रति अय प्रहारगाढ इति=प्रहारेण गाढःप्रहारगाढः प्रहारजनिताऽऽघातवानित्यर्थ इति वा आलपेत् ॥४२॥

आवश्यकता होने पर बोलने की विधि कहते हैं— 'पयत्तपक्ति' इत्यादि।

यह पके हुए शतपाक-सहस्रपाक तेल आदि प्रयत्नपूर्वक पकाये गये है, ऐसा बोले। कटे हुए शालि आदि तथा शाक आदि के प्रति यह कहे कि ये प्रयत्न पूर्वक काटे गये हैं। सुन्दरी कन्या को देखकर ऐसा कहे कि यह कन्या सदाचारिणी तथा धन्य है जो अपनी सुन्दरता को केवल तपश्चर्या आदि धर्म कार्य में लगाती है अथवा कन्या के प्रति ऐसा कहे कि इसकी सुन्दरता पूर्वपुण्य के उदय से हुई है, तथा किसी कारण से घातको प्राप्त हुए व्यक्ति के प्रति ऐसा कहे कि प्रहार से इसका घात हुआ है ॥४२॥

આવશ્યક્તા ઉત્પન્ન થતા બોલવાની વિધિ કહે છે-पयत्तपक्ति० ઇત્યાદિ

આ પાકેલા શતપાક-સહસ્રપાક તેલ આદિ પ્રયત્ન પૂર્વક પકાવવામા આવ્યા છે, એમ બોલે કાપેલા શાલિ આદિ તથા શાક આદિની પ્રતિ એમ કહે કે તે પ્રયત્ન પૂર્વક કાપવામા આવ્યા છે સુદરી કન્યાને જોઇને એમ કહે કે આ કન્યા સદાચારિણી તથા ધન્ય છે કે જે પોતાની સુદરતાને કેવળ તપશ્ચર્યા આદિ ધર્મકાર્યમા લગાડે છે, અથવા કન્યાની પ્રતિ એમ કહે કે એની સુદરતા પૂર્વપુણ્યના ઉદયથી ઉત્પન્ન થઇ છે તેમ કોઇ કારણથી ઘાતને પ્રાપ્ત થએલી વ્યક્તિની પ્રતિ એમ કહે કે પ્રહારથી એનો ઘાત થયો છે (૪૨)

क्वचिद्व्यवहारे पृष्टस्यापृष्टस्य वा साधोर्भाषाप्रतिषेधमाह—'सव्वुक्कस' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

सव्वुक्कस परग्घ वा अउलं नत्थि एरिसं।
अविक्कियमवत्तव्व अचियत्त चेव नो वए ॥४३॥

॥ छाया ॥

सर्वोत्कर्ष परार्घ वा अतुलं नास्ति ईदृशम्।
अविक्रतमवक्तव्यम् अप्रीतिकं चैव नो वदेत् ॥४३॥

॥ टीका ॥

'सव्वुक्कस' इत्यादि।

इदं वस्तु सर्वोत्कर्ष=सर्वतः=सर्वापेक्षया उत्कर्षो यत्र तत्, सर्वोत्तम मित्यर्थः, वा=अथवा परार्घम्=अधिकमूल्यक, तथा अतुलम्=अनुपम, तथा इतो ऽन्यत् ईदृशम्=एतत्सदृश नास्ति, अविक्रत=यथास्वरूपावस्थितम् अवक्तव्यम्= अकथनीयम् अनन्तगुणवत्वात्, च=पुनः अप्रीतिक=नोत्पद्यते प्रीतिः=सुख यस्मात्तत् दुःखकरमित्यर्थः, इति नो एव=नैव वदेत्। एव भाषणे श्रोतॄणा परस्पराऽप्रीतितदन्तरायादिदोषप्रसङ्गाच्चारित्रहानिरिति भावः ॥४३॥

व्यवहारिक विषय में पूछे जाने पर या न पूछे जाने पर बोलने का निषेध करते हैं—'सव्वुक्कस' इत्यादि।

यह वस्तु सब से अच्छी है, अधिक मूल्यवान् है, अनुपम है, इसके समान दूसरी वस्तु नहीं है, यह वस्तु विकृत नहीं हुई है अर्थात् जैसी की तैसी है, बहुत गुणवाली होने से अवर्णनीय है, यह वस्तु अच्छी नहीं है, हानि—कारक है। ऐसा नहीं कहना चाहिए। ऐसा कहने से सुनने वालों में परस्पर अप्रीति होती है और अन्तराय आदि दोष लगते हैं, इस कारण से चारित्र दूषित हो जाता है ॥४३॥

વ્યાવહારિક વિષયમા પૂછવામા આવતા યા ન પૂછાતા સાધુને બોલવાનો નિષેધ કહે છે-સવ્વુક્કસ० ઇત્યાદિ

આ વસ્તુ બધાથી સારી છે, અધિક મૂલ્યવાન્ છે, અનુપમ છે એના જેવી બીજી કોઈ વસ્તુ નથી, આ વસ્તુ વિકૃત થઇ નથી, અર્થાત્ જેવી ને તેવી જ છે, બહુ ગુણવાળી હોવાથી અવર્ણનીય છે, આ વસ્તુ સારી નથી, હાનિકારક છે, એમ ન કહેવુ જોઈએ એમ કહેવાથી સાભળનારાઓમા પરસ્પર અપ્રીતિ થાય છે અને અન્તરાય આદિ દોષો લાગે છે, એ કારણથી ચારિત્ર દૂષિત થઇ જાય છે (૪૩)

॥ मूलम् ॥

२ १ ३ ४ ५ ६ ७ ८
सव्वमेयं वइस्सामि सव्वमेयं ति नो वए ।
१२ ११ १० १३ १४ ९
अणुवीइ सव्वं सव्वत्थ एवं भासिज्ज पन्नव ॥४४॥

॥ छाया ॥

सर्वमेतद् वदिष्यामि सर्वमेतत् इति नो वदेत् ।
अनुविचिन्त्य सर्वं सर्वत्र एवं भाषेत प्रज्ञावान ॥४४॥

॥ टीका ॥

'सव्वमेयं' इत्यादि ।

केनचित्सदिष्टोऽसदिष्टो वा साधुः एतत्=भवदीयसन्देशवचनं सर्वं वदिष्यामि=कथयिष्यामि तस्मै इति शेषः, तथा सर्वमेतत्=तस्य कथनं सर्वमेतदेवेति नो वदेत्। तर्हि कथं भाषेत ? इत्याह–प्रज्ञावान् साधुः सर्वत्र=ग्रामनगरादौ सर्वकार्येषु वा सर्वं=वक्तव्यविषयम् अनुविचिन्त्य=विचार्य एवं=यथा मृषावादादिदोषो न भवेत् तथा भाषेत=वदेत्, साधोश्छद्मस्थतया समग्रभाषणस्य यथावत्स्वरव्यञ्जनादिन्यूनाधिकतत्परिवर्त्तनाऽवश्यम्भावेन भाषादोषाणां परिहर्त्तुमशक्यत्वादिति भावः ॥४४॥

'सव्वमेय' इत्यादि। यदि कोई साधु से अपना सदेश कहने के लिए कहे या न कहे तो साधु ऐसा न कहे कि मै आपका सब सन्देश उससे कह दूगा तथा यह भी न कहे कि उसने इसी प्रकार ही कहा है। किन्तु साधु सर्वत्र ग्राम नगर आदि में कहने योग्य विषयों का विचार करके ऐसा बोले जिससे मृषावाद आदि दोष न लगे ॥४४॥

सव्वमेय० ઇત્યાદિ જો કોઇ સાધુને પોતાનો સંદેશો કહેવાનું કહે યા ન કહે તો સાધુ એમ ન કહે કે હું આપનો આખો સંદેશો એને કહીશ, તથા એમ પણ ન કહે કે એણે આ પ્રમાણે જ કહ્યું છે, કિન્તુ સાધુ સર્વત્ર ગ્રામનગર આદિમાં કહેવા યોગ્ય વિષયોનો વિચાર કરીને એવું બોલે કે જેથી મૃષાવાદ આદિ દોષ ન લાગે (૪૪)

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ६ ५
सुकीय वा सुविकीय अकिज्ज किज्जमेव वा ।
७ ९ १० ११ ८ १२ १३
इमं गिण्ह इमं मुंच पणियं नो वियागरे ॥४५॥

॥ छाया ॥

सुक्रीतं वा सुविक्रीतम् अक्रेयं क्रेयमेव वा ।
इदं गृहाण इदं मुञ्च पणितं नो व्यागृणीयात् ॥४५॥

॥ टीका ॥

'सुक्रीयं' इत्यादि ।

केनचित् क्रीतादि वस्तु दृष्ट्वा सुक्रीतं=त्वया सुष्ठु क्रीतमिति, वा=अथवा सुविक्रीत=त्वया सम्यग् विक्रीतमिति, तथा अक्रेयम्=इदं न क्रयणार्हमिति, वा= अथवा क्रेयमेव=क्रेतुं योग्यमेवेति तथा इदं पणितं=पण्यं गुडधान्यादिकं गृहाण क्रीणीहि, भविष्यति काले लाभो भविष्यतीति, इदं पणितं मुञ्च=विक्रीणीहि सत्वरम् इदानीमेतत्क्षणे स्वल्पमूल्यतया पश्चाद्विक्रयणे हानिर्भविष्यतीति, नो व्यागृणीयात्=नो वदेदित्यर्थः। अत्राऽऽरम्भादिदोषाः प्रतीता एवेति भावः ॥४५॥

'सुक्रीय' इत्यादि। किसी के द्वारा खरीदी हुई वस्तु देखकर ऐसा न कहे कि तुमने बहुत अच्छी वस्तु खरीदी है, अच्छी बेचा है, यह खरीदने योग्य नहीं है, यह खरीदने योग्य है, गुड धान्य आदि खरीद लो इसमें भविष्य में लाभ होगा, इस खरीदी हुई वस्तु को जल्दी बेच दो भविष्य में भाव गिरजाने से हानि होगी। ऐसा कहने से आरम्भ आदि दोष लगते हैं ॥ ४५ ॥

सुक्रीय० ઇત્યાદિ કોઇએ ખરીદેલી વસ્તુ જોઇને એમ ન કહે કે તમે બહુ સારી વસ્તુ ખરીદી છે, સારી રીતે વેચી છે, એ ખરીદવા યોગ્ય નથી, આ ખરીદવા યોગ્ય છે, ગોળ ધાન્ય આદિ ખરીદી લ્યો તેથી ભવિષ્યમા લાભ થશે આ ખરીદેલી વસ્તુને જલ્દી વેચી નાખો કારણ કે ભવિષ્યમા ભાવ ઘટી જવાથી નુકસાન થશે, એમ કહેવાથી આરંભ આદિ દોષ લાગે છે (૪૫)

(मूलम्)

३ ४ ५ ६ ७ ८ ११ ९ १०

अप्पग्घे वा महग्घे वा कए वा विक्कए वि वा।

२ १ १२ १

पणियट्ठे समुप्पन्ने अणवज्जं वियागरे ॥४६॥

(छाया)

अल्पार्घे वा महार्घे वा क्रये वा विक्रये वि वा।

पणितार्थे समुत्पन्ने अनवद्यं व्यागृणीयात् ॥४६॥

॥ टीका ॥

'अप्पग्घे वा' इत्यादि।

समुत्पन्ने=समीपमुपस्थिते समीपवर्तिनि पणितार्थे=पण्यवस्तुनि क्रय-विक्रययोग्ये साधुः अल्पार्घे वा=अल्पमूल्यविषये वा, महार्घे वा=बहुमूल्ये वा, क्रये वा=क्रयविषये वा अपिवा विक्रये=विक्रयणविषये अनवद्यम्=अपापपापाऽजनकं वाक्य, यथा अस्माकमेतस्मिन् व्यापारविषये भाषणाधिकारो नास्तीति लक्षणं व्यागृणीयात्=वदेदित्यर्थः ॥४६॥

गृहस्थविषये भाषाप्रतिषेधमाह— 'तहेवा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ ४ २ ५ ६ ८ ७

तहेवाऽसंजयं धीरो आस एहि करेहि वा।

९ १० ११ १२ १४ १३ १५ ३

सयं चिट्ठ वयाहित्ति नेवं भासेज्ज पन्नवं ॥४७॥

'अप्पग्घे वा' इत्यादि। खरीदने–बेचने योग्य वस्तु हो तो साधु ऐसा अनवद्य वचन बोले कि– कममूल्य, अधिकमूल्य बेचन–खरीदने–आदि व्यापार विषय में साधुको भाषण करने का अधिकार नहीं है ॥ ४६ ॥

अप्पग्घेवा० ઇત્યાદિ ખરીદવા-વેચવા યોગ્ય વસ્તુ હોય તો સાધુ એવું અનવદ્ય વચન બોલે કે-સસ્તુ છે યા મોંઘુ છે વેચવા ખરીદવા આદિ વ્યાપાર વિષયમાં સાધુને ભાષણ કરવાનો અધિકાર નથી (૪૬)

॥ छाया ॥

तथैवाऽसंयतं धीरः आस्स्व एहि कुरु वा ।
शेष्व तिष्ठ व्रज इति नैव भाषेत प्रज्ञावान् ॥४७॥

॥ टीका ॥

'तहेवा' इत्यादि।

तथैव=तद्वत् धीरः=धैर्यवान प्रज्ञावान्=बुद्धिमान् साधुः असंयत=गृहस्थं प्रति 'आस्स्व=उपविश, एहि=आगच्छ वा=अथवा कुरु=विधेहि, शेष्व=स्वपिहि, तिष्ठ, व्रज=गच्छ' इत्येवम्=अनया रीत्या न भाषेत, 'धीरो' इति पदेन लोकमाननीय सान्निध्येऽपि तदादराय स्वचारित्रसंकोचो नाचरणीय इति व्यक्तीकृतम् ॥४७॥

(मूलम्)

२ १ ३ ४ ६ ५
बहवे इमे असाहू लोए वुच्चंति साहुणो ।
९ १० ७ ८ ११ १२ १४
न लवे असाहुं साहुत्ति साहुं साहुत्ति आलवे ॥४८॥

॥ छाया ॥

बहव इमे असाधवः लोके उच्यन्ते साधवः ।
न लपेदसाधुं साधुरिति साधुं साधुरित्यालपेत् ॥४८॥

गृहस्थ के विषय में भाषा का निषेध बताते हैं—'तहेवा' इत्यादि।

उसी प्रकार प्रज्ञावान् धीर साधु असंयत अर्थात् गृहस्थ से ऐसा न कहे कि बैठो, आओ, करो, सो जाओ, खड़े रहो या जाओ। 'धीरो' पदसे यह प्रगट किया है कि यदि कोई लोक में प्रतिष्ठित भी व्यक्ति आजाय तो भी उस के आदर के लिए अपने चारित्र में संकोच न करना चाहिए ॥ ४७ ॥

ગૃહસ્થના વિષયના ભાષાનો નિષેધ બતાવે છે तहेवा० ઇત્યાદિ

એ પ્રમાણે પ્રજ્ઞાવાન્ ધીર સાધુ અસંયત અર્થાત્ ગૃહસ્થને એમ ન કહે કે, બેસો, આવો, કરો, સૂઈજાઓ, ઊભા રહો યા જાઓ ધીરો શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે-જો કોઇ લોકમાં પ્રતિષ્ઠિત વ્યક્તિ આવે યા જાય તો પણ તેના આદરને માટે પોતાના ચારિત્રમાં સંકોચ ન કરવો જોઇએ (૪૭)

॥ टीका ॥

'बहवे' इत्यादि ।

इमे=दृष्टिपथसमारूढाः इतस्ततः सचरणमाणाः बहवोऽसाधवः=आजीविकादयः लोके साधव उच्यन्ते=साधुशब्देन निर्दिश्यन्ते, तत्र असाधुं प्रति साधुरिति न लपेत्=साधुशब्दं न प्रयुञ्जीत, साधु प्रति तु साधुरिति साधुशब्दनिर्देशेन 'अयं साधु' रिति आलपेत् वदेत् । असाधोः साधुत्वकथने मिथ्यात्वमृषावादप्रसङ्गः, साधोः साधुत्वाऽकथने तु मत्सरत्वादिदोषप्रसङ्ग इति भावः ॥४८॥

कथं साधुशब्देन निर्देश्यः ? इत्याह— 'नाण' इत्यादि ।

(मूलम्)

नाणदंसणसंपन्नं संजमे य तवे रयं ।
एवंगुणसमाउत्तं संजयं साहुमालवे ॥४९॥

॥ छाया ॥

ज्ञानदर्शनसम्पन्नं संयमे च तपसि रतम् ।
एवंगुणसमायुक्तं संयतं साधुमालपेत् ॥४९॥

'बहवे' इत्यादि । लोक मे बहुतेरे वेषधारी असाधु साधु कहलाते हैं किन्तु उन असाधुओं के विषय में साधु शब्द का प्रयोग न करे अर्थात् उन को साधु न कहे, साधु को साधु शब्द से कहे जैसे—'यह साधु है' क्योंकि असाधु को साधु कहने से मिथ्यात्व और मृषावाद आदि दोष लगते है तथा साधु को साधु न कहने से मत्सरता आदि दोष लगते है ॥ ४८ ॥

बहवे० ઇત્યાદિ લોકમાં ઘણાય વેશ ધારી અસાધુઓ સાધુ કહેવાય છે, પરન્તુ એ સાધુઓના વિષયમાં સાધુ શબ્દનો પ્રયોગ ન કરે, અર્થાત્ એમને સાધુ ન કહે સાધુને જ સાધુ શબ્દથી બોલે—જેમકે, 'આ સાધુ છે' કારણકે અસાધુને સાધુ કહેવાથી મિથ્યાત્વ અને મૃષાવાદ આદિ દોષ લાગે છે, તથા સાધુને સાધુ ન કહેવાથી મત્સરતા આદિ દોષ લાગે છે (૪૮)

(टीका)

'नाण' इत्यादि ।

ज्ञानदर्शनसंपन्न=ज्ञानदर्शनयुक्तं संयमे=दयालक्षणे सप्तदशविधे च= तथा तपसि=अनशनादिद्वादशविधे रतं=तत्परम्, एवंगुणसमायुक्तम्=उक्तगुण-विशिष्टं संयतं=मुनिं प्रति साधुमालपेत्=साधुशब्दनिर्देशेन वदेत् ॥४९॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६
देवाण मणुयाण च तिरियाण च वुग्गहे ।
७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
अमुयाण जओ होउ मा वा होउ त्ति नो वए ॥५०॥

॥ छाया ॥

देवाना मनुष्याणा च तिरश्चा च विग्रहे ।
अमुकाना जयो भवतु मा वा भवतु नो वदेत् ॥५०॥

॥ मूलम् ॥

'देवाण' इत्यादि ।

देवाना=सुराणा, मनुष्याणा=भूपादीनां तिरश्चा=पशूना च परस्पर विग्रहे=युद्धे, सपत्नापेक्षयाऽऽत्मपक्षं प्रबलं समबलं वा मन्यमानाः सुरादयो द्विष

साधु शब्द से किसे कहना चाहिए सो कहते हैं— 'नाण' इत्यादि ।

सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन से सम्पन्न और सत्रह प्रकारके सयम तथा बारह प्रकार के तपमें तत्पर, इन गुणों से युक्त सयमी को 'साधु' शब्द से कहे ॥ ४९ ॥

'देवाण' इत्यादि । देवा मनुष्यों और पशुओं का आपस में युद्ध हो तो ऐसा न कहे कि इन में से अमुक जीते या अमुक न जीते। ऐसा कहने से रागद्वेष के

સાધુ કોને કહેવો જોઇએ તે હવે કહે છે—नाण० ઇત્યાદિ

સમ્યગ્જ્ઞાન સમ્યગ્દર્શનથી સપન્ન અને સત્તર પ્રકારના સયમ તથા બાર પ્રકારના તપમા તત્પર, એ ગુણોથી યુક્ત સયમીને 'સાધુ' શબ્દથી બોલે (૪૯)

देवाण० ઇત્યાદિ દેવો મનુષ્યો અને પશુઓનું માહોમાહે યુદ્ધ થાય તો એમ ન કહે કે એમાથી અમુક જીતે યા અમુક ન જીતે એમ કહેવાથી રાગદ્વેષના

द्विजिगीषया यदन्योन्य प्रहरन्ति तदेव युद्धम्, भयातुराणा हीनदीनाना क्रौर्यावेशेन हननं तु न युद्धपदव्यपदेशार्हतामर्हति, शूरजनजुगुप्सितत्वादितिभावः। तस्मिन प्रवृत्ते सति 'एषु अमुकाना (देवादीना मध्ये कांश्चिद्बुद्धिस्थीकृत्य) एषां' जयो=रिपुपराभवस्वरूपो भवतु वा मा भवतु, इति नो वदेत्=नोच्चरेत्। इतरथा रागद्वेषावेशप्रकाशात्संयमात्मविराधनादयो दोषा उत्पद्येरन्निति भावः ॥५०॥

॥ मूलम् ॥

वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवंति वा।
कया णु होज्ज एयाणि, मा वा होउत्ति नो वए ॥५१॥

॥ छाया ॥

वातो वृष्टं च शीतोष्णं क्षेमं धान्यं शिवमिति वा।
कदा नु भवेयुः एतानि मा वा भवन्तु इति नो वदेत् ॥५१॥

॥ टीका ॥

'वाओ' इत्यादि।

वातः=वायुः वृष्टं=वर्षणं शीतोष्णं=शीतम् उष्णं च प्रतीतं, क्षेमं=शुभं,

---

आवेश से संयम की तथा आत्मा की विराधना आदि दोष उत्पन्न होते हैं। अपने को विपक्ष की अपेक्षा से अधिक बलवाले या समबल वाले मानकर जो देवआदि अपने विजय की इच्छा से विपक्ष के ऊपर शस्त्र आदि का प्रहार करते हैं वही युद्ध है, भय से कॉंपते किसी दीन हीन प्राणी को मारना युद्ध नहीं है ॥५०॥

'वाओ' इत्यादि। साधु ऐसा भी न कहे की वायु कब वहेगी? वर्षा कब होगी?

આવેશથી સંયમની તથા આત્માની વિરાધના આદિ દોષ ઉત્પન્ન થાય છે વિરૂદ્ધ પક્ષીની અપેક્ષાએ પોતાના અધિક બળવાળા યા સમબળવાળા માનીને જે દેવ આદિ પોતાના વિજયની ઇચ્છાથી વિપક્ષની ઉપર શસ્ત્ર આદિ પ્રહાર કરે છે તે યુદ્ધ છે ભયથી કંપતા કોઈ દીન હીન પ્રાણીને મારવા એ યુદ્ધ નથી (૫૦)

વાઓ૦ ઇત્યાદિ સાધુ એમ પણ ન બોલે કે વાયુ ક્યારે વહેશે? વર્ષાદ

धार्य=धान्यं शालिगोधूमादिक वा=अथवा शिवम्=उपद्रवराहित्यम्; एतानि=वात-प्रभृतीनि कदा नु भवेयुः=कदा भविष्यन्तीति, वा=अथवा मा भवन्तु, इति नो वदेत्? अहो! निदाघतापव्याकुलोऽस्मि, कदा मलयजगन्धसंवलितजलदानिलसमागमस्तत्क्षिप्तशीकरनिकरसम्पर्को वा भविष्यति।

शीतबाधाकम्पितस्य ममात्मानं वारिदावरणनिर्मुक्तदिवाकरकिरणाः कदा सुखयिष्यन्ति, कदा वा प्रावरणविशेषानपेक्षो निदाघः समागमिष्यति।

राजयक्ष्मादिरोगजनिताभिभवं प्राप्तः कदाऽहमेतस्माद् व्याधिदुःखाद् विमुक्तो भविष्यामि।

अहो! यथेष्टाहाराद्यलाभेन बाधते बुभुक्षा, देशोऽयं कदा सुभिक्षो भवि

सर्दी–गर्मी कब पडेगी? सुभिक्ष कब होगा?, शालि आदि धान्य होंगे या नहीं? अर्थात् फसल अच्छी होगी या बुरी? उपद्रवों की शान्ति कब होगी? अथवा ये सब न हों।

शीत आदि से स्वयं पीडित होकर साधु को यह भी नहीं कहना चाहिए कि हाय! मैं गर्मी से व्याकुल हूँ न जाने कब चन्दन की सुगंध से सुगंधित मेघ और वायु का समागम होगा? कब मेघ के फुहारों का सम्पर्क होगा?

सदा से थर थर कांपने वाले मुझको, बादलों के आवरण से रहित तीव्र-सूर्य की किरणें कब आनन्द पहुंचावेंगी? वह ग्रीष्मऋतु कब आवेगी जिसमें प्रावरण की आवश्यकता नहीं रहती।

मैं राजयक्ष्मा आदि की पीडा से न जाने कबतक छुटकारा पा सकूंगा।

ओह! इच्छा भर आहार आदि का लाभ न होने से भूख सता रही है। इस देशमें

ક્યારે આવશે? ટાઢ-તાપ ક્યારે પડશે? સુકાળ ક્યારે થશે? શાલિ આદિ ધાન્ય પાકશે કે નહિ? અર્થાત્ પાક સારો ઊતરશે યા ખરાબ ઊતરશે? ઉપદ્રવોની શાન્તિ ક્યારે થશે? અથવા એ બધું નહિ થાય ટાઢ આદિથી પોતે પીડિત થઈને સાધુએ એમ પણ ન કહેવું જોઈએ કે–હું તાપથી વ્યાકુળ થયો છું ખબર પડતી નથી કે ક્યારે ચંદનની સુગંધથી સુગંધિત મેઘ અને વાયુનો સમાગમ થશે? ક્યારે વરસાદના છાંટા પડશે? ટાઢથી થર થર કંપતા એવા મને વાદળોના આવરણથી રહિત તીવ્ર સૂર્યનાં કિરણો ક્યારે આનંદ આપશે? એ ગ્રીષ્મઋતુ ક્યારે આવશે કે જેમાં ઓઢવાની જરૂર જ પડે નહિ? હું રાજયક્ષ્મા (ક્ષય) આદિની પીડાથી ક્યારે છૂટકો પામીશ? ઓહ! ઇચ્છાનુકૂળ આહારાદિનો લાભ ન થવાથી

ष्यति, तथोपसर्गादिबाधायां सत्यां कदा मदीयोपसर्गादि-प्रशमनं स्यादिति न वदेत्।

अथवा मदीयदुःखोत्पादका एते निदाघतापादयो मा समायान्तु, इति न ब्रूयादित्यर्थः। अनुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसहनस्यैव मुनिकर्त्तव्यतया तेनाऽऽर्त्तध्यानवशात्परीषहोपसर्गादावुक्तरीत्या भाषणं न विधेयम् "वट्टमाणोऽट्टझाणे य भम्मइ दीहसंसारे" इत्यादि वचनादिति भावः ॥५१॥

मेघादिविषये भाषणाभाषणविधिमाह—'तहेवमेह' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ९ ७ ८ १०
तहेव मेह-व नह व मानव न देवदेवेत्ति गिरं वएज्जा।
१२ १४ १३ ११ १९ १५ १७ १६ १८
समुच्छिए उन्नए वा पओए वएज्ज वा वुट्ठ बलाहए त्ति ॥५२॥

न मालूम कब तक सुभिक्ष होगा? मेरा इस परीषह या उपसर्ग का निवारण होगा? कब मैं सुखी होऊंगा?

अथवा—"मुझे पीडा उत्पन्न करने वाले निदाघ ताप आदि न आवे तो अच्छा हो" ऐसा भी साधु को नहीं कहना चाहिए। क्योंकि, अनुकूल प्रतिकूल परीषहों को तथा उपसर्गों को सहना मुनि का कर्तव्य ही है। अतः आर्त्तध्यान के वश होकर ऐसा भाषण करना उचित नहीं है। कहा भी है—"आर्त्तध्यानी, दीर्घ—संसार में परिभ्रमण करता है ॥५१॥

भूख मटावी रही छे खबर पडती नथी के आ दशमां क्यां सुधी सुकाळ रहेशे? मारा आ परीषह या उपसर्गनु क्यारे निवारण थशे? क्यारे हुं सुखी थईश?

अथवा-'मने पीडा उपजावनारा उन्हाळानो ताप आदि न आवे तो बहु सारु,' एम पण साधुए न कहेवु जोईए कारण के अनुकूळप्रतिकूळ परीषहोने तथा उपसर्गोने सहेवा ए मुनिनुं कर्तव्य ज छे एटले आर्तध्यानने वश थईने एवु भाषण करवु उचित नथी कह्यु छे के-"आर्तध्यानी दीर्घ संसारमां परिभ्रमण करे छे" (५१)

॥ छाया ॥

तथैव मेघं च नभो च मानवं न देवदेव इति गिरं वदेत्।
समूच्छितः उन्नतो वा पयोदः वदेद् वा वृष्टः बलाहक इति ॥५२॥

॥ टीका ॥

'तहेवमेहं' इत्यादि।

तथैव=तद्वदेव मेघं=जलधरं वा=अथवा नभः=गगनं वा=अथवा मानवं=माननीयमनुष्यं प्रति देवदेव इति=इन्द्र इति गिरं=भाषां न वदेत्। कथं तर्हि वदेत्? इति प्रश्ने पूर्वं मेघं प्रति भाषणविधिमाह–पयोदः=अयं मेघः संमूर्छितः=विस्रसापुद्गलपरिणतः समुत्पन्न इत्यर्थः, वा=अथवा उन्नतः=उच्छ्रितः गगनतलमारूढ इत्यर्थः वा=अथवा बलाहको=मेघः वृष्टः=वर्षणं कृतवान् इति वदेत्। मेघं प्रति इन्द्रशब्दं न प्रयुञ्जीतेति भावः ॥५२॥

बादल आदि के विषय में बोलने न बोलने की विधि बताते है—'तहेवमेह' इत्यादि।

इसी प्रकार, मेघ, आकाश तथा माननीय मनुष्य को देवदेव=इन्द्र न कहे। तब किस प्रकार कहे? ऐसी आशंका होने पर पहले बादल के विषय में बोलने की विधि कहते है—यह बादल पुद्गलों का स्वाभाविक परिणमन है, यह मेघ बहुत ऊँचा अर्थात् आकाश में आरूढ है, या मेघ बरसा है इस प्रकार कहे ॥५२॥

વાદળા આદિના વિષયમા બોલવા ન બોલવાની વિધિ બતાવે છે-तहेवमेह ઇત્યાદિ

એજ પ્રમાણે મેઘ, આકાશ તથા માનનીય મનુષ્યને દેવદેવ=ઇન્દ્ર ન કહે તો શું કહે? એવી આ શંકા થતા પહેલા વાદળાના વિષયમા બોલવાની વિધિ કહે છે–આ વાદળા પુદ્ગલોનું સ્વાભાવિક પરિણમન છે, આ મેઘ બહુજ ઉંચો અર્થાત આકાશમા આરૂ 'છે, યા મેઘ વરસે છે,' એમ કહે (૫૨)

मेघप्रति भाषणविधिं प्रदर्श्य साम्प्रत गगनादिकं प्रति भाषणविधिमाह—'अतलिक्खत्ति' इत्यादि।

(मूलम्)

२ १ ५ ३ ४
अतलिक्खत्ति ण बूया गुज्झाणुचरियत्ति य।
६ ७ ८ ९ १०
रिद्धिमत नर दिस्स रिद्धिमंतत्ति आलवे ॥५३॥

(छाया)

अन्तरिक्षमिति तद्ब्रूयात् गुह्यकानुचरितमिति च।
ऋद्धिमन्तं नर दृष्ट्वा ऋद्धिमानित्यालपेत् ॥५३॥

॥ टीका ॥

'अतलिक्खत्ति' इत्यादि।

तत्=नभः प्रति अन्तरिक्षमिति, गुह्यकानुचरित=गुह्यकशब्दः सकलसुरोपलक्षकः असौ सुरसञ्चरणसरणिरिति च ब्रूयात्=वदेत्, ऋद्धिमन्तं नर दृष्ट्वा=सम्पत्तिशालिनं मनुष्य विलोक्य ऋद्धिमानित्यालपेत्=भाषेत। एव भाषणे मृषाभाषणदोषो न जायत इति भावः ॥५३॥

मेघ के प्रति भाषण करने की विधि बताकर अब आकाश आदि के विषय म भाषण करने की विधि कहते हैं—'अतलिक्खत्ति' इत्यादि।

आकाश को अन्तरिक्ष तथा देवों के गमन करने का मार्ग कहे अर्थात् यह देवो के गमन करने का मार्ग है ऐसा कहे। सम्पत्तिशाली मनुष्य को देखकर ऐसा कहे कि यह सम्पत्तिवाला है। ऐसा भाषण करने से मृषावाद दोष नहीं लगता है ॥५३॥

મેઘ વિષે ભાષણ કરવાની વિધિ બતાવીને હવે આકાશ આદિના વિષયમા ભાષણ કરવાની વિધિ કહે છે–अतलिक्खत्ति० ઇત્યાદિ

આકાશને અતરીક્ષ તથા દેવોને ગમન કરવાનો માર્ગ કહે અર્થાત આ દેવોને ગમન કરવાનો માર્ગ છે એમ કહે સપત્તિશાલી મનુષ્યને જોઇને એમ કહે કે આ સપત્તિવાળો છે એવુ ભાષણ કરવાથી મૃષાવાદ દોષ લાગતો નથી (૫૩)

॥ मूलम् ॥

तहेव सावज्जणुमोयणी गिरा, ओहारिणी जायपरोवघायणी ।

से कोहलोहभयहासमाणवो, न हासमाणो वि गिरं वइज्जा ॥५४॥

॥ छाया ॥

तथैव सावद्यानुमोदिनी गीः अवधारिणी या च परोपघातिनी ।
ता क्रोधात् लोभात् भयात् हासात् मानवोः न हसन्नपि गिरं वदेत् ॥५४॥

॥ टीका ॥

' तहेव ' इत्यादि ।

तथैव या गीः सावद्यानुमोदिनी=हिंसादिकलुषकर्मानुमोदिनी यथा- 'सुष्ठु हतो मृगादिरनेने' इत्यादिका, अवधारिणी=संशयितार्थे निश्चयरूपेण प्रति पादिका 'एवमेवैत'-दित्यादिका, या च परोपघातिनी=परोपघातविधायिनी, यथा-'पशुहवने सिद्धिर्भवति,-मांसमदिरादिनिषेवणे वा दोषो न भवती' त्यादिका,

---

'तहेव' इत्यादि । जो भाषा सावद्य अर्थात् हिंसा आदि पाप कर्मों का अनुमोदन करने वाली हो, जैसे-'इसने मृगको अच्छा मारा है' इत्यादि, संदिग्ध पदार्थ में 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार की निश्चयकारी, तथा जो भाषा पर की हिंसा करने वाली हो, जैसे कि-'पशुका हवन करने से सिद्धि मिलती है, मांसमदिरा के सेवन करने में दोष नहीं है' इत्यादि भाषा साधु, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, हास्य तथा प्रमाद आदि से न बोले और हँसता हुआ भाषण न करे ॥

तहेव० ઇત્યાદિ જે ભાષા સાવદ્ય અર્થાત્ હિંસા આદિ પાપકર્મોનું અનુમોદન કરનારી હોય, જેમકે-'એણે મૃગને ઠીક માર્યો છે' ઇત્યાદિ, સંદિગ્ધ પદાર્થમાં 'એ આમ જ છે' એ પ્રકારની નિશ્ચયકારી, તથા જે ભાષા પરની હિંસા કરનારી હોય, જેમકે 'પશુનો હવન કરવાથી સિદ્ધિ મળે છે, માંસ મદિરાનું સેવન કરવામાં દોષ નથી' ઇત્યાદિ ભાષા સાધુ ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, ભય, હાસ્ય તથા પ્રમાદ આદિથી ન બોલે અને હસીને ભાષણ ન કરે

से=ता=तथाभूता गिरं मानवः=मनुते जिनाज्ञामिति मानवः, साधुः क्रोधात् उपलक्षणतया मानादपि, लोभात्, उपलक्षणत्वेन मायातोऽपि, भयात्, हासात्, उपलक्षणतया प्रमादादेरपि तथा हसन्नपि न वदेत्। सूत्रे क्रोधादीनि पदानि लुप्तपञ्चमीविभक्तिकानि। 'सावज्जणुमोयणी' इति पदेन सावद्यकर्मप्रशंसया तज्जनितपापभागित्वं सूचितम्। 'ओहारिणी' इत्यनेन शङ्कितार्थे निश्चयरूपेण भाषणे मृषावादादिदोषप्रसङ्गः, तद्भाषणसिध्द्यर्थं चाऽऽर्त्तध्यानादिदोषः, तद्भाषणसाधनाऽनन्तरं मानादिदोषावेशश्चेति व्यक्तीकृतम्। 'परोवघाइणी' इति पदेन परोपघातकभाषाभाषणे महाव्रताङ्गीकारकालिक्याः 'इतः परं कथञ्चिदपि जीवोपहननवचनं न वदिष्यामी'-ति प्रतिज्ञाया अवगीरणे द्वितीयमहाव्रतभङ्गः, जिनाज्ञासमुल्लङ्घनं च व्यक्तीभवति, क्रोधादिहेतुप्रदर्शनेन कषायावेशिताऽन्त:-

'सावज्जणुमोयणी' पदसे यह सूचित किया है कि सावद्य कार्योंकी प्रशंसा करने से सावद्य कर्म जनित पाप का भागी होना पडता है। 'ओहारिणी' पदसे यह प्रगट किया है कि संदेहयुक्त विषय में निश्चयकारी भाषा बोलने से मृषावाद आदि दोषों का प्रसंग होता है। और मृषावाद को सिद्ध करने के लिए आर्त्तध्यान आदि दोषों का सेवन करना पडता है। मृषाभाषण के किसी प्रकार सिद्ध हो जाने पर अहङ्कारका आवेश आदि दोष उत्पन्न होता है, यह प्रगट किया है। 'परोवघाइणी' पदसे यह प्रगट किया है कि महाव्रतों का अंगीकार करते समय ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि-'संयम ग्रहण करने के पश्चात् जीवघात करने वाली भाषा नहीं बोलूँगा' इस प्रतिज्ञा के भंग होनेसे द्वितीय महाव्रत का भंग और जिनाज्ञा का उल्लंघन होता है। क्रोध आदि कारण बतानेसे यह द्योतित होता है कि

सावज्जणुमोयणी પદથી એજ સૂચિત કર્યું છે કે સાવદ્ય કર્મોની પ્રશંસા કરવાથી સાવદ્ય કર્મજનિત પાપના ભાગી થવું પડે છે ओहारिणी શબ્દથી પ્રકટ કર્યું છે કે-સંદેહયુક્ત વિષયમાં નિશ્ચયકારી ભાષા બોલવાથી મૃષાવાદ આદિ દોષોનો પ્રસંગ આવે છે, અને મૃષાવાદને સિદ્ધ કરવાને માટે આર્તધ્યાન આદિ દોષોનું સેવન કરવું પડે છે મૃષાભાષણ કોઈ પ્રકારે સિદ્ધ થઈ જતાં અહંકારનો આવેશ આદિ દોષો ઉત્પન્ન થાય છે, એમ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે परोवघाइणी પદથી એજ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે-મહાવ્રતોનો અંગીકાર કરતી વખતે એવી પ્રતિજ્ઞા કરી હતી કે-'સંયમ ગ્રહણ કર્યા પછી જીવઘાત કરનારી ભાષા બોલીશ નહિ' એ પ્રતિજ્ઞાનો ભંગ થવાથી દ્વિતીય મહાવ્રતનો ભંગ અને જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન

करणस्य वाच्यावाच्यभाषाविवेकविधुरता सूच्यते, तेन कषायविजयतत्परता विधेयेत्यावेदितम् । 'हास' इति पदेन हास्यवशेनाऽपि सावद्यानुमोदिकादिभाषा भाषणेन कदाचित्तत्र प्रवृत्तौ सत्या महाऽनर्थसंभवः स्वपरिणाममालिन्य चेति सूच्यते । 'हासमाणो' इति पदेन हसता भाषणे वाक्शुद्धिर्न जायते इति द्योतितम् ॥५४॥

(मूलम्)

२ ३ १ ६ ५ ४ ८ ७

सुवक्कसुद्धि समुपेहिया मुणी, गिरं च दुट्ठं परिवज्जए सया ।

९ १० ११ १२ १३ १४ १६ १५

मियं अदुट्ठं अणुवीइ भासए, सयाण मज्झे लहई पसंसणं ॥५५॥

॥ छाया ॥

सुवाक्यशुद्धिं समुत्प्रेक्ष्य मुनिः गिरं च दुष्टां परिवर्जयेत् सदा ।
मिताम् अदुष्टाम् अनुविचिन्त्य भाषकः सतां मध्ये लभते प्रशंसनम् ॥५५॥

कषायपुक्त अन्त करणवाले मनुष्य को यह विवेक नहीं रहता कि क्या बोलने योग्य है और क्या बोलने योग्य नहीं है, अतएव कषायों को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। 'हास' पदसे यह प्रगट किया है कि यदि हँसी में भी सावद्यानुमोदिनी आदि भाषा का भाषण किया जाय तो महान् अनर्थ होना संभव है, और स्वकीय परिणामों में मलिनता आवेगी। 'हासमाणो' पदसे यह द्योतित किया है कि हँसते बोलनेसे वाक्यशुद्धि नहीं होती ॥५४॥

થાય છે ક્રોધાદિ કારણ બતાવવાથી એમ સૂચિત થાય છે કે કષાય યુક્ત અંતઃકરણવાળા મનુષ્યને એવો વિવેક રહેતો નથી કે શું બોલવા યોગ્ય છે અને શું બોલવા યોગ્ય નથી, એટલે કષાયોને જીતવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઇએ હાસ શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે જો હસવામાં (હાંસીમાં) પણ સાવદ્યાનુમોદિની આદિ ભાષાનું ભાષણ કરવામાં આવે તો મહાન્ અનર્થ થવાનો સંભવ છે, અને સ્વકીય પરિણામોમાં મલિનતા આવશે હાસમાણો શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે હસતા-હસતા બોલવાથી વાક્ય શુદ્ધિ થતી નથી (૫૪)

॥ टीका ॥

'सुवक्क' इत्यादि।

मुनिः=साधुः सुवाक्यशुद्धि=शोभना वाक्यशुद्धिः सुवाक्यशुद्धिः=सम्यक्प्रकारेण वाक्यसंशोधनं सर्वथा भाषणदूषणराहित्यकरणमित्यर्थः, समुत्प्रेक्ष्य=सम्यगालोच्य दुष्टा=मृषावादादिदोषयुक्ता गिर=भाषा सदा परिवर्जयेत्=कदाऽपि न वदेदित्यर्थः, मिता=भाषादोष-संसर्ग-भयेनाऽनावश्यकवागाडम्बररहितामित्यर्थः, अदुष्टा=निरवद्याम् अनुविचिन्त्य=पर्यालोच्य भाषकश्च=वक्ता तु सतां=मुनीनां मध्ये प्रशंसन=सत्कीर्त्तिं लभते=प्राप्नोति। मितत्व-निरवद्यत्व गुणविशिष्टाऽपि भाषा भाषणकाले पुनः पुनरालोचनीयेति भाव ॥ 'मुणी' पदेन प्रवचन-श्रद्धालुत्वं सूचितम्। 'मिय' इत्यनेन बहुभाषणतो वागयतनात्वमावेदितम्। 'अदुट्ठं' इति पदेन दोषरहितभाषणमेव स्वपरकल्याणकरमिति स्पष्टीकृतम् ॥५५॥

'सुवक्क' इत्यादि। साधु सुवाक्यशुद्धि का विचार करके मृषावाद आदि दोषों से दुष्ट भाषा कदाऽपि न बोले। दोषों के भय से अनावश्यक वागाडम्बर रहित—परिमित और निरवद्य भाषा बोलने वाला साधु, मुनियों मे प्रशंसा पाता है। तात्पर्य यह है कि परिमित और निरवद्य भाषा भी बोलते समय बारबार विचार लेनी चाहिए॥

'मुणी' पदसे प्रवचन में श्रद्धा, 'मिय' पदसे बहुत भाषण करने के कारण भाषा की अयतना, और 'अदुट्ठं' पदसे निर्दोष भाषण ही स्व पर कल्याणकारी है, ऐसा सूचित किया है ॥५५॥

सुवक्क० इत्यादि साधु सुवाक्यशुद्धिनो विचार करीने मृषावाद आदि दोषोथी दुष्ट भाषा कदापि बोले नहि दोषोना भयथी अनावश्यक वागाडम्बरथी रहित—परिमित अने निरवद्य भाषा बोलनार साधु मुनिओमां प्रशंसा पामे छे तात्पर्य ए छे के परिमित अने निरवद्य भाषा पण बोलती वखते वारंवार विचारी लेवी जोइए

मुणी शब्दथी प्रवचननी श्रद्धाळुता, मिय शब्दथी बहु भाषण करवाने कारणे थती भाषाने अयतना, अने अदुट्ठं शब्दथी निर्दोष भाषण ज स्व-पर कल्याणकारी छे, एम सूचित कर्युं छे (५५)

॥ मूलम् ॥

६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३-१४ १६- १५

भासाइ मेसे य गुणे य जाणिया, तीसे य दुट्ठे परिवज्जए सया।

१ २ ३ ४ १७ ५ १९ १८

छसु संजए सामणिए सयाजए, वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं ॥५६॥

(छाया)

भाषाया दोषाश्च गुणाश्च ज्ञात्वा तस्याश्च दुष्टा परिवर्जयत्सदा।
षट्सु संयतः श्रामण्ये सदायतः वदेद्बुद्धः हितामानुलोमिकाम् ॥५६॥

॥ टीका ॥

'भासाइ' इत्यादि।

षट्सु=षड्जीवनिकायेषु संयतः=यतनावान तद्विराधनापरिवर्जनसावधान इत्यर्थः; श्रामण्ये=साधुधर्मे सदायतः=सर्वदोद्यतः तद्रक्षणपरायण इत्यर्थः; बुद्धः= विदितवेदितव्यः साधुः भाषायाः=चतुर्धा कथितायाः सत्यासत्यमिश्रव्यवहार लक्षणाया' दोषान्=सावद्यकर्कशशङ्कितत्वादीन् गुणाश्च=हितमितप्रियत्वादीन् ज्ञात्वा तस्या.=भाषायाश्च दुष्टानि=दोषान 'भावकान्तनिर्देश', प्राकृतत्वाच्च लिङ्ग-व्यत्ययः' सदा परिवर्जयेत्। हिता=सकलप्राणिगणोपकारिकाम्, आनु-लोमिकाम्=आनुक्रमिका पूर्वापरविरोधरहिता संगता वा भाषा वदेत्। 'छसुसंजए'

'भासाइ' इत्यादि। षट्जीवनिकाय का यतना में सावधान, सदा श्रामण्य (चारित्र) में तत्पर, प्रयोजन भूत पदार्थों का ज्ञाता साधु चारों प्रकार की भाषा के सावद्यता कर्कशता आदि दोषों को, तथा हितमित प्रियता आदि गुणों को जानकर भाषा के दोषों का सदा-परित्याग करे। प्राणियों का कल्याण करने वाली तथा पूर्वापर विरोध रहित संगत भाषा बोले।

भासाइ ઇत्याદि षड्જીવનિકાયની યતનામાં સાવધાન, સદા શ્રામણ્ય (ચારિત્ર)માં તત્પર, પ્રયોજન ભૂત પદાર્થોનો જ્ઞાતા સાધુ ચારે પ્રકારની ભાષાની સાવદ્યતા કર્કશતા આદિ દોષોને, તથા હિત-મિત-પ્રિયતા આદિ ગુણોને જાણીને ભાષાના દોષોનો સદા પરિત્યાગ કરે, પ્રાણીઓનું કલ્યાણ કરનારી તથા પૂર્વાપર વિરોધથી રહિત સંગત ભાષા બોલે

इति पदेन त्रसस्थावरजीवरक्षक एव भाषासमितिं सम्यगाराधयितुं प्रभवतीति वनितम्। 'सामणिए सयाजए' ति पदेन 'निरन्तरसाधुधर्माराधक एव-हितानुलोमिकभाषाभाषणक्षमो भवति नेतरः' इति व्यक्तीभवति। 'हियं' इति पदेन ऐहिकपारलौकिकसुखकरत्व भाषाया' सूचितम्। 'आणुलोमिय' इतिपदेन श्रवणसुखजनकत्व भाषाया प्रतीयत इति ॥५६॥

अध्ययनार्थमुपसंहरन्नाह—'परिक्खभासी' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ । २ ३ ४

परिक्खभासी सुसमाहिइंदिए चउक्कसायावगए अणिस्सिए।

५ ८ ७ ६ १२ १२ ९ १० ११

स निद्धुणे धुन्नमलं पुरेकड आराहए लोगमिण तहा पर ॥५७॥

॥ छाया ॥

परीक्ष्यभापी सुसमाहितेन्द्रियः चतुष्कपायापगतः अनिश्रितः।
स निर्धूय धान्यमलं पुराकृतम् आराधयति लोकमिमं तथा परम् ॥
इति ब्रवीमि ॥५७॥

'छसुसजए' पद से यह प्रगट किया है कि त्रस-स्थावर जीवों का रक्षा करने वाला ही भाषासमिति का सम्यक् प्रकार से पालन कर सकता है। 'सामणिए जए' पदसे यह सूचित किया है कि निरन्तर धर्म की आराधना करने वाला ही साधु हितकारी भाषा बोल सकता है अन्य नहीं। 'हिय' पदसे भाषा का इह परलोक सम्बन्धी सुखकरत्व सूचित किया है। 'आणुलोमिय' पदसे यह प्रतीत होता है कि भाषा श्रवणसुखद होना चाहिए ॥५६॥

छसुसजए પદથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે ત્રસ-સ્થાવર જીવોની રક્ષા કરનારોજ ભાષાસમિતિનું સમ્યક્ પ્રકારે પાલન કરી શકે છે સામણિए जए પદથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે નિરંતર ધર્મની આરાધના કરનારો સાધુ જ હિતકારી ભાષા બોલી શકે છે—બીજો નહિ હિય શબ્દથી ભાષાનું ઇહ-પરલોક સંબંધી સુખકરત્વ સૂચિત કર્યું છે આણુલોમિય શબ્દથી એમ પ્રતીત થાય છે કે-ભાષા શ્રવણ-સુખદ હોવી જોઇએ, (૫૬)

(टीका)

'परिक्ख' इत्यादि।

परीक्ष्यभाषी = गुणदोषपर्यालोचनपूर्वकभाषणशीलः, सुसमाहितेन्द्रियः= वशीकृतेन्द्रियः, चतुष्कषायापगतः = चतुर्विधकषायससर्गरहितः, अनिश्रित = द्रव्यभावप्रतिबन्धवर्जितः सः=भाषासमित्याराधकः साधुः पुराकृत=पूर्वभवोपार्जितं धाव्यमल=कर्ममल 'निद्धुणे' इत्यव्ययं निर्द्धूय=अपाकृत्य इम तथा पर लोक=मनुष्यलोक निर्वाणलोक च आराधयति=साधयति पारम्पर्येण वाऽनन्तर्येण चेति भावः ॥

'परिक्खभासी' इतिपदं पर्यालोच्य भाषकस्यैव देशतः सर्वतश्च चारित्र समाराधनयोग्यता सूचयति। 'सुसमाहिइदिए' इत्यनेन चञ्चलेन्द्रियाणां विशुद्ध भाषाभाषणाऽक्षमत्वं प्रकटीकृतम्।

इस अध्ययन का उपसहार करते हुए कहते हैं—'परिक्खभासी' इत्यादि। गुण दोषों का विचार करके बोलने वाला, इन्द्रियों को वशमें करने वाला, चारों कषायों का त्याग करने वाला, द्रव्य—भावसम्बन्धी प्रतिबन्धसे रहित, भाषासमिति का आराधक साधु पूर्व भव में उपार्जित कर्म—मलको दूर कर के मनुष्य-भव तथा मोक्ष की साधना करता है। 'परिक्खभासी' पद यह सूचित करता है कि विचार करके बोलने वाला ही एकदेश तथा सर्वदेश से चारित्र की आराधना कर सकता है, अर्थात् चारित्र का पूर्ण आराधक हो सकता है। 'सुसमाहिए' पदसे यह सूचित किया है कि जिस की इन्द्रियाँ चपल होती हैं वह विशुद्ध भाषा का भाषण नहीं कर सकता। 'चउक्कसायावगए' पद से यह प्रगट होता

આ અધ્યયનનો ઉપસંહાર કરતા કહે છે परिक्खभासी० ઇત્યાદિ ગુણ દોષોનો વિચાર કરીને બોલનાર, ઇંદ્રિયોને વશ કરનાર, ચારે કષાયોનો ત્યાગ કરનાર, દ્રવ્ય-ભાવ સંબંધી પ્રતિબંધથી રહિત, ભાષાસમિતિનો આરાધક સાધુ પૂર્વભવમાં ઉપાર્જિત કર્મ—મળને દૂર કરીને મનુષ્યભવ તથા મોક્ષની સાધના કરે છે,—परिक्खभासी પદ એમ સૂચિત કરે છે કે વિચાર કરીને બોલનાર જ એક દેશે તથા સર્વ દેશે ચારિત્રની આરાધના કરી શકે છે, અર્થાત ચારિત્રનો પૂર્ણ આરાધક થઈ શકે છે सुसमाहिए પદથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે જેની ઇંદ્રિયો ચપળ હોય છે તે વિશુદ્ધ ભાષાનું ભાષણ કરી શકતો નથી चउक्कसायावगए શબ્દથી

'चउक्कसायावगए' इति पदेन कषायमलरहितानामेव निरवद्या भाषा-भवतीत्यावेदितम्। 'अणिस्सिए' इति पदं बाह्याभ्यन्तरप्रतिबन्धविनिर्मुक्तस्यैव विशुद्धभाषया लोकद्वयाराधनयोग्यतामावेदयति। 'इति ब्रवीमि' इति पूर्ववत् ॥५७॥

इति श्री विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललितक-लापाऽऽलापकप्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–शाहू-छत्रपतिकोल्हापुर राजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित कोल्हापुर-राजगुरु बालब्रह्मचारि जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री-घासीलाल–व्रतिविरचिताया श्रीदशवैकालिकसूत्र-स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्याया व्याख्याया सप्तम सुवाक्यशुद्ध्याख्यमध्ययन समाप्तम् ॥७॥

है कि कषाय रहित श्रमण ही निरवद्यभाषाभाषी हो सकता है। 'अणिस्सिए' पद यह सूचित करता है कि बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त मुनि ही विशुद्ध भाषा द्वारा उभय लोक की आराधना करने की योग्यतावान् होता है ॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते है।—हे जम्बू! भगवान् महावीरने जैसा कहा है वैसा ही मैं तुमसे कहता हूँ ॥५७॥

श्री दशवैकालिक सूत्र की आचारमणिमजूषा नामकी व्याख्या के हिन्दी भाषानुवाद का सातवाँ अध्ययन समाप्त हुआ ॥७॥

॥ श्रीरस्तु ॥

એમ પ્રકટ થાય છે કે કષાયરહિત શ્રમણ જ નિરવદ્યભાષાભાષી હોઇ શકે છે અણિસ્સિએ પદ એમ સૂચિત કરે છે કે બાહ્ય અને આભ્યતર પરિગ્રહથી મુક્ત મુનિજ વિશુદ્ધ ભાષા દ્વારા ઉભયલોકની આરાધના કરવાની યોગ્યતાવાળો બને છે

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે કે જમ્બૂ! ભગવાન્ મહાવીરે જેવુ કહ્યુ છે તેવુજ મે તમને કહ્યુ છે (૫૭)

ઇતિ સાતમુ અધ્યયન સમાપ્ત

॥ अथाष्टमाध्ययनम् ॥

वाक्यशुद्ध्याख्यसप्तमाध्ययनतो भाषणगुणदोषान् विज्ञाय निरवद्यभाषा भाषणीयेत्युपदिष्टम्। निरवद्य भाषा चाचारपरिपालनानवहितस्य न भवतीत्यत आचारप्रणिधिनामकमष्टमाध्ययन मस्तूयते—

'आयारप्पणिहि' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ४ ३
आयारप्पणिहिं लद्धुं, जहाकायव्व भिक्खुणा।
५ ६ ८ ७ १० ९
तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥१॥

॥ छाया ॥

आचारप्रणिधिं लब्ध्वा यथाकर्तव्यं भिक्षुणा।
त भवद्भ्यः उदाहरिष्यामि, आनुपूर्व्या शृणुत मे ॥१॥

अथाष्टमाध्ययनम्

वाक्य शुद्धिनामक सातवें अध्ययन में "भाषा के गुण दोष जानकर निरवद्य भाषा बोलनी चाहिए," ऐसा उपदेश दिया है। किंतु जो आचार (संयम)का पालन करने में उपयाग नहीं रखता, उसकी भाषा शुद्धि नहीं होती, इसलिए, अब आचार प्रणिधि नामक आठवें अध्ययनका प्रतिपादन करते हैं–"आयारपणिहिं" इत्यादि।

અધ્યયન આઠમું.

વાક્યશુદ્ધિ નામક સાતમા અધ્યયનમા "ભાષાના ગુણદોષ જાણીને નિરવદ્ય ભાષા બોલવી જોઇએ" એવો ઉપદેશ આપ્યો છે કિંતુ જે આચાર (સંયમ)નું પાલન કરવામા ઉપયોગ રાખતો નથી, એની ભાષા શુદ્ધિ બની નથી, તેથી કરીને હવે આચાર પ્રણિધિ નામક આઠમા અધ્યયનનું પ્રતિપાદન કરે છે आचारपणिहिं० ઇત્યાદિ

॥ टीका ॥

'आयार' इत्यादि।

आचारप्रणिधिः=आचारे प्रवचनोक्तमर्यादानतिक्रमणपूर्वकाचरणलक्षणे प्रणिधिः=प्रणिधानं सावधानतेत्यर्थः इत्याचारप्रणिधिस्तम्, यद्वा—प्रकृष्टो निधिः प्रणिधिः, आचारः प्रणिधिरिवेत्याचारप्रणिधिस्त तथोक्तम् उत्कृष्टनिधिसदृशमाचारमित्यर्थः, लब्ध्वा=अधिगत्य भिक्षुणा=साधुना यथा=येन विधिना विहितानुष्ठान कर्तव्य भवतीति शेषः, त=लोकत्रयप्रतीत तीर्थङ्करगणधरादिभि निरूपितमाचारप्रणिधिमित्यर्थः, अथवा त विधिं=प्रकारमित्यर्थः, भवद्भ्यः आनुपूर्व्या=क्रमेण उदाहरिष्यामि=वक्ष्यामि मे=मम सकाशाद् यूय शृणुत=आकर्णयत। "आयारप्पणिहिं"—इत्यनेन यथा निधिर्दारिद्र्य विद्रावणेन द्रुत दुःखानि दूरीकृत्य

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं— हे जम्बू! शास्त्रमें कही हुई मर्यादा का नाम आचार है, उसमें सावधान रहना आचारप्रणिधि है; अथवा—उत्तमनिधि निधान के समान आचारप्रणिधि को जानकर भिक्षु को जिसप्रकार आचरण करना चाहिए, उस लोकसिद्ध तथा तीर्थंकर भगवान् और गणधरों द्वारा प्ररूपित आचारप्रणिधि या उसकी विधि को तुम्हारे सामने क्रमश कहूँगा, तुम मुझ से सुनो।

सूत्रमें "आयारप्पणिहिं" इस पदसे सूचित किया गया है कि जैसे निधि दरिद्रता को दूर करके दु ख का नाश कर देती है, और सपत्ति की प्राप्ति करा कर मनुष्यों को विभूषित करती एव सुखी बनाती है, उसी प्रकार आचार, कर्मरूपी दरिद्रता को दूर करके

સુધર્માસ્વામી જમ્બૂને કહે છે કે—હે જમ્બૂ! શાસ્ત્રમાં કહેલી મર્યાદાનું નામ આચાર છે, એમાં સાવધાન રહેવું એ આચાર પ્રણિધિ છે, અથવા ઉત્તમ નિધિ નિધાનની સમાન આચાર પ્રણિધિને જાણીને ભિક્ષુએ જે પ્રકારે આચરણ કરવું જોઈએ, તે લોક સિદ્ધ તથા તીર્થંકર ભગવાન અને ગણધરોએ પ્રરૂપેલી આચાર પ્રણિધિ યા એની વિધિ તમારી સામે ક્રમશઃ કહીશ તે મારી પાસેથી સાંભળો

સુત્રમાં આયારપ્પણિહિં એ પદથી સૂચિત કર્યું છે કે જેમ નિધિ દરિદ્રતાને દૂર કરીને દુઃખોનો નાશ કરી નાખે છે, અને સંપત્તિની પ્રાપ્તિ કરાવીને મનુષ્યોને વિભૂષિત કરે છે, તથા સુખી બનાવે છે તેમ આચાર કર્મરૂપી દરિદ્રતાને દૂર કરીને

संपदा समुदयेन जनान् विभूषयन् सुखमनुभावयति, तथैवाचारः कर्मदारिद्र्यस्य विधाय साधु सकलदुःखसमन्याद् विमोच्यानन्तज्ञानादिचतुष्टयसंपदा विभूषयन् अक्षयमोक्षसुखं साक्षात्कारयतीति सूचितम्, 'प्रणिधि'मित्यत्र 'प्र' शब्दोपादानेना क्षयसुखदायित्वमेव निध्यन्तरापेक्षया प्रकृष्टत्वमिति सूच्यते ॥१॥

तं प्रकारमाह–'पुढवि' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ ३ २
पुढविदगअगणिमारुअ, तणरुक्खा सबीयगा।
५ ४ ६ ८ ७ ९ १० ११
तसा य पाणा जीवत्ति, इइ वुत्तं महेसिणा ॥२॥

॥ छाया ॥

पृथिव्युदकाग्निमारुताः तृणवृक्षाः सबीजकाः।
त्रसाश्च प्राणिनो जीवा इति, इति उक्तं महर्षिणा ॥२॥

साधुको सकल दुःखों से मुक्त कर देता है, और अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तसुख अनन्तवीर्य रूपी संपत्तिसे शोभित करके अक्षय मोक्ष को प्राप्त कराता है। 'प्रणिधि' पदमें "प्र" उपसर्ग जोडने से यह प्रगट होता है कि–अन्य पौद्गलिक निधियों से तो अल्पकालके लिए ही सुख की प्राप्ति होती है, परंतु इस आचाररूपी निधि से ऐसा अनुपम सुख मिलता है कि जिसका कभी नाश नहीं होता ॥१॥

સાધુને સકળ દુઃખોથી મુક્ત કરે છે, અને અનંતજ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત સુખ, અનંત વીર્ય રૂપી સંપત્તિથી શોભિત કરીને અક્ષય મોક્ષને પ્રાપ્ત કરાવે છે પ્રણિધિ શબ્દમાં પ્ર ઉપસર્ગ જોડવાથી એમ પ્રકટ થાય છે કે–અન્ય પૌદ્ગલિક નિધિઓથી તો અલ્પકાળને માટેજ સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે, પરંતુ આ આચારરૂપી નિધિથી એવું અનુપમ સુખ મળે છે કે જેનો ક્યારે પણ નાશ થતો નથી (૧)

१—दुःखजनकत्वधर्मसाम्यादारिद्र्यमारोप्य कर्म। उक्तधर्मपुरस्कारेणाभेदारोपे तु रूपकत्वम्।

॥ टीका ॥

पृथिव्युदकाग्निमारुताः=पृथिवीजलतेजोवायवः, तथा सबीजकाः बीज सहिताः, तृणवृक्षाः=तृणानि वृक्षाः बीजानि चेति त्रिविधा वनस्पतयः, एवं च पृथिवीकायोऽप्कायोऽग्निकायो वायुकायो वनस्पतिकायश्चेति पञ्चैकेन्द्रियप्राणिन इत्यर्थः, च=अपि त्रसाः प्राणिनः द्वीन्द्रियादयः इति=एते सर्वे जीवाः=जीवपद-वाच्याः, सन्तीति शेषः, इति महर्षिणा=तीर्थकरादिना उक्त=कथितम् ॥२॥

॥ मूलम् ॥

५ ६ ७ ८ ४
तेसिं अच्छणजोएण, निच्चं होयव्वयं सिया।
१ २ ३ ९ ११ १०
मणसा काय वक्केण, एवं हवइ संजए ॥३॥

॥ छाया ॥

तेषाम् अक्षणयोगेन, नित्यं भवितव्य स्यात्।
मनसा कायेन वाक्येन, एवं भवति संयतः ॥३॥

(टीका)

'तेसिं' इत्यादि।

भिक्षुणा मनसा=अन्तःकरणेन कायेन=शरीरेण वाक्येन=वाचा स्यात्=

अब आचार प्रणिधि की विधि का प्रतिपादन करते हैं– 'पुढवी' इत्यादि।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तथा बीज सहित वनस्पति, ये पाच एकेंद्रिय तथा द्वींद्रिय आदि त्रस प्राणी, सब 'जीव' शब्द के वाच्य हैं अर्थात् ये सब जीव हैं। ऐसा तीर्थंकर आदि महर्षियों ने कहा है ॥२॥

'तेसिं' इत्यादि। जब भिक्षु मन वचन और कायसे अर्थात् इन तीन योगों से

પુઢવિ૰ ઇત્યાદિ—હવે આચાર પ્રણિધિની વિધિનું પ્રતિપાદન કરે છે પૃથ્વી, જળ, અગ્નિ, વાયુ તથા બીજ સહિત વનસ્પતિ એ પાંચ એકેન્દ્રિય તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ પ્રાણી, એ સર્વ જીવ શબ્દના વાચ્ય છે, અર્થાત એ બધા જીવ છે, એમ તીર્થંકર આદિ મહર્ષિઓએ કહ્યું છે (૨)

તેસિં૰ ઇત્યાદિ જ્યારે ભિક્ષુ મનવચન અને કાયાથી અર્થાત એ ત્રણ

केनापि प्रकारेण, एकेनापि केनचित् प्रकारेण हिंसाकरणे सर्वथा हिंसावर्जनं न सिध्यति, यदि केनापि प्रकारेण न हिंस्यात्, तदा सर्वथा हिंसात्यागी भवेत्, तथा च स्यात्=सर्वथेत्यर्थः। पृथिव्यादीनामक्षणयोगेन=हिंसनकर्मवर्जितेन नित्य= सर्वदा भवितव्यं=वर्तितव्यम्। एवं हिंसानिरासशील साधुः संयतः=संयत- पदव्यपदेश्यो भवतीति सूत्रार्थः ॥३॥

पृथिवीकाययतनामाह— 'पुढविं' इत्यादि।

(मूलम्)

३ ४ ५ ६ ८ १० ११ १२

पुढविं भित्तिं सिलं लेलुं, नेव भिंदे न संलिहे।

७ १ २ ९

तिविहेण करणजोएण, संजए सुसमाहिए ॥४॥

॥ छाया ॥

पृथिवीं भित्तिं शिलां लेष्टुं, नैव भिन्द्यात् न संलिखेत्।
त्रिविधेन करणयोगेन, संयतः सुसमाहितः ॥४॥

॥ टीका ॥

'पुढविं' इत्यादि—

सुसमाहितः=चारित्राराधनतत्परः संयतः=साधुः पृथिवीं=भूमिं, भित्तिं=

किसी भी योग से हिंसा नहीं करता, तब ही समस्त हिंसा का परित्यागी हो सकता है। अतः पृथिवीकाय आदि की हिंसा से सदा सर्वदा दूर रहना चाहिए। इस प्रकार हिंसा का त्याग करने वाला साधु संयत कहलाता है ॥३॥

पृथिवीकाय की यतना कहते हैं—'पुढविं' इत्यादि।

—— चारित्र की आराधना करने में तत्पर संयमी पृथिवी को, नदी आदि के किनारे को,

---

યોગોમાંના કોઇ પણ યોગથી હિંસા નથી કરતો, ત્યારે જ સમસ્ત હિંસાનો પરિત્યાગ બની શકે છે તેથી કરીને પૃથિવી આદિ હિંસાથી સદા સર્વદા દૂર રહેવું જોઇએ એ પ્રકારે હિંસાનો ત્યાગ કરનાર સાધુ સંયત કહેવાય છે (૩)

પૃથિવીકાયની યતના કહે છે-પુઢવિં૦ ઇત્યાદિ

ચારિત્રની આરાધના કરવામાં તત્પર સંયમી પૃથિવીને, નદિ આદિના

सरिदादिकूलम् शिला=पाषाणम्, लेष्टु=मृत्खण्डं त्रिविधेन=मनोवाक्कायैतत्त्रयगतत्रित्वसंख्याप्रयुक्तभेदत्रयविशिष्टेन, करणयोगेन=करण=करणकारणानुमोदनलक्षणस्त्रिविधो व्यापारस्तस्य योगः=मनोवाक्कायेन प्रत्येक सम्बन्धः, तेन तथोक्तेन नैव भिन्द्यात्=नैव विदारयेत् न खण्डयेदित्यर्थ', तथा न सन्खिेत्, रेखाघर्षणादिकं न कुर्यादित्यर्थः ॥४॥

॥ मूलम् ॥

१ ५ ६ ७ ४ ३
सुद्धपुढवी न निसीए, ससरक्खंमि अ आसणे ।
११ ७ १२ १० ८ ९
पमज्जित्तु निसीइज्जा, जाइत्ता जस्स उग्गहं ॥५॥

(छाया)

शुद्धपृथिव्या न निषीदेत्, सरजस्के च आसने ।
प्रमृज्य तु निषीदेत्, याचित्वा यस्य अवग्रहम् ॥५॥

॥ टीका ॥

' सुद्धपुढवि ' इत्यादि—

सयतः शुद्धपृथिव्या=शस्त्रापरिणताया सचित्ताया भूमौ इत्यर्थः। (अत्र सप्तमीस्थाने द्वितीया) सरजस्के=सचित्तरेणुससर्गिणि, आसने=पीठफलकादौ च न

पाषाण को मिट्टी के ढेले को मन वचन कायसे न भेदे, न दूसरे से भिदावे, और न भेदते हुए को भला जाने। तथा न उनपर रेखा करे, न उन्हे घिसे, न दूसरे से ये क्रियाएँ करावे न करते को भला जाने ॥४॥

'सुद्धपुढवीं' इत्यादि। सयती, शस्त्र से अपरिणत–सचित्त भूमिपर तथा सचित्त रजके ससर्ग से युक्त आसन पर न बैठे और जो भूमि अचित्त हो, उस पर भी उस क

કિનારાના પત્થરને, માટીના ઢેફાને, મનવચન કાયાથી ભેદે નહિ, બીજા દ્વારા ભેદાવે નહિ અને ભેદનારને ભલો જાણે નહિ, તથા તેના ઉપર રેખા કરે નહિ, તેને ઘસે નહિ, બીજા પાસે એ ક્રિયાઓ કરાવે નહિ, અને કરનારને ભલો જાણે નહિ (૪)

સુદ્ધપુઢવીં૦ ઇત્યાદિ સયમી શસ્ત્રથી અપરિણત–સચિત્ત ભૂમિપર તથા સચિત્ત રજના સસર્ગથી યુક્ત આસનપર બેસે નહિ, અને જે ભૂમિ અચિત્ત હોય

निषीदेत्=नोपविशेत् । अन्यत्र अचित्तभूमौ तु यस्याचित्तभूम्यादि तस्य अवग्रहम्=अनुज्ञां याचित्वा, प्रमृज्य=रजोहरणेन संशोध्य निषीदेत्=उपविशेत् । मार्गादौ तु शक्रेन्द्राज्ञया साधुरुपवेशनादिकं कुर्यात्, इति साधुसामाचारी ।

सचित्तपृथिव्यादौ स्वाम्यनुज्ञयाऽपि न साधुनोपवेष्टव्यं, पृथिवीकायविराधनाया अपरिहार्यत्वात्, अचित्तपृथिव्यादौ तु स्वाम्यनुज्ञां विना नोपवेष्टव्यम्, अदत्तादानदोषप्रसङ्गादिति भावः ॥५॥

अप्काययतनामाह—' सीओदगं ' इत्यादि—

॥ मूलम् ॥

२ ७ ८ ३ ४ ५ ६
सीओदगं न सेविज्जा, सिला वुट्ठं हिमाणि य ।
९ १० ११ १
उसिणोदगं तत्तफासुयं, पडिगाहिज्ज संजए ॥६॥

स्वामी से आज्ञा लेकर, रजोहरणसे प्रमार्जन करके बैठे। मार्ग में जब कि स्वामी उपस्थित नहीं रहता, तब शक्रेन्द्र की आज्ञा लेकर साधु बैठना आदि क्रियाएँ करे। ऐसी साधु-समाचारी है।

सचित्त भूमिपर तो स्वामी की आज्ञा लेकर भी नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि वहां बैठने से पृथिवी काय के जीवों की विराधना का परिहार नहीं हो सकता और अचित्त भूमि आदि पर बिना स्वामी की आज्ञा के नहीं बैठना चाहिए। ऐसा न करने से अदत्तादान दोष लगता है ॥५॥

તેનાપર પણ એના સ્વામીની આજ્ઞા લઈને રજોહરણથી પ્રમાર્જન કરીને બેસે માર્ગમાં જ્યારે સ્થાનનો સ્વામી હાજર ન હોય, ત્યારે શક્રેન્દ્રની આજ્ઞા લઈને સાધુ બેસવા આદિ ક્રિયાઓ કરે. એવી સાધુ સમાચારી છે.

સચિત્ત ભૂમિપર તો સ્વામીની આજ્ઞા લઈને પણ બેસવું ન જોઈએ, કારણકે ત્યાં બેસવાથી પૃથિવીકાયના જીવોની વિરાધનાનો પરિહાર થઈ શકતો નથી, અને અચિત્ત ભૂમિ આદિપર સ્વામીની આજ્ઞા વિના, બેસવું ન જોઈએ એમ ન કરવાથી અદત્તાદાન દોષ લાગે છે (૫)

॥ छाया ॥

शीतोदकं न सेवेत, शिला वृष्टं हिमानि च ।
उष्णोदकं तप्तप्रासुकं, प्रतिगृह्णीयात् संयतः ॥६॥

॥ टीका ॥

संयतः=साधुः शीतोदकं=भूमिगत नदीकूपकासारादिसम्बन्धि सचित्त-जलं शस्त्रापरिणतमित्यर्थः शिलाः=शिलातुल्यत्वाल्लक्षणया वर्षोपलान वृष्टं=वर्षोदकं हिमानि=प्रालेयजलानि 'वर्फ' इति भाषाप्रसिद्धानि च न सेवेत । तर्हि कथ साधुर्निर्वहेत् ? इत्याह—उष्णोदकं=प्रतीत, तप्तप्रासुकं, तप्त च प्रासुकं चेति समाहार-द्वन्द्वः, तत्र तप्त=मेथिकाशाकादिपरिश्राणजलम् 'ओसावण' इति भाषाप्रसिद्धं, प्रासुकं=तिलतण्डुलतक्रादीना तोय प्रतिगृह्णीयात्, याचित्वा तत्स्वामिना दत्तं गृह्णीयादित्यर्थः ॥६॥

(मूलम्)

२ ३ ४ ५ ६ ७ ८
उदउल्लं अप्पणो कायं, नेव पुंछे न संलिहे ।
१० ९ १२ ११ १३ १
समुप्पेह तहाभूयं नो णं संघट्टए मुणी ॥७॥

अब अप्काय की यतना कहते है—'सीओदग' इत्यादि ।

सयमी भूमिगत नदी, कूएँ, तालाब आदि के सचित्त जलको, ओलोंको, वर्षा के जलको, हिम (पाले) को कभी सेवन न करे, वरन् उष्ण जल, ओसावण, तथा तिल, चावल और छाछ की आछ तथा छाछ का धोवन प्रासुक हो तो उसके स्वामी से याचना करके ग्रहण करे ॥६॥

હવે અપ્કાયની યતના કહે છે-સીઓદગ ઇત્યાદિ

સયમી ભૂમિગત નદી, કૂવા, તળાવ આદિના સચિત્ત જળને, કરાને, વર્ષાના જળને, હિમને કદાપિ સેવે નહિ પરંતુ ઊનું પાણી, ઓસામણ, તથા તલ, ચોખા અને છાશની પરાશ તથા છાશનું ધોવણ પ્રાસુક હોય તો એના સ્વામીની યાચના કરીને ગ્રહણ કરે (૬)

॥ छाया ॥

उदकार्द्रम् आत्मनः कायं, नैव प्रोञ्छेत् न संलिखेत् ।
समुत्प्रेक्ष्य तथाभूतं, नो तत् मुनिः संघट्टयेत् ॥७॥

॥ टीका ॥

'उदउल्लं' इत्यादि—

मुनिः=साधुः भिक्षादौ प्रविष्टः उदकार्द्रं=वृष्ट्यादिसचित्तजलक्लिन्नम् आत्मनः=स्वस्य कायं=शरीरं नैव प्रोञ्छेत्=वाससा तज्जलं नैव शोषयेत्, तथा न संलिखेत्=नाङ्गुल्यादिना तदुपरि रेखां कुर्यात्, तथाभूतम् उदकार्द्रमङ्गं समुत्प्रेक्ष्य=निरीक्ष्य, तत् अङ्गं न संघट्टयेत्=न स्पृशेत्, अङ्गमल्लनादिनाऽपि इत्यर्थः । उपलक्षणमेतद् वस्त्रपात्रादीनामपि, तेन सचित्तक्लिन्नानां वस्त्रपात्रादीनां निष्पीडनप्रोञ्छनादिकं साधुना न विधेयमिति भावः ॥७॥

अथ तेजस्काययतनामाह— 'इंगालं' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

२　　३　　४　　७　　५　　६
इंगालं अगणिं अच्चिं, अलायं वा सजोइयं ।
८　९　　१०　११　　१२ १३　१४　　१
न उंजिज्जा न घट्टिज्जा, नो णं निव्वावए मुणी ॥८॥

'उदउल्ल' इत्यादि । भिक्षा आदि के लिए गया हुवा साधु वर्षा आदि के सचित्त जलसे भीगे हुए अपने शरीर को वस्त्र आदि से न पोंछे, न उसपर अंगुली आदि से लकीर खींचे । भीगे हुए शरीर को देख कर किसी का संघट्टा न करे, न किसी अङ्गोपाङ्ग से स्पर्श करे । यह उपलक्षण है इस लिए यह भी समझ लेना चाहिए कि—साधु, सचित्त जलसे भीगे हुए वस्त्र पात्र को भी न पोंछे, न स्पर्श करे, न निचोडे और न धूपमें सुखावें ॥७॥

उदउल्ल ઈત્યાદિ. ભિક્ષા આદિને માટે ગએલો સાધુ વર્ષા આદિના સચિત્ત જળથી ભીંજાય તો પોતાના શરીરને વસ્ત્ર આદિથી લૂછે નહિ, તેની ઉપર આંગળી આદિથી રેખા દોરે નહિ ભીંજેલા શરીરને જોઇને કોઇનું સંઘટન ન કરે, ન કોઇના અંગોપાંગનો સ્પર્શ ન કરે આ ઉપલક્ષણ છે તેથી એમ પણ સમજી લેવું જોઇએ કે—સાધુ સચિત્ત જળથી ભીંજાયલા વસ્ત્રપાત્રને લૂછે પણ નહિ, સ્પર્શ ન કરે, નીચોવે નહિ અને તડકામાં સૂકવે નહિ (૭)

॥ छाया ॥

अङ्गारम् अग्निम् अर्चिः, अलात वा सज्योतिः।
नोत्सिञ्चेत न घट्टयेत्, नो तत् निर्वापयेत् मुनिः ॥८॥

॥ टीका ॥

मुनिः=साधुः अङ्गार=निर्ज्वाल समिद्धतवह्निम् अग्निम्=अयःपिण्डस्थम्, अर्चिः=अनलादुत्थिता ज्वाला वा=अथवा सज्योतिः=साग्निकम्, अलातम्=अर्द्धदग्धं दारु, न उत्सिञ्चेत्=न प्रदीपयेत्, न घट्टयेत्=न घर्षणादिना उत्पादयेत्, 'ण' तम्=अङ्गारादिकं नो निर्वापयेत्=नो विध्यापयेत् उदकादिनेत्यर्थः, अग्न्यारम्भश्चारित्रविघाताय भवतीति भावः ॥८॥

अथ वायुकाययतनामाह—'तालियंटेण' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

७ ८ १० ११ ९
तालियंटेण पत्तेण, साहाए विहुणणेण वा।
१२ १३ १ २ ५ ४ ३ ६
न वीइज्ज अप्पणो कायं, बाहिरं वा वि पुग्गलं ॥९॥

अब तेजस्काय की यतना कहते हैं—'इंगाल' इत्यादि।

संयमी, अंगार को, लोहे आदि के गोले में प्रविष्ट अग्निको, अग्निकी ज्वालाको, अग्नि सहित अधजले काष्ठ को न जलावे और न घर्षण आदि करके अग्नि उत्पन्न करे तथा न अङ्गार आदि को जलादि से बुझावे, तात्पर्य यह है कि अग्निकाय के आरम्भ से चारित्र का घात होता है इस लिए साधु सर्वथा अग्निकायका आरम्भ त्यागे ॥८॥

હવે તેજસ્કાયની યતના કહે છે-ईंगाल० ઇત્યાદિ

સંયમી અંગારને, લોઢા આદિના ગોળાના પ્રવેશેલા અગ્નિને, અગ્નિની જ્વાળાને, અગ્નિ સાથેના અર્ધા બળેલા લાકડાને બાળે નહિ અને ઘર્ષણ આદિ કરીને અગ્નિને ઉત્પન્ન કરે નહિ તેમજ અંગાર આદિને જળાદિથી બુઝાવે નહિ તાત્પર્ય એ છે કે અગ્નિકાયના આરંભથી ચારિત્રનો ઘાત થાય છે તેથી સાધુ સર્વથા અગ્નિકાયનો આરંભ ત્યાગે (૮)

॥ छाया ॥

तालवृन्तेन पत्रेण, शाखाया विधूननेन वा ।
न वीजयेदात्मनः कायं, बाह्यं वापि पुद्गलम् ॥९॥

॥ टीका ॥

साधुः आत्मनः=स्वस्य काय=शरीरम् अपिवा=अथवा बाह्य=शरीराद्बहिः स्थित पुद्गल=दुग्धकृशरादि, तालवृन्तेन=तालपत्रादिरचितव्यजनेन, उपलक्षणमेतद् विद्युद्व्यजनादीनामपि, पत्रेण कमलपत्रादिना, शाखायाः=वृक्षादिशाखायाः विधूननेन=आन्दोलनेन, त्रुटितया पल्लवयुक्तलघुतरशाखया वा, विधूननेन वा=वीजनकेन वा न वीजयेत्=शैत्यादिप्राप्त्यै न समीरमुत्पादयेदित्यर्थः ॥९॥

अथ वनस्पतिकाययतनामाह—'तणरुक्ख' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१ ६ ७ ३ ५ ४ २
तणरुक्खं न छिंदिज्जा, फलं मूलं च कस्सइ ।
९ ८ १० ११ १२ १३
आमग विविह बीयं, मणसावि ण पत्थए ॥१०॥

अब वायुकाय की यतना कहते हैं—'तालियटेण' इत्यादि ।

साधु, अपने शरीर को तथा अन्य दुग्ध आदि को ताडपत्र (पखे)से अथवा विजली आदि के किसी प्रकार के भी पंखेसे, कमल क पत्तेसे, वृक्ष की डालियों के हिलानेसे, अथवा टूटी हुई पल्लव युक्त छोटी शाखासे शीतकी प्राप्तिके लिए न वीजे, अर्थात् वायुकाय को उत्पन्न न करे ॥९॥

હવે વાયુકાયની યતના કહે છે -તાલિયટણ૰ ઇત્યાદિ

સાધુ પોતાના શરીરને તથા અન્ય દૂધ આદિને તાડપત્ર (પંખા)થી અથવા વિજળી આદિના કોઇ પ્રકારના પણ પંખાથી, કમળના પાદડાથી, વૃક્ષની ડાળી પરથી તૂટેલી પાદડાવાળી નાની ડાખળીથી ઠંડકની પ્રાપ્તિને માટે વીંઝે નહિ, અર્થાત વાયુકાયને ઉત્પન્ન કરે નહિ (૯)

॥ छाया ॥

तृण-वृक्षं न छिन्द्यात्, फलं मूलं च कस्यचित् ।
आमकं विविध बीज, मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ॥१०॥

॥ टीका ॥

साधुः तृणवृक्षं=तृणानि च वृक्षाश्चेति समाहारद्वन्द्वः। तत्र तृणानि=कुशकाशादीनि, वृक्षाः=आम्रादयः, तान, तथा कस्यचित् पादपादेः फल मूल च न छिन्द्यात्=शस्त्रेण हस्तादिना वा न भञ्ज्यात्, विविधम्=अनेकप्रकारम् आमक=शस्त्रापरिणत सचित्तमिति यावत्, बीज=शाल्यादिकं मनसाऽपि न प्रार्थयेत्=नेच्छेत्, किं पुनर्वाक्कायाभ्यामिति भावः ॥१०॥

॥ मूलम् ॥

१ १० ११ २ ४ ३
गहणेसु न चिट्ठिज्जा, बीएसु हरिएसु वा ।
६ ५ ९ ८ ७
उदगमि तहा निच, उर्तिगपणगेसु वा ॥११॥

॥ छाया ॥

गहनेषु न तिष्ठेत् बीजेषु हरितेषु वा ।
उदकेषु तथा नित्यम् उत्तिङ्गपनकेषु वा ॥११॥

अब वनस्पति काय की यतना कहते है–‘ तणरुक्ख ’ इत्यादि।

साधु दूब काश आदि घास को तथा आम्र आदि वृक्षों को किसी वृक्ष आदि के फल या मूल को हाथ से या हथियार (शस्त्र) से न छेदे और शालि आदि सचित्त वनस्पति को लेने की मनसे भी इच्छा न करे ॥१०॥

હવે વનસ્પતિકાયની યતના કહે છે– तणरुक्ख० ઇત્યાદિ

સાધુ દાભડા, કાશ, આદિ ઘાસને તથા આંબા આદિ વૃક્ષોને, કોઈ વૃક્ષાદિના ફળ યા મૂળને હાથથી યા હથિયારથી છેદે નહિ, અને શાલિ (ડાંગર) આદિ સચિત્ત વનસ્પતિને લેવાની વાત તો શી, પણ મનથી પણ લેવાની ઇચ્છા કરે નહિ (૧૦)

॥ टीका ॥

'गहणेसु' इत्यादि—

मुनिः गहनेषु=निबिडेषु काननकुञ्जादिषु, बीजेषु=प्रसारितशालियव गोधूमादिकणेषु, वा=अथवा हरितेषु=दूर्वापल्लवादिषु हरितकायेषु, तथा उदके= वनस्पतिकायविशेषे वा=अथवा उत्तिङ्गपनकेषु=उत्तिङ्गाः=छत्राकादयः कीटिका नगरादयो वा, पनकाः=प्रावृषि भूमिकाष्ठादिषु पञ्चवर्णाः तद्द्रव्यसलग्नाः वनस्पति विशेषाः "लीलन फूलन" इति भाषाप्रसिद्धाः, तत्र नित्य=सर्वदा कदाचिदपीति भावः, न तिष्ठेत्। उपलक्षणं चैतत् तेन गमनोपवेशनावस्थानादिकं न कुर्यादित्यर्थः, गहनकाननप्रवेशादौ संघट्टनादिदोषप्रसक्तेरिति ॥११॥

अथ त्रसकाययतनामाह— 'तसे' इत्यादि—

(मूलम्)

तसे पाणे न हिंसिज्जा, वाया अदुव कम्मुणा।
उवरओ सव्वभूएसु, पासेज्ज विविहं जगं ॥१२॥

'गहणेसु' इत्यादि। गहन कानन उद्यान आदिमें तथा जहां शालि, गेहूँ आदि फैले हुए हों, उन स्थानों में और दूब पल्लवादि हरितकायपर उदक नामक वनस्पति पर छत्राक (साँप छत्ता) वनस्पति पर अथवा कीडीनगरे (चिउटियोंके स्थान) पर तथा लीलन फूलन पर कभी न ठहरे। उपलक्षणसे यह भी समझना चाहिए कि—आना जाना उठना बैठना आदि कोई भी क्रिया इन पर नहीं करे। गहन वनमें प्रवेश आदि करने से संघट्टा आदि दोष लग जाने की आशङ्का रहती है इस लिए वहां भी मुनि यतना में सावधान होवें ॥११॥

गहणेसु० ઇત્યાદિ ગહન વન ઉદ્યાન આદિમાં, જ્યાં ડાંગર, ઘઉં, આદિ પડેલા હોય, એ સ્થાનોમાં અને દર્ભ પાંદડાં આદિ લીલોતરી પર, ઉદક નામની વનસ્પતિપર, છત્રાક (સાપછત્રી) વનસ્પતિપર, અથવા કીડીનગર (કીડીઓના રાફડા) પર તથા લીલફૂલ પર કદાપિ ઊભા રહેવું નહિ ઉપલક્ષણથી એમ પણ સમજી લેવું કે આવવું-જવું ઉઠવું-બેસવું આદિ કોઈ પણ ક્રિયા એની ઉપર કરવી નહિ ગહન વનમાં પ્રવેશવાથી સંઘટ્ટાઆદિ દોષ લાગવાની આશંકા રહે છે, તેથી ત્યાં પણ મુનિ યતનામાં સાવધાન રહે (૧૧)

॥ छाया ॥

त्रसान् प्राणिनः न हिंस्यात् वाचा अथवा कर्मणा।
उपरतः सर्वभूतेषु पश्येद् विविधं जगत् ॥१२॥

(टीका)

साधुः वाचा=वचनेन अथवा कर्मणा=कायिकव्यापारेण, अत्र कायान्तः-पातित्वान्मनसोऽनुपादानं, तथा च 'कर्मणा' इति पदेनैव मनसेत्यर्थलाभः। उपलक्षण चैतत् त्रिविधकरणयोगस्यापि—केनापि प्रकारेणेत्यर्थः। त्रसान् प्राणिनः= द्वीन्द्रियादीन् न हिंस्यात्=न द्रुह्यात्, अतएव सर्वभूतेषु=सकलजीवेषु उपरतः= निवृत्तः रागद्वेषरहितः सन् विविधं=विचित्र जगत् स्थावरजङ्गमात्मक संसार पश्येत्=समालोचयेत्, यद् 'इमे जीवाः कर्मपरतन्त्राः स्वर्गनरकादिगतिं लभमानाः इष्टवियोगानिष्टसयोगादिना क्लेशसागरे वहमाना न कदाचिद् विश्रान्ति लभन्ते' इत्यादि परिणामदुःखस्वरूपत्वमनित्यत्वादिक च जगतः स्वभाव समा-

---

त्रसकाय की यतना कहते हैं—'तसेपाणे' इत्यादि।

साधु वचन और काया से तथा काय में अन्तर्गत होने से मन से भी अर्थात् तीन करण तीन योग से द्वीन्द्रिय आदि त्रस प्राणियों की हिंसा न करे, इस लिए समस्त प्राणियों में रागद्वेष रहित होकर त्रस स्थावर जीवरूप जगत को देखे विचारे कि-'ये जीव कर्मों के वश होकर नरक तिर्यञ्च आदि गतियों को पाकर इष्ट-वियोग अनिष्ट सयोग आदि निमित्तों से क्लेशों के समुद्र में बहते हुए कभी विश्रान्ति नहीं पाते। यह ससार परिणाम में दुःखरूप तथा अनित्य है' इस प्रकार का विचार करे। विचार करने वाले का वैराग्य

त्रसकायनी यतना कहे छे–तसेपाणे ઇत्याहि

વચન અને કાયાથી તથા કાયામા અંતર્ગત હોવાથી મનથી પણ અર્થાત્ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી દ્વીન્દ્રિયાદિ ત્રસ પ્રાણીઓની હિંસા સાધુ ન કરે તેથી સમસ્ત પ્રાણીઓમા રાગદ્વેષ રહિત થઈને ત્રસ સ્થાવર જીવરૂપ જગતને જુએ, વિચારે, કે–'આ જીવો કર્મોને વશ થઈને નરક તિર્યંચ આદિ ગતિઓને પામીને ઇષ્ટ વિયોગ અનિષ્ટ સંયોગ આદિ નિમિત્તોથી ક્લેશના સમુદ્રમા વહેતા કદાપિ વિશ્રાન્તિ પામતા નથી આ સસાર પરિણામે દુખરૂપ તથા અનિત્ય છે' એ પ્રમાણે વિચારે એવો વિચાર કરનારનુ વૈરાગ્ય વધે છે તાત્પર્ય એ છે કે–

लोचयतो वैराग्यमुपजायते। किं च साधुना संसारसागरोत्तरणपोतपात्रवत् द्वादशाप्यनुप्रेक्षाश्चिन्तनीया इति भावः ॥१२॥

अथ सूक्ष्मयतनामाह— 'अट्ठ' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

३ ४ ८ २ ५ १
अट्ठ सुहुमाइं पेहाए, जाइं जाणित्तु संजए।
७ ६ ९ १० १२ ११
दयाहिगारी भूएसु, आस चिट्ठ सएहि वा ॥१३॥

॥ छाया ॥

अष्टौ सूक्ष्माणि प्रेक्ष्य यानि ज्ञात्वा संयतः।
दयाधिकारी भूतेषु आसीत तिष्ठेत् शयीत वा ॥१३॥

॥ टीका ॥

संयतः यानि अष्टौ सूक्ष्माणि वक्ष्यमाणानि, तानि ज्ञात्वा=विदित्वा भूतेषु=जीवेषु दयाधिकारी=दयापालनयोग्यतापन्नो भवति । तानि प्रेक्ष्य=सम्यक्‌निरीक्ष्य आसीत=उपविशेत्, तिष्ठेत्=अवस्थानं कुर्यात्, शयीत=सुप्यात् ॥१३॥

बढता है। तात्पर्य यह कि–साधु को संसारसागर से पार उतरने के लिए पोत (नौका) के समान अनित्य अशरण आदि बारह भावनाएँ भानी चाहिए ॥१२॥

'अट्ठ सुहुमाइं' इत्यादि। संयमी (साधु), आगे कहे जाने वाले आठ सूक्ष्मों को जानकर जीवदया पालने का अधिकारी (योग्यतावान्) होता है। उनका सम्यक् प्रकार से निरीक्षण करके बैठे खडा रहे और शयन करे ॥१३॥

સાધુએ સંસારસાગરથી પાર ઉતરવાને માટે નૌકાની સમાન અનિત્ય અશરણ આદિ બાર ભાવનાઓ ભાવવી જોઈએ (૧૨)

अट्ठसुहुमाइं ઇત્યાદિ સંયમી (સાધુ) આગળ કહેવામાં આવનારાં આઠ સૂક્ષ્મોને જાણીને જીવદયા પાળવાનો અધિકારી (યોગ્યતાવાળો) બને છે એનું સમ્યક્ પ્રકારે નિરીક્ષણ કરીને બેસે, ઉભો રહે અને શયન કરે (૧૩)

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ६ ५

कयराइं अट्ठ सुहुमाइं, जाइं पुच्छिज्ज संजए ।

९ १० ८ ११ ७

इमाइं ताइं मेहावी, आइक्खिज्ज वियक्खणो ॥१४॥

(छाया)

कतराणि अष्टौ सूक्ष्माणि यानि पृच्छेत् संयतः ।
इमानि तानि मेधावी आचक्षीत विचक्षणः ॥१४॥

॥ टीका ॥

'कयराइं' इत्यादि—

कतराणि=कानि अष्टौ सूक्ष्माणि=सूक्ष्मशब्दवाच्यानि इति यानि विषयीकृत्य संयतः दयाधिकाराभिलाषी पृच्छेत् । विचक्षणः=धर्मोपदेशकुशलः मेधावी=स्थिरप्रज्ञः इमानि=वक्ष्यमाणानि तानि=सूक्ष्माणि आचक्षीत=कथयेत् । "संजए" इतिपदेन प्राणियतनापरत्वं सूचितम् , "मेहावी" इत्यनेन धारणाशक्तिसंपन्नेनैव पूर्वापरविरोधपरिहारपूर्वकं व्याख्यातुं शक्यते । "वियक्खणो" इत्यनेन द्रव्य क्षेत्रकालभावज्ञस्यैव व्याख्यानं श्रोतृणां लाभाय भवतीति प्रतीयते ॥१४॥

'कयराइं' इत्यादि । दया पालन का अभिलाषी पूछे कि—हे गुरु महाराज ! वे आठ सूक्ष्म कौन कौन हैं, ? तब धर्मोपदेश देने में कुशल स्थिर प्रज्ञावाले गुरुमहाराज आगे कहे जाने वाले आठ सूक्ष्म बतावें ।

'संजए'-पदसे प्राणियों की यतना मे तत्परता सूचित की गई है । 'मेहावी' शब्दसे यह प्रगट होता है कि—जिसमें धारणाशक्ति होती है वही पूर्वापरविरोधरहित व्याख्यान कर सकता है । "वियक्खणो" शब्द से यह प्रगट होता है कि जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव का ज्ञाता होता है उसी के व्याख्यान से श्रोताओं को लाभ हो सकता है ॥१४॥

कयराइं ઇત્યાદિ દયા પાલનનો અભિલાષી પૂછે છે કે-હે ગુરૂ મહારાજ! એ આઠ સૂક્ષ્મો ક્યા ક્યા છે? ત્યારે ધર્મોપદેશ આપવામાં કુશળ એવા સ્થિર પ્રજ્ઞાવાળા ગુરૂ મહારાજ આગળ કહેવામાં આવનારા આઠ સૂક્ષ્મો બતાવે છે

संजए પદથી પ્રાણીઓની યતનામાં તત્પરતા સૂચિત કરી છે मेहावी શબ્દથી એમ પ્રકટ થાય છે કે-જેનામાં ધારણા શક્તિ હોય છે તે જ પૂર્વાપર વિરોધ રહિત વ્યાખ્યાન કરી શકે છે वियक्खणो શબ્દથી એમ પ્રકટ થાય છે કે દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ ભાવનો જ્ઞાતા હોય છે તેના વ્યાખ્યાનથી શ્રોતાઓને લાભ થઈ શકે છે (૧૪)

अष्टानां सूक्ष्माणां नामानि निर्दिशति— ' सिणेह ' इत्यादि—

(मूलम्)

सिणेहं पुप्फसुहुमं च पाणुत्तिंगं तहेव य ।
पणगं बीयहरियं च अंडसुहुमं च अट्ठमं ॥१५॥

॥ छाया ॥

स्नेहं पुष्पसूक्ष्मं च प्राण्युत्तिङ्गं तथैव च ।
पनकं बीजहरितं च अण्डसूक्ष्मं च अष्टमम् ॥१५॥

॥ टीका ॥

स्नेह=स्नेहसूक्ष्मम् अवश्याय-हिम-कुज्झटिकादिरूपम् । अत्र ' सिणेहं ' इति पदेनाप्कायविशेषः सूक्ष्मः स्नेहकायोऽपि गृह्यते । पुष्पसूक्ष्मं=उदुम्बरादि पुष्पसदृशं सूक्ष्मं, प्राणिसूक्ष्मं=यः प्राणी सञ्चरमाण एव दृश्यते न तु स्थितः, सं

अब आठ सूक्ष्मों के नाम गिनाते हैं—'सिणेह' इत्यादि।

(१) स्नेहसूक्ष्म—ओस, हिम, धूअर आदिको स्नेहसूक्ष्म कहते हैं, और "सिणेह" इस पदसे सूक्ष्म स्नेह काय भी लिया जाता है।

(२) पुष्पसूक्ष्म—उमर आदि के फूलों को पुष्पसूक्ष्म कहते हैं।

(३) प्राणिसूक्ष्म—कुंथुवा आदि प्राणी जो सूक्ष्म होने के कारण चलते समय ही दीख पडते हैं, ठहरे हुए दिखाई नहीं देते उन्हें प्राणिसूक्ष्म कहते हैं।

હવે આઠ સૂક્ષ્મોના નામ ગણાવે છે -'सिणेह' ઇત્યાદિ

(૧) સ્નેહ સૂક્ષ્મ ઓસ (ઝાકળ), હિમ, ધૂમસ આદિને સ્નેહ સૂક્ષ્મ કહે છે અને सिणेह શબ્દથી સૂક્ષ્મ સ્નેહકાય પણ ગણવામાં આવે છે

(૨) પુષ્પસૂક્ષ્મ—ઉંબર આદિના ફૂલોને પુષ્પસૂક્ષ્મ કહે છે

(૩) પ્રાણીસૂક્ષ્મ—કંથવા આદિ પ્રાણી જે સૂક્ષ્મ હોવાને ચાલતી વખતેજ જોવામાં આવે છે, સ્થિર હોય ત્યારે જોવામાં આવતા નથી. તેમને પ્રાણીસૂક્ષ્મ કહે છે

चासौ सूक्ष्मः प्राणिसूक्ष्मः तं–कुन्थ्वादिकम्। उत्तिङ्गसूक्ष्म=सूक्ष्मकीटिकादीनां वृन्दम् कीटिकानगरादि, कीटिकादयः सूक्ष्माः प्राणिनो घनीभूता अपि पृथिव्यादिवत्प्रति-भासमाना जीवत्वेन दुर्लक्ष्या भवन्तीति भावः। पनकसूक्ष्मं=वर्षाकाले भूमिकाष्ठादौ समुत्पन्नं पञ्चवर्णं पनकाख्यं सूक्ष्मं, बीजहरितं च=बीजं च हरितं चेति समाहार-द्वन्द्वः, तत्र बीजसूक्ष्म=शाल्यादितुषमुखं यस्मादङ्कुरः समुत्पद्यते। हरितसूक्ष्म= नवीनमुत्पद्यमानं भूमिसवर्णं तद्वत् कान्तिमत्तया दुर्लक्ष्यम्। अष्टमम् अण्डसूक्ष्म= मक्षिका पिपीलिका-गृहगोधिका-कृकलासाद्यण्डकं जानीहीति शेषः ॥१५॥

(४) उत्तिंगसूक्ष्म–सूक्ष्म कीडिएँ आदि का समूह–कीडीनगर आदि, वे ऐसे बारीक अवयव वाले होते हैं कि अनेक एक जगह मिल जाने पर भी पृथिवी आदि के समान रंग रूप होने से 'ये जीव हैं' ऐसे जलदी नहीं दिखाई देते।

(५) पनकसूक्ष्म–पांच वर्ण की फूलन को कहते हैं, जो वर्षाकाल में काष्ठ आदि के उपर जमती है।

(६) बीजसूक्ष्म–शालि आदि के तुषों के अग्रभाग को कहते हैं, जिसमें अंकुर निकल सकते हैं।

(७) हरितसूक्ष्म–नवीन उगती हुई वनस्पति, जो कि भूमि जैसे वर्ण की होने से कठिनाई से दिखाई देती है।

(८) अण्डसूक्ष्म–चिउटी गिरौली, (गिरगट किरगंटियो) आदिके अण्डों को कहते हैं। 'इनको जानो' ऐसा सम्बन्ध ऊपर से जोड लेना चाहिए ॥१५॥

(४) ઉત્તિંગ સૂક્ષ્મ—સૂક્ષ્મ કીડીઓ આદિનો સમૂહ, કીડીનગર આદિ તે એવા બારીક અવયવવાળી હોય છે કે એક જગ્યાએ અનેક મળી હોય તો પણ પૃથિવી આદિના જેવાં તેના રંગ રૂપ હોવાથી 'આ જીવ છે' એમ જલ્દી જોઇ શકાતું નથી

(૫) પનક સૂક્ષ્મ પાંચવર્ણની લીલફૂલને કહે છે, જે વર્ષાકાળમાં લાકડાં આદિ ઉપર જામે છે

(૬) બીજ સૂક્ષ્મ-ધાન્યને કહે છે, જેમાથી અંકુર નીકળી શકે છે

(૭) હરિત સૂક્ષ્મ નવી ઉગતી વનસ્પતિ જે ભૂમિ જેવા વર્ણની હોવાથી મુશ્કેલીથી જોઇ શકાય છે,

(૮) અંડ સૂક્ષ્મ—કીડી, ગરોળી, ગિરગટ આદિના ઇંડાને કહે છે એ બધા સૂક્ષ્મોને જાણો, એવો સંબંધ ઉપરથી જોડી લેવો (૧૫)

॥ मूलम् ॥

३ २ ४ ७ १

एवमेयाणि जाणित्ता, सव्वभावेण संजए।

६ ९ ८ ५

अप्पमत्तो जए निच्च, सव्विंदियसमाहिए ॥१६॥

॥ छाया ॥

एवमेतानि ज्ञात्वा सर्वभावेन संयतः।
अप्रमत्तो यतेत नित्यं सर्वेन्द्रियसमाहितः ॥१६॥

॥ टीका ॥

'एव-' इत्यादि -

संयतः=साधुः एतानि=पूर्वोक्तानि अष्टविधानि सूक्ष्माणि एवम्=उक्त रीत्या सर्वथा ज्ञात्वा सर्वेन्द्रियसमाहितः=सकलेन्द्रियदमनतत्परः अप्रमत्तः= सावधानः सर्वभावेन=मनसा वाचा कायेन त्रिविधकरणयोगेन नित्यं=सततं यतेत=यतनापरायणो भवेदित्यर्थः।

ननु सूक्ष्मः स्नेहकायः सर्वर्तुषु दिवा रात्रौ च पतति, कथमेतस्य यतना

"एवमेयाणि" इत्यादि। इन पूर्वोक्त आठ सूक्ष्मों को सम्यक् जानकर साधु पाचे इन्द्रियों और मन को दमन करने में तत्पर तथा सावधान होकर तीन करण तीन योग से इन की यतना करने में परायण रहे।

शिष्य—हे गुरुमहाराज! सूक्ष्म स्नेहकाय तो सब ऋतुओं में दिन रात गिरती रहती है फिर साधु उसकी यतना कैसे कर सकते हैं?।

गुरु—हे शिष्य! जो प्रदेश ऊपर से आच्छादित न हो वहां रात में साधु का निवास करने बैठने सोने घूमन फिरने आदि का कल्प नहीं है। अगर अवश्य कार्य हो तो

एवमेयाणि० ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત આઠ સૂક્ષ્મોને સમ્યક્ પ્રકારે જાણીને સાધુ પાંચે ઇંદ્રિયો તથા મનને દમન કરવામાં તત્પર તથા સાવધાન થઈને ત્રણ કરણ યોગથી એની યતના કરવામાં પરાયણ રહે.

શિષ્ય—હે ગુરુમહારાજ સૂક્ષ્મ સ્નેહકાય તો બધી ઋતુઓમાં રાત ને દિવસ પડયા કરે છે, તો પછી સાધુ એની યતના કેવી રીતે કરી શકે?

ગુરુ—હે શિષ્ય! જે પ્રદેશ ઉપરથી આચ્છાદિત ન હોય, ત્યાં રાત્રે નિવાસ કરવાનું, બેસવાનું, સૂવાનું કે હરવા-ફરવાનું સાધુને કલ્પતું નથી જો જરૂર કાર્ય

साधुना सपादनीया? इति चेदुच्यते—ऊर्ध्वप्रदेशानावरणे सति साधुना नक्त तत्रावस्थानादिकं न विधेयम्। आवश्यकतायां तु वस्त्रादिनाऽङ्गमावृत्य नि स-स्थानमर्यादितभूमौ तथाविधप्रदेशे सचरणीयम्। दिवा तु निपतन्नेवासौ दिवा-करमण्डलग्रीष्मेणैव विनश्यतीति न तदर्थमावरणापेक्षा, नापि दिवाऽनावृतप्रदेश-सचारेण साधोस्तन्निमित्तकः संयमापचारः, विहारभूमावविहारभूमौ च सचरणस्य शास्त्राऽऽज्ञापितत्वादिति भावः॥

'सव्वभावेण' इति पदेन सर्वथा सर्वजीवसरक्षणमन्तरेण चारित्राराधना न भवितुमर्हतीति, 'अप्पमत्तो' इत्यनेन प्रमादवान् सम्यक् सूक्ष्मजीवनिकायरक्षणं कर्तुं न क्षमते इति सूच्यते, 'सव्विदिअसमाहिए' इत्यनेन रागद्वेषपरित्यागेनैव यतना संभवतीति व्यज्यते ॥१६॥

शरीर को वस्त्रादि से आच्छादित करके निवास स्थान की मर्यादित भूमि के अन्दर अच्छाया में भी जा सकते हैं। दिन में तो सूर्यमण्डल की गर्मी से वह गिरती हुई ही नष्ट हो जाती है इसलिए दिन में उस की यतना के लिए आवरण की आवश्यकता नहीं है और न दिन में घूमने फिरने आदि से सयम में तत्प्रयुक्त (सूक्ष्म स्नेह काय के निमित्त से) किसी प्रकार का दोष लगता है क्योंकि, विहार भूमि आदि में विचरन की साधु को शास्त्र में भगवानने आज्ञा दी है। जीवों की सर्वथा रक्षा किये विना चारित्र की आराधना नहीं हो सकती यह "सव्व भावेण" पदसे प्रगट किया है। प्रमादी सूक्ष्म काय की भली भांति रक्षा नहीं कर सकता यह "अप्पमत्त" पदसे सूचित किया है। "सव्विदियसमाहिए" पदसे यह व्यक्त किया गया है कि रागद्वेष का त्याग करन से ही यतना का पालन हो सकता है ॥१६॥

હોય તો શરીરને વસ્ત્રાદિથી ઢાંકીને નિવાસ સ્થાનની મર્યાદિત ભૂમિની અંદર ઓછાયામાં જઈ શકે છે દિવસમાં તો સૂર્યમંડળની ગરમીથી સૂક્ષ્મ સ્નેહકાય પડતાં જ નષ્ટ થઈ જાય છે તેથી દિવસે તેની યતનાને માટે આવરણની આવશ્યકતા હોતી નથી, તેમ જ દિવસે હરવા-ફરવા આદિથી સંયમમાં સૂક્ષ્મ સ્નેહકાયના નિમિત્તથી કોઈ પ્રકારનો દોષ લાગતો નથી, કારણ કે વિહાર ભૂમિમાં વિચરવાની સાધુને શાસ્ત્રમાં ભગવાને આજ્ઞા આપી છે જીવોની સર્વથા રક્ષા કર્યા વિના ચારિત્રની આરાધના થઈ શકતી નથી, એ સવ્વભાવેણ પદથી પ્રકટ કર્યું છે, પ્રમાદી સાધુ સૂક્ષ્મ કાયની રક્ષા સારી રીતે કરી શકતા નથી એ અપ્પમત્ત શબ્દથી સૂચિત કર્યું છે સવ્વિદિયસમાહિએ પદથી એમ વ્યકત કરવામાં આવ્યું છે કે રાગદ્વેષનો ત્યાગ કરવાથી જ યતનાનું પાલન થઈ શકે છે (૧૬)

॥ मूलम् ॥

१० ८ ११ ९ १

धुवं च पडिलेहिज्जा, जोगसा पायकम्बलं।

२ ३ ४ ५ ६ ७

सिज्जमुच्चारभूमिं च, संथारं अदुवासणं ॥१७॥

॥ छाया ॥

ध्रुवं च प्रतिलेखयेत् योगेन पात्रकम्बलम्।
शय्यामुच्चारभूमिं च संस्तारकमथवाऽऽसनम् ॥१७॥

(टीका)

'धुवं' इत्यादि।

साधुः पात्रकम्बलं=पात्रं च कम्बलं चेति समाहारद्वन्द्वः, पात्रं काष्ठादिमयं, कम्बलम्=ऊर्णातन्तुमयं, शय्या=वसतिम् आवासभूमिमित्यर्थः उच्चारभूमिं=मलाद्युत्सर्जनस्थानम्, तथा संस्तारकं=शयनोपयोगि तृणादिनिर्मितमास्तरणम्, आसनं=पीठफलकादिकं, योगेन=एकाग्रलक्षणेन, ध्रुवं=नियमेन काले काले प्रतिलेखयेत्, उपलक्षणमिदं मुखवस्त्रिकारजोहरणादीनामपि ॥१७॥

'धुवंच' इत्यादि। साधु काष्ठ आदि के पात्र का, निवास भूमि का, उच्चार प्रस्रवण भूमिका, शयनोपयोगी तृण आदि के बने हुए संस्तारक का, पीठ, फलक आदि आसन का एकाग्र चित्तसे यथाकाल अवश्य ही प्रतिलेखना करे, उपलक्षण से मुखवस्त्रिका और रजोहरण आदि सब उपकरणों का भी प्रतिलेखन करे ॥१७॥

धुवंच० ઇત્યાદિ કાષ્ટ આદિના પાત્રનું, નિવાસ ભૂમિનું, ઉચ્ચાર પાસવણની ભૂમિનું, શયનોપયોગી તૃણ આદિના બનેલા સંસ્તારકનું, પીઠ, ફલક આદિ આસનનું એકાગ્ર ચિત્તથી યથાકાલ સાધુ અવશ્ય પ્રતિલેખન કરે ઉપલક્ષણથી મુખવસ્ત્રિકા અને રજોહરણ આદિ બધાં ઉપકરણોનું પણ પ્રતિલેખન કરે (૧૭)

॥ मूलम् ॥

४ ५ ६ ७
उच्चार पासवण, खेलं सिंघाणजल्लियं।
२ ३ ८ १
फासुय पडिलेहित्ता, परिट्ठाविज्ज संजए ॥१८॥

॥ छाया ॥

उच्चार प्रस्रवण श्लेष्माण सिंघाण जल्ल च।
प्रासुकं प्रतिलेख्य प्रतिष्ठापयेत् संयतः ॥१८॥

॥ टीका ॥

'उच्चार' इत्यादि।

संयतः साधुः-प्रासुकम्=अचित्त स्थानं प्रतिलेख्य=सम्यङ्निरीक्ष्येत्यर्थः, उच्चार=पुरीषं, प्रस्रवण=मूत्र, श्लेष्माण=कफं, सिंघाणजल्लं=नासिकामलं च परिष्ठापयेत्=उत्सृजेत् परित्यजेदित्यर्थः। उच्चारादिसमुत्सर्जनमचित्तप्रदेशे एव कार्यम्। प्रासुकस्थाननिश्चयश्च प्रतिलेखन विना न सम्भवतीति स्थानप्रतिलेखन विधायोच्चारादि कुर्यादिति भावः ॥१८॥

'उच्चार' इत्यादि। साधु, जीवरहित स्थान में सम्यक् प्रकार देख कर उच्चार प्रस्रवण कफ तथा नासिका और कान का मल त्यागे, उच्चार प्रस्रवण आदि का त्याग अचित्त प्रदेश म ही करना चाहिए, अचित्त प्रदेश का निश्चय भली भाँति प्रतिलेखन किये विना नहीं हो सकता अतएव स्थान का प्रतिलेखन करके ही मलादि को परिठवना चाहिए ॥१८॥

उच्चार ० ઇત્યાદિ સાધુ, જીવ રહિત સ્થાનમા સમ્યક્ પ્રકારે જોઇને ઉચ્ચાર પ્રસવણ કફ તથા નાક કાનનો મેલ ત્યાગે ઉચ્ચાર પ્રસવણ આદિનો ત્યાગ અચિત્ત પ્રદેશમા જ કરવો જોઇએ, અચિત્ત પ્રદેશનો નિશ્ચય સારી રીતે પ્રતિલેખન કર્યા વિના થઈ શકતો નથી, તેથી કરીને સ્થાનનું પ્રતિલેખન કરીને જ મલાદિને પરિઠવવા જોઇએ (૧૮)

(मूलम्)

५ ४ १ ३ २
पविसित्तु परागारं, पाणट्ठा भोयणस्स वा ।
६ ७ ८ ९ १३ १० ११ १२ १४
जयं चिट्ठे मियं भासे, न य रूवेसु मणं करे ॥१९॥

॥ छाया ॥

प्रविश्य परागारं पानार्थं भोजनाय वा ।
यतं तिष्ठेत् मितं भाषेत न च रूपेषु मनः कुर्यात् ॥१९॥

॥ टीका ॥

'पविसित्तु' इत्यादि—

गोचरीं गतः साधुः पानार्थं=जलार्थं, वा अथवा भोजनाय=भक्तार्थं रोगिणश्च साधोरौषधाद्यर्थं वा परागारं=गृहस्थगृहं प्रविश्य=गत्वा यतं=यतनापूर्वकं यथा स्यात् तथा तिष्ठेत्=यतनया तिष्ठेत्, यथा पाणिपादादिभिर्तीक्ष परिस्पन्दो न भवेत्तथेत्यर्थः। मितं=परिमितं स्वल्पं भाषेत=वदेत् पृष्टः सन् 'भिक्षार्थमागतोऽस्मी' ति वदेत्। भक्तादिग्रहणसमये 'कस्यार्थे' कृतं, केन वा निर्मितं?'मित्यादि यावता भाषणेन निरवद्यसावद्यता निर्वर्तेत तावद् भाषण

'पविसित्तु' इत्यादि। गोचरी को गया हुआ साधु भोजन पानके लिए अथवा ग्लान साधु की औषध आदि के लिए गृहस्थ के घरमें प्रवेश करके यतनापूर्वक खड़ा होवे, हाथ पैरों को न हिलावे। परिमित भाषण करे-अर्थात् कोई पूछे तो-यहीं कहे कि 'मैं भिक्षा के लिए आया हूँ'। आहार लेते समय केवल यही प्रश्न करे कि 'यह भोजन किसके लिए बनाया गया है? किसने बनाया है?' इत्यादि पूछने से यह सन्देह नहीं रहता कि 'यह भोजन निरवद्य है

पविसित्तु० ઇત્યાદિ ગોચરી માટે ગયેલો સાધુ ભોજન પાનને માટે અથવા ગ્લાન સાધુના ઔષધાદિને માટે ગૃહસ્થના ઘરમાં પ્રવેશ કરીને યતનાપૂર્વક ઊભો રહે, હાથ પગ ન હલાવે, પરિમિત ભાષણ કરે અર્થાત્ કોઇ પુછે તો કહે કે હું ભિક્ષાને માટે આવ્યો છું આહાર લેતી વખતે કેવળ એટલો જ પ્રશ્ન કરે કે આ ભોજન કોને માટે બનાવ્યું છે? કોણે બનાવ્યું છે? એમ પૂછવાથી સંશય રહેતો

१ "अह प्रत्ययोऽन्यत्र" इत्यमरः।

कुर्यादित्यर्थः। च=पुनः रूपेषु=दातृयोषित्सदनादिसौन्दर्येषु मनो न कुर्यात्=चेतो न चालयेदित्यर्थः ॥१९॥

(मूलम्)

३ ४ २ ६ ५ ७
बहु सुणेइ कन्नेहिं, बहुं अच्छीहिं पिच्छइ।
१३ ११ ८ ९ १० १ १२ १४
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ॥२०॥

॥ छाया ॥

बहु शृणोति कर्णाभ्यां बहु अक्षिभ्यां पश्यति।
न च दृष्टं श्रुतं सर्वं भिक्षुराख्यातुमर्हति ॥२०॥

॥ टीका ॥

'बहु सुणेइ' इत्यादि।

भिक्षुः=साधुः भिक्षार्थं प्रविष्टः सन् कर्णाभ्यां=श्रवणाभ्यां बहु=विविधं वाक्यजातं शृणोति=आकर्णयति, तथा अक्षिभ्यां=नयनाभ्यां बहु=विविधं पश्यति=विलोकते, तत्र दृष्टं, श्रुतं च तत्सर्वम् आख्यातुं=वक्तुं नार्हति केनचित्पृष्टोऽपीत्यध्याहारः ॥२०॥

कि सावद्य" इसके सिवाय निष्प्रयोजन भाषण न करे। तथा दाता स्त्री आदि की सुन्दरता की ओर चित्त न लगावे ॥१९॥

'बहु सुणेइ' इत्यादि। भिक्षु जब भिक्षा को जाता है तो नाना प्रकार की बातें सुनाई पड़ती हैं, तरह तरह की वस्तुएँ नेत्रों से दिखाई पड़ जाती हैं। वे सब सुनी हुई बातें और देखी हुई वस्तु किसी से पूछे जाने पर भी नहीं कहनी चाहिए ॥२०॥

નથી કે-આ ભોજન નિરવદ્ય છે કે સાવદ્ય એ ઉપરાંત નિષ્પ્રયોજન ભાષણ ન કરે, તથા દાતા સ્ત્રી આદિની સુંદરતા તરફ ચિત્ત ન લગાડે (૧૯)

બહુસુણેઇ૦ ઇત્યાદિ ભિક્ષુ જ્યારે ભિક્ષાને માટે જાય છે ત્યારે નાના પ્રકારની વાતો સાંભળવામાં આવે છે, તરેહ તરેહની વસ્તુઓ આંખથી જોવામાં આવે છે, એ બધી સાંભળેલી વાતો અને જોયેલી વસ્તુઓ કોઇ પૂછે તો પણ કહેવી ન જોઇએ (૨૦)

(मूलम्)

पविसित्तु परागार, पाणट्ठा भोयणस्स वा ।
जय चिट्ठे मिय भासे, न य रूवेसु मण करे ॥१९॥

॥ छाया ॥

प्रविश्य परागार पानार्थं भोजनाय वा ।
यतं तिष्ठेत् मित भाषेत न च रूपेषु मनः कुर्यात् ॥१९॥

॥ टीका ॥

' पविसित्तु ' इत्यादि—

गोचरीं गतः साधुः पानार्थं=जलाद्यर्थं, वा अथवा भोजनाय= भक्ताद्यर्थं रोगिणश्च साधोरौषधाद्यर्थं वा परागार=गृहस्थगृह प्रविश्य=गत्वा यतं= यतनापूर्वक यथा स्यात् तथा तिष्ठेत्=यतनया तिष्ठेत्, यथा पाणिपादादिप्रतीक परिस्पन्दो न भवेत्तथेत्यर्थः। मितं=परिमित स्वल्प भाषेत=वदेत् पृष्टः सन् 'भिक्षार्थमागतोऽस्मी' ति वदेत्। भक्तादिग्रहणसमये 'कस्यार्थे कृतं, केन वा निर्मित ?'मित्यादि यावता भाषणेन निरवद्यसावद्यता निर्णीत तावद् भाषणं

'पविसित्तु' इत्यादि। गोचरी को गया हुआ साधु भोजन पानके लिए अथवा ग्लान साधु को औषध आदि के लिए गृहस्थ के घरमें प्रवेश करके यतनापूर्वक खडा होवे,हाथ पैरों को नहिलावे। परिमित भाषण करे-अर्थात् कोई पूछे तो-यही कहे कि 'मैं भिक्षा के लिए आया हूँ'। आहार लेते समय केवल यही प्रश्न करे कि 'यह भोजन किसके लिए बनाया गया है ? किसने बनाया है ?' इत्यादि पूछने से यह सशय नहीं रहता कि 'यह भोजन निरवद्य है

पविसित्तु० ઇત્યાદિ ગોચરી માટે ગયેલો સાધુ ભોજન પાનને માટે અથવા ગ્લાન સાધુના ઔષધાદિને માટે ગૃહસ્થના ઘરમા પ્રવેશ કરીને યતનાપૂર્વક ઊભો રહે, હાથ પગ ન હલાવે, પરિમિત ભાષણ કરે-અર્થાત્ કોઇ પૂછે તો કહે કે હું ભિક્ષાને માટે આવ્યો છું આહાર લેતી વખતે કેવળ એટલો જ પ્રશ્ન કરે કે આ ભોજન કોને માટે બનાવ્યું છે ? કોણે બનાવ્યું છે ? એમ પૂછવાથી સશય રહેતો

१ "अङ्ग प्रतीकोऽवयवः" इत्यमरः।

कुर्यादित्यर्थः। च=पुनः रूपेषु=दातृयोषित्सदनादिसौन्दर्येषु मनो न कुर्यात्=चेतो न चालयेदित्यर्थः ॥१९॥

(मूलम्)

३ ४ २ ६ ५ ७
बहु सुणेइ कन्नेहिं, बहुं अच्छीहिं पिच्छइ।
१३ ११ ८ ९ १० १ १२ १४
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ॥२०॥

॥ छाया ॥

बहु शृणोति कर्णाभ्यां बहु अक्षिभ्यां पश्यति।
न च दृष्टं श्रुतं सर्वं भिक्षुराख्यातुमर्हति ॥२०॥

॥ टीका ॥

'बहु सुणेइ' इत्यादि।

भिक्षुः=साधुः भिक्षार्थं प्रविष्टः सन् कर्णाभ्यां=श्रवणाभ्यां बहु=विविध वाक्यजातं शृणोति=आकर्णयति, तथा अक्षिभ्यां=नयनाभ्यां बहु=विविधं पश्यति=विलोकते, तत्र दृष्टं, श्रुतं च तत्सर्वम् आख्यातुं=वक्तुं नार्हति केनचित्पृष्टोऽपीत्यध्याहारः ॥२०॥

कि सावद्य" इसके सिवाय निष्प्रयोजन भाषण न करे। तथा दाता स्त्री आदि की सुन्दरता की ओर चित्त न लगावे ॥१९॥

'बहु सुणेइ' इत्यादि। भिक्षु जब भिक्षा को जाता है तो नाना प्रकार की बातें सुनाई पडती हैं, तरह तरह की वस्तुएँ नेत्रों से दिखाई पड जाती है। वे सब सुनी हुई बातें और देखी हुई वस्तु किसी से पूछे जाने पर भी नहीं कहनी चाहिए ॥२०॥

નથી કે-આ ભોજન નિરવદ્ય છે કે સાવદ્ય એ ઉપરાંત નિષ્પ્રયોજન ભાષણ ન કરે, તથા દાતા સ્ત્રી આદિની સુંદરતા તરફ ચિત્ત ન લગાડે (૧૯)

બહુસુણેઇ૦ ઇત્યાદિ ભિક્ષુ જ્યારે ભિક્ષાને માટે જાય છે ત્યારે નાના પ્રકારની વાતો સાંભળવામાં આવે છે, તરેહ તરેહની વસ્તુઓ આંખથી જોવામાં આવે છે, એ બધી સાંભળેલી વાતો અને જોયેલી વસ્તુઓ કોઇ પૂછે તો પણ કહેવી ન જોઇએ (૨૦)

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ६ ७ ५

सुयं वा जइ वा दिट्ठं, न लविज्जोवघाइयं।

१२ ९ ८ १० ११ १३

न य केण उवाएण, गिहिजोगं समायरे ॥२१॥

(छाया)

श्रुतं वा यदिवा दृष्टं नालपेत् औपघातिकम्।
न च केन उपायेन गृहियोगं समाचरेत् ॥२१॥

॥ टीका ॥

'सुयं वा' इत्यादि।

श्रुतं वा=परमुखात् श्रवणविषयीकृतं वाक्यजातं, यदिवा=अथवा दृष्टं=स्वयमेव चक्षुर्विषयीकृतं वस्तुजातम् औपघातिकम्=उपघातकारणं परपीडाकरं नालपेत्=न कथयेत् पृष्टोऽपीतिशेषः यथाश्रुतदृष्टभाषणेन संयमोपघातो भवतीति पृष्टोऽपि स्वपरहितं प्रियं चाल्पमेव वदेदिति पिण्डितार्थः। केन च=केनापि, 'च' शब्दोऽप्यर्थकः, उपायेन=कारणेन, गृहियोगं=गृहस्थसम्बन्धम्=इतस्ततो वार्ता करणादिरूपं, तद्बाललालनादिरूपम्, आरम्भसमारम्भादिरूपं वा न समाचरेत्=न कुर्यादित्यर्थः ॥२१॥

'सुय वा' इत्यादि। कानों सुनी हुई और आखों से देखी हुई बात किसी को पीडा पहुचाने वाले हो तो पूछने पर भी न कहे, तात्पर्य यह कि देखी सुनी सब बातों के कहने से सयम का उपघात होता है इस लिए पूछे जाने पर भी उतनी ही बात कहनी चाहिए जो अपने को और पर को हित तथा प्रिय हो। तथा किसी भी कारण से गृहस्थ सम्बन्ध अर्थात् गृहस्थ की इधर उधर बातें करना, बालक का लाड करना पुचकारना आदि और आरभ समारभ आदि क्रियाएँ न करे ॥२१॥

सुयवा० ઇત્યાદિ કાનથી સાભળેલી અને આખથી જોએલી વાત કોઇને પીડા પહોચાડનારી હોય, તો પૂછતા છતા પણ ન કહેવી તાત્પર્ય એ છે કે જોએલી સાભળેલી બધી વાતો કહેવાથી સયમનો ઉપઘાત થાય છે તેથી પૂછવામા આવ્યા છતા પણ એટલી જ વાત કહેવી જોઇએ કે જે પોતાને તથા પરને હિતકારક તથા પ્રિય હોય કોઇપણ કારણે ગૃહસ્થ સબધી અર્થાત્ ગૃહસ્થની આમતેમ વાતો કરવી, બાળકને લાડ લડાવવા કે આરભ સમારભ આદિ ક્રિયાઓ ન કરવી (૨૧)

॥ मूलम् ॥

५ ७ ६ ८ ९
निट्ठाण रसनिज्जूढ, भद्दग पावग ति वा।
१ ३ २ ४ ११ १० १२ १३
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा, लाभालाभं न निद्दिसे ॥२२॥

॥ छाया ॥

निष्ठान रसनिर्यूढं भद्रक पापकम् इति वा।
पृष्टो वाऽपि अपृष्टो वा लाभालाभं न निर्दिशेत् ॥२२॥

॥ टीका ॥

'निट्ठाण' इत्यादि।

अत्र कीदृश भक्तपान भवद्भिर्लब्धम्? इति केनचित् पृष्टोऽपृष्टोवा साधुः निष्ठान=सुरस (लब्ध चेद्) भद्रकमिति=शोभनमिति, तथा रसनिर्यूढ=विरस-(लब्धं चेद्) पापकमिति=अशोभनमिति, तथा "भवद्भिर्भिक्षा लब्धा न वा" इति सामान्यतः पृष्टोऽपृष्टो वा लाभालाभं=लाभश्चालाभश्चेति समाहारद्वन्द्वः भिक्षाप्राप्त्यप्राप्ती न नि शेत्, भिक्षा प्राप्तेति अथवा भिक्षा न प्राप्तेति न कथयेदित्यर्थः। एवं भाषणे सति साध्वसंतोष-लोलुपता-प्रवचनलघुतादिदोष-

'निट्ठाण' इत्यादि। 'आज आपको कैसा आहार मिला है?' ऐसा किसी के पूछने पर या नहीं पूछने पर भी साधु यह न कहे कि 'सरस मिला है अथवा नीरस मिला है' तथा 'आज आपको भिक्षा मिली है कि नहीं?' इस प्रकार पूछने पर या नहीं पूछने पर भी साधु यह न कहे कि-'आज भिक्षा मिली है या नहीं मिली' अर्थात् न यह कहे कि मिली है और न यही कहे कि-नहीं मिली है, क्योंकि, ऐसा भाषण करने से साधु में असंतोष,

निट्ठाण० ઇત્યાદિ 'આજ આપને કેવો આહાર મળ્યો છે?' એવું કોઇ પૂછે યા ન પૂછે તો પણ સાધુ એમ ન કહે કે સરસ મળ્યો છે અથવા નીરસ મળ્યો છે 'આજ આપને ભિક્ષા મળી છે કે નહિ? એવું કોઇ પૂછે યા ન પૂછે તો પણ સાધુ એમ ન કહે કે—આજ ભિક્ષા મળી છે કે નથી મળી અર્થાત્ એમ ન કહે કે મળી છે અને એમ પણ ન કહે કે-મળી નથી, કારણ કે એવું ભાષણ કરવાથી સાધુમાં અસંતોષ, લોલુપતા, પ્રવચનની લઘુતા આદિ દોષ આવે છે એટલે-

प्रसक्तेरिति भावः। दृष्टः सन् साधुः 'सर्वदा साधूनामानन्दः' इत्यादि भाषया समादधीतेति साधुसामाचारी ॥२२॥

(मूलम्)

७ ५ ४ ६ ३ १ २
न य भोयणम्मि गिद्धो, चरे उंछं अयपिरो ।
८ १० १३ ९ १० ११
अफासुय न भुंजिज्जा, कीयमुद्देसिआहडं ॥२३॥

॥ छाया ॥

न च भोजने गृद्धः चरेदुञ्छमजल्पन्।
अप्रासुकं न भुञ्जीत, क्रीतमौद्देशिकमाहृतम् ॥२३॥

॥ टीका ॥

उञ्छं=ज्ञाताज्ञातकुले सधनाधनकुले वा, सप्तमीस्थाने प्राकृतत्वाद् द्वितीया, अजल्पन् = मात्रनिरवद्यतासंशयनिवर्तकातिरिक्तभाषणमकुर्वन् चरेद् भिक्षार्थ मिति शेषः। भोजने च=भक्तपानादौ च गृद्धः=स्पृहयालुः (साङ्काक्षः) न भवेद् सरसभक्तपानाभिलाषेण सुसमृद्धकुलमात्रगामी न भवेदित्यर्थः। तत्रापि अप्रासुक

लोलुपता, प्रवचन की लघुता आदि दोष आजाते हैं अत केवल यही कहे कि 'साधुओं को तो सदैव आनन्द है,' ऐसी साधुसमाचारी है ॥२२॥

'न य भोयणम्मि' इत्यादि। ज्ञात अज्ञात अथवा सधन और निर्धन कुलों में निरवद्यता सावद्यता का संशय निवारण करने के अतिरिक्त और न बोलता हुआ भिक्षा के लिए गमन करे। भक्तपान में लोलुपी न होवे, अर्थात् सरस भोजन पान की इच्छा से

કેવળ એમ જ કહે કે-'સાધુઓને તો સદૈવ આનંદ જ આનંદ છે' એવી સાધુ સમાચારી છે (૨૨)

नयभोयणम्मि० ઇત્યાદિ- જાણીતા-અજાણ્યા અથવા ધનવાન નિર્ધન કુળોમાં નિરવદ્યતા-સાવદ્યતાનો સંશય નિવારવા સિવાય બીજું કાંઈ ન બોલતા ભિક્ષાને માટે સાધુ ગમન કરે ભક્ત-પાનમાં લોલુપી ન થાય, અર્થાત્ સરસ ભોજન પાનની ઇચ્છાથી સંપત્તિશાળીકુળોમાંજ ભિક્ષાને માટે ન જાય તથા અચિત્ત-મિશ્ર

सचित्तमिश्रादि, तथा क्रीतम्, तथौद्देशिक, तथा-आहृतं न भुञ्जीत=अनुपयोगतः कथचिद् गृहीतमपि नाभ्यवहरेदित्यर्थः। क्रीतादिक प्राग्व्याख्यातमेव ॥२३॥

(मूलम्)

सनिहिं च न कुव्विज्जा, अणुमायपि सजए।
मुहाजीवी असबद्धे, हविज्ज जगनिस्सिए ॥२४॥

॥ छाया ॥

सनिधिं च न कुर्यात् अणुमात्रमपि सयतः।
मुधाजीवी असंबद्धः भवेज्जगन्निश्रितः ॥२४॥

॥ टीका ॥

'सनिहिं' इत्यादि।

मुधाजीवी=शरीरपोषणप्रयोजनरहितजीवनः निरवद्यभिक्षाग्राहक इत्यर्थ' असबद्धः=निर्लिप्तः रागद्वेषविनिर्मुक्त इत्यर्थः सयतः=साधु' अणुमात्रमपि = अल्पमपि तिलतुषपरिमितमपीत्यर्थ. सनिधिं=नक्तं भक्तादिसचयं न कुर्यात, एवभूत'

सम्पत्तिशाली कुलों मे ही भिक्षा के लिए, न जाय। तथा सचित्त मिश्र आदि अप्रासुक, क्रीत, औद्देशिक, और अभ्याहृत आहार यदि असावधानी के कारण लेनेमें आ जाय तो उसका उपभोग न करे। क्रीत आदि का स्वरूप पहले कहा जा चुका है ॥२३॥

'सनिहिं' इत्यादि। शरीर को पुष्ट करने के प्रयोजन से रहित निरवद्य भिक्षा ग्रहण करने वाले, रागद्वेष के त्यागी साधुओं को चाहिए कि वे अणुमात्र भी अर्थात् थोडा भी आहार आदि की सनिधि (रात्रि में सचय) न करे। ऐसा करने वाले, त्रस स्थावर रूप

આદિ અપ્રાસુક, ક્રીત, ઔદ્દેશિક, અને અભ્યાહૃત આહાર જો અસાવધાનીને કારણે ગ્રહીત થઈ જાય તો પણ તેનો ઉપભોગ ન કરે ક્રીત આદિનું સ્વરૂપ પહેલા કહેવામાં આવી ગયું છે (૨૩)

सनिहिं ઇત્યાદિ શરીરને પુષ્ટ કરવાના પ્રયોજનથી રહિત નિરવદ્ય ભિક્ષા ગ્રહણ કરનાર રાગદ્વેષના ત્યાગી સાધુઓએ અણુમાત્ર પણ અર્થાત્ થોડા પણ આહાર આદિની સનિધિ (રાત્રિમાં સચય) રાખવી નહિ એમ કરનાર સાધુઓ

सन्नेव जगन्निश्रितः=त्रसस्थावरात्मकसकलजीवपालको भवेत्। 'मुहाजीवी' इति पदेन सकलसावद्यक्रियाऽऽचरणभीरुत्वमावेदितम्। 'असंबद्धे' इतिपदेन पुद्गलेष्वगृद्धत्वं ध्वनितम्॥२४॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५
लूहवित्ती सुसंतुट्ठे, अप्पिच्छे सुहरे सिया।
९ १० ११ ८ ६ ७
आसुरत्तं न गच्छिज्जा, सुच्चाणं जिणसासणं ॥२५॥

॥ छाया ॥

रूक्षवृत्तिः सुसंतुष्टः अल्पेच्छः सुभरः स्यात्।
आसुरत्वं न गच्छेत् श्रुत्वा तद् जिनशासनम् ॥२५॥

॥ टीका ॥

'लूहवित्ती' इत्यादि।

साधुः, रूक्षवृत्तिः=रूक्षैः=नीरसैर्वृत्तिः=जीविका यस्य स तथोक्तः, वल्लचणकान्तप्रान्तादिनीरसभिक्षान्नजीवीत्यर्थः, तथा सुसंतुष्टः=यथाप्राप्तपरितुष्टः, नीरसे

जगत के पालन करने वाले होते हैं। गाथा में 'मुहाजीवी' पदसे 'साधु को समस्त सावद्य व्यापार करने में भीरु होना चाहिए' एसा प्रगट किया है। तथा 'असंबद्धे' पद से यह सूचित किया है कि 'साधु को आहार आदि किसी वस्तु में आसक्ति नहीं करनी चाहिए' ॥२४॥

'लूहवित्ती' इत्यादि। साधु, रूखे सूखे अर्थात् वाल, चना आदि अन्त प्रान्त भिक्षा से संतुष्ट रहने वाला जैसी जितनी निर्दोष भिक्षा मिल जाय उसीमें संतुष्ट-अधिक की इच्छा

ત્રસ સ્થાવરરૂપ જગતનું પાલન કરનારા બને છે ગાથામાં मुहाजीवी શબ્દથી એવો અર્થ પ્રકટ કર્યો છે કે સાધુએ સમસ્ત સાવદ્ય વ્યાપાર કરવામાં ભીરૂ થવુ જોઈએ તથા असंबद्धे શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે સાધુએ આહાર આદિ કોઈ વસ્તુમાં આસક્તિ ગખવી ન જોઈએ

लूहवित्ती ઇત્યાદિ સાધુ, લૂખા સૂકા અર્થાત્ વાલ ચણા આદિ અંતપ્રાંત ભિક્ષાથી સંતુષ્ટ રહેનારા, જેવી જેટલી નિર્દોષ ભિક્ષા મળી જાય તેમાં સંતુષ્ટ,

स्वल्पे वा भक्तपानादौ लब्धे तदधिकजिघृक्षारहितः, एवमल्पेच्छः=अल्पाभिलाषी, तथा सुभरः=सुतृप्तः परपीडोत्पादनेन भिक्षोपादानकामनारहितः स्यात्=भवेत्, परतु तत्=लोकत्रयमथित जिनशासनं=क्रोधपरिणामावेदका जिनशिक्षा श्रुत्वा = समाकर्ण्य आसुरत्वम्=आसुरभावं क्रोध न गच्छेत्=न धारयेत्। रूक्षभिक्षादिना रूक्षवचनादिना वा चित्त न विकारयेदिति भावः॥

'लूहवित्ती' इत्यनेन रसागृद्धित्वं सूचितम्, 'सुसतुट्ठे' इत्यनेनालाभादि-परिषहविजेतृत्वमावेदितम्। 'अप्पिच्छे' इत्यनेन अनिदानत्वं प्रकटितम्। 'सुहरे' इत्यनेन यथालाभसन्तुष्टत्वं प्रत्यायितम्। 'आसुरत्त न गच्छिज्जा' इत्यनेन कषाय परित्याग एव जिनशासनरहस्यमिति द्योतितम् ॥२५॥

न रखने वाला, स्वल्प इच्छा वाला तथा पर को पीडा न पहुचा कर अन्न पान ग्रहण करने वाला होवे। तीन लोकमें प्रसिद्ध, क्रोधका कटुक परिणाम प्रतिपादन करने वाले प्रवचन को सुनकर तदनुसार कदापि क्रोध न करे। रुखी सूखी भिक्षा मिलने से अथवा किसी के कठोर वचन से चित्त में खेद न लावे।

'लूहवित्ती' पदसे 'मन को वशमें करने वाला होना चाहिए' यह ध्वनित किया गया है। 'सुसतुट्ठे' पदसे 'अलाभ परीषह को जीतने वाला हो' यह प्रगट किया है।

'अप्पिच्छे' से निदानरहितता सूचित की है। 'सुहरे' शब्द से जितना आहार मिलजाय उतने ही से सन्तोष करना प्रगट किया है। 'आसुरत्त न गच्छिज्जा' इस पदसे 'कषाय का त्याग करना ही जिनशासन का रहस्य है' यह प्रगट किया गया है ॥२५॥

અધિકની ઇચ્છા ન રાખનારો, સ્વલ્પ ઇચ્છા વાળો તથા પરને પીડા ન પહોચાડીને અન્નપાન ગ્રહણ કરનારો બને ત્રણ લોકમા પ્રસિદ્ધ ક્રોધનું કડવુ પરિણામ પ્રતિપાદન કરનારા જિન પ્રવચનને સાભળીને તદનુસાર કદાપિ ક્રોધ ન કરે લૂખી-સૂકી ભિક્ષા મળવાથી અથવા કોઇના કઠોર વચનથી ચિત્તમા ખેદ ન લાવે

લૂહવિત્તી શબ્દથી મનને વશ રાખનાર થવુ જોઇએ એમ સૂચિત કર્યું છે સુસતુટ્ઠે શબ્દથી અલાભ પરીષહને જીતનાર બને એમ પ્રકટ કર્યું છે અપ્પિચ્છે થી નિદાનરહિતતા સૂચિત કરી છે સુહરે શબ્દથી જેટલો આહાર મળી જાય તેટલા થી જ સતોષ રાખવાનુ પ્રકટ કર્યું છે आसुरत्त न गच्छिज्जा એ પદથી કષાયનો ત્યાગ કરવો એજ જિનશાસનનુ રહસ્ય છે, એમ પ્રકટ કર્યું છે (૨૫)

॥ मूलम् ॥

कन्नसुक्खेहिं सद्देहिं, पेम नाभिनिवेसए।

दारुण कक्कसं फासं, काएण अहिआसए ॥२६॥

॥ छाया ॥

कर्णसौख्यैः शब्दैः प्रेम न अभिनिवेशयेत्।

दारुणं कर्कशं स्पर्श कायेन अधिसहेत ॥

॥ टीका ॥

' कन्नसुक्खेहिं ' इत्यादि—

साधु' कर्णसौख्यैः श्रवणेन्द्रियसुखसाधकैः शब्दैः सह, सहार्थे तृतीया, सप्तम्यर्थे वा तृतीया प्राकृतत्वात्, प्रेम=अनुरागं न अभिनिवेशयेत्=न कुर्यात्, ललनामृदुलालपनतद्भूषणझणत्कारस्वरतालसमलङ्कृतगानवीणादिशब्दसमाकर्णनाऽऽसक्तो न स्यादित्यर्थः। अपि च कायेन=देहेन दारुणं=दुःखदायकं, कर्कशं=कठोरं, स्पर्शम् अधिसहेत, तत्र द्वेषं न कुर्यादित्यर्थः। उपलक्षणं चैतत् अनुक्तेन्द्रिय विषयाणामपि, तथा च सकलेन्द्रियविषयेषु रागद्वेषौ परिवर्जयेदिति भावः ॥२६॥

'कन्नसुक्खेहिं' इत्यादि। साधु, श्रवणेन्द्रिय को सुख उपजाने वाले मनोज्ञ शब्दों में स्नेह (राग) न करे, अर्थात् स्त्री आदि का कोमल मीठी भाषा, उसके भूषणों की झनझनाहट, स्वर और तालसे शोभित गान अथवा वीणा आदि के शब्द सुनकर अनुरक्त न होवे। शरीर से दुःखद और कर्कश स्पर्श सहन करे, अर्थात् ऐसे स्पर्श से द्वेष न करे। यह कथन अन्य इन्द्रिय विषयों का भी उपलक्षण है इस लिए इन्द्रियों के किसी भी विषय में राग द्वेष नहीं करना चाहिए ॥२६॥

कन्नसुक्खेहिं. ઇત્યાદિ સાધુ શ્રવણેન્દ્રિયને સુખ ઉપજાવનારા મનોજ્ઞ શબ્દોમાં સ્નેહ (રાગ) ન રાખે, અર્થાત્ સ્ત્રી આદિની કોમળ મીઠી ભાષા, એના ભૂષણોનો ઝણઝણાટ, સ્વર અને તાલથી શોભિત ગાન અથવા વીણા આદિના શબ્દ સાંભળીને અનુરક્ત ન થાય શરીરથી દુઃખદ અને કર્કશ સ્પર્શ સહન કરે અર્થાત્ એવા સ્પર્શથી દ્વેષ ન કરે, આ કથન અન્ય ઇંદ્રિયવિષયોનું પણ ઉપલક્ષણ છે તેથી ઇંદ્રિયોના કોઇ પણ વિષયમાં રાગ દ્વેષ ન કરવા જોઇએ (૨૬)

॥ मूलम् ॥

२ ३ ४ ५ ६ ७
खुहं पिवास दुस्सिज्जं, सीउण्हं अरइं भय।
८ १ ९ १०
अहिआसे अव्वहिओ, देहदुक्खं महाफलं ॥२७॥

॥ छाया ॥

क्षुधं पिपासा दुःशय्या शीतोष्णम् अरतिं भयम्।
अधिसहेत अव्यथितो देहदुःखं महाफलम् ॥२७॥

(टीका)

'खुह' इत्यादि—

साधुः अव्यथितः=अनुद्विग्नः सन् क्षुध=बुभुक्षा पिपासा=जलपानेच्छा-दुःशय्या=दुर्वसतिं, विषमभूम्यादिरूपं शयनस्थानं वा, शीतोष्ण = प्रतीतम्, अरतिं=मोहनीयकर्मोद्भवा नो कषायलक्षणा, भय=चौरव्याघ्रादिजनिता भीतिं अधि-सहेत=तितिक्षेत, यतः देहदुःखं=कायक्लेशसहिष्णुत्वं महाफलं=निरन्तरशात-सपातप्राप्तिलक्षणमोक्षफलकं भवतीति शेषः। द्वादशविधतपोऽन्तःपातित्वेन कायक्लेशसहिष्णुताया मोक्षसाधकत्वमिति भावः ॥२७॥

'खुह' इत्यादि। साधु, उद्विग्न (खिन्न) न होता हुआ क्षुधा, पिपासा, विषम-शयन आदि के स्थान, शीत उष्ण, मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न अरति नामक नो-कषाय, और चोर व्याघ्र आदि से होने वाले भयको सहन करे, क्योंकि—कायक्लेश को सहन करने से निरंतर सुखवाला मोक्षफल प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि बारह प्रकार की तपस्या में कायक्लेश भी एक तप है इस लिए उसके सहन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥२७॥

खुह० ઇત્યાદિ સાધુ ઉદ્વિગ્ન (ખિન્ન) ન બના ક્ષુધા પિપાસા, વિષમ શયન આદિના સ્થાન, ટાઢ તાપ, મોહનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન અરતિ નામક નોકષાય, અને ચોર વાઘ આદિથી થતા ભયને સહન કરે કારણ કે કાયક્લેશને સહન કરવાથી નિરંતર સુખવાળુ મોક્ષફળ પ્રાપ્ત થાય છે તાત્પર્ય એ છે કે બાર પ્રકારની તપસ્યામા કાયક્લેશ પણ એક તપ છે, તેથી એને સહન કરવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે (૨૭)

॥ मूलम् ॥

२ १ ३ ४
अत्थंगयंमि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए।
६ ५ ७ ८ ९
आहारमाइय सव्वं, मणसावि ण पत्थए ॥२८॥

(छाया)

अस्तंगते आदित्ये पुरस्ताच्च अनुद्गते।
आहारादिकं सर्वं मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ॥२८॥

॥ टीका ॥

' अत्थंगयमि ' इत्यादि—

आदित्ये=सूर्ये अस्तगते सति=सूर्यास्तमयनानन्तरं प्रदोषकालादारभ्य निशावसानकाले यावदित्यर्थः। पुरस्तात्=प्राच्यां दिशि अनुद्गते च सति आदित्ये इति शेषः, सूर्योदयात् प्राक् प्रभातसमये इत्यर्थः। सर्वं=सर्वविधम् आहारादिकम्=अन्नादिकं मनसापि साधुर्न प्रार्थयेत्=नेच्छेत् किं पुनः संनिधिकरणमिति, साधुना सूर्यास्तगमनानन्तरं सूर्योदयात् प्राग् भोजनं सर्वथा हेयम्, बहुतरजीवहिंसाममतादिदोषप्रसङ्गादितिभावः ॥२८॥

'अत्थगयमि' इत्यादि। जब सूर्य अस्त हो जाय अर्थात् सन्ध्याकाल आरंभ होने पर रात्रि के अन्त तक जब तक कि सूर्य पूर्व दिशामें उदित न हो जाय, तब तक सब प्रकार के अन्नादि आहार को साधु मनसे भी न चाहे, सन्निधि रखने की तो बात ही क्या है? तात्पर्य यह कि सूर्यास्त के बाद सूर्योदय तक आहार का सब प्रकार से परिहार करना चाहिए, क्यों कि उसमें बहुतेरे प्राणियों की हिंसा ममता आदि दोष लगते हैं ॥२८॥

अत्थंगयमि० ઇત્યાદિ જ્યારે સૂર્ય અસ્ત થાય અર્થાત્ સંધ્યાકાળનો આરંભ થવાથી માંડી રાત્રિના અંત સુધી—જ્યાંસુધી સૂર્ય પૂર્વ દિશામાં ઉદિત ન થાય ત્યાં સુધી સર્વ પ્રકારના અન્નાદિ આહારને સાધુ મનથી પણ ન ચાહે સંનિધિ રાખવાની તો વાત જ શી? તાત્પર્ય એ છે કે સૂર્યાસ્તની પછી સૂર્યોદય સુધી આહારનો સર્વ પ્રકારે પરિહાર કરવો જોઈએ, કારણકે તેમાં ઘણાય પ્રાણીઓની હિંસા મમતા આદિ દોષ લાગે છે (૨૮)

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४
अंतिंतिणे अचवले, अप्पभासी मियासणे।
७ ५ ६ ८ ९ १० ११
हविज्ज उयरे दंते, थोवं लद्धुं न खिंसए ॥२९॥

॥ छाया ॥

अतिंतिणः अचपलः अल्पभाषी मिताशनः।
भवेद् उदरे दान्तः स्तोकं लब्ध्वा न खिंसयेत् ॥२९॥

॥ टीका ॥

'अतिंतिणे' इत्यादि—

साधुः, अतिन्तिणः=तिन्तिणो नाम भिक्षाया अप्रदाने गृहस्थगर्हणापरकविविधवाक्यभाषणशीलः, न तितिणः अतिन्तिणः भवेत्–भिक्षाया अलाभेऽपि तन्निमित्तं किंचिदपि कर्कशादिवचनं न भाषेत इत्यर्थः, अचपलः=निश्चलचेतोवचनकायः, अल्पभाषी=भिक्षाग्रहणकालेऽन्यदापि परिमितवचनः, मिताशनः=प्रमाणोपेताहारः, तथा उदरेदान्तः=उदरपूरणानुचिन्तनरहितः भवेत्। एवं स्तोकं प्रचुरतरमधुरान्नादिसरसवस्तुसत्त्वेऽपि ततः ईषद् नीरसं वा किंचिल्लब्ध्वा न

'अतिंतिणे' इत्यादि। भिक्षा का लाभ न होने पर गृहस्थ का गर्हणा करनेवाला तितिण कहलाता है। साधु को ऐसा नहीं होना चाहिए। भिक्षा का लाभ न होने पर उस विषय मे कुछ भी बडबडाहट न करे। मन, वचन और काय को चचल न होने दे। भिक्षा ग्रहण करते समय अथवा अन्य समय पर परिमित वचनों का उच्चारण करे और परिमित आहार ग्रहण करे। उदर पूर्ति के लिए चिन्ता न करे। बहुत से स्वादिष्ट पदार्थों में से दाता थोडा सा या नीरस आहार दे तो क्रुद्ध न होवे।

अतिंतिणे० ઇત્યાદિ ભિક્ષાનો લાભ ન થતાં ગૃહસ્થની ગર્હણા કરનાર તિંતિણ કહેવાય છે સાધુએ એવા ન થવું જોઇએ ભિક્ષાનો લાભ ન થતાં એ વિષયમાં કાંઇ પણ બડબડાટ ન કરવો મન વચન અને કાયાને ચંચળ ન થવા દેવી ભિક્ષા ગ્રહણ કરતી વખતે અથવા અન્ય સમયે પરિમિત વચનોનું ઉચ્ચારણ કરવું, અને પરિમિત આહાર ગ્રહણ કરવો ઉદરપૂર્તિને માટે ચિંતા ન કરવી ઘણા સ્વાદિષ્ટ પદાર્થોમાંથી દાતા થોડો યા નીરસ આહાર આપે તો ક્રુદ્ધ ન થવું

निसर्गेन्=न कु-नेद। 'अतितिणो' इतिपदेन मुनेर्भाषासमित्याराधकत्वं गाम्भीर्यं चाविष्कृतम्। 'अचवले' इत्यनेन षड्जीवनिकाययतनापरत्वं प्रदर्शितम्। 'अपभासी' इति पदेन प्रयोजनमन्तरेण मौनावलम्बित्वं विधेयमिति, मयौन भोक्तव्यमिति वा ध्वनितम्। 'मियासणे' इत्यनेन रसनेन्द्रियवशीकर्तृत्वं सूचितम्। 'उयरेदते' इत्यनेन उदराधिकपूरणेन प्रमादप्रसक्तिस्तया स्वाध्यायादिहानिश्चारित्रभङ्गश्चेति बहवो दोषाः समापतन्त्यतोऽन्तप्रान्तादियादृकतादृगन्नादिना क्षुधोपशमनमात्रतत्परत्वमास्थेयमित्यावेदितम् ॥२९॥

'अतितिणे' पद से मुनि की भाषासमिति की आराधकता तथा गम्भीरता प्रगट की है, अर्थात साधु को सदा भाषासमिति में सावधान रहना चाहिए और गम्भीरता रखनी चाहिए।

'अचवल' पदसे षड्जीवनिकाय की यतना में तत्परता प्रदर्शित की है। 'अपभासी' पदसे यह सूचित किया है कि 'साधु को निष्प्रयोजन भाषण न करना चाहिए-अर्थात् वचन गुप्ति का पालन करना चाहिए'। 'मियासणे' पदसे 'रसना इन्द्रिय को वशमें करना चाहिए' ऐसा प्रगट किया है। उयरेदते' इस पदसे यह बताया है कि—'अधिक भोजन करने से प्रमाद आजाता है, प्रमाद से स्वाध्याय आदि क्रियाओं में बाधा पहुंचती और चारित्र में दोष लगता है, इत्यादि अनेक दूषण आजाते हैं अतएव अन्तप्रान्तादि साधारण आहार से भी क्षुधा बुझा लेनी चाहिए ॥२९॥

अतितिणे શબ્દથી મુનિની ભાષા સમિતિની આરાધકતા તથા ગંભીરતા પ્રકટ કરી છે, અર્થાત્ સાધુએ સદા ભાષા સમિતિમાં સાવધાન રહેવું જોઇએ અને ગંભીરતા રાખવી જોઇએ

अचवले શબ્દથી ષડ્ જીવનિકાયની યતનામાં તત્પરતા પ્રદર્શિત કરી છે

अपभासी શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે સાધુએ નિષ્પ્રયોજન ભાષણ ન કરવું જોઇએ અર્થાત વચન ગુપ્તિનું પાલન કરવું જોઇએ मितासणे શબ્દથી રસના ઇન્દ્રિયને વશ કરવી જોઇએ એમ પ્રગટ કર્યું છે उयेद्दते પદથી એમ બતાવ્યું છે કે- અધિક ભોજન કરવાથી પ્રમાદ આવી જાય છે, પ્રમાદથી સ્વાધ્યાય આદિ ક્રિયાઓમાં બાધા પહોંચે છે, અને ચારિત્રમાં દોષ લાગે છે, અને અનેક દૂષણ આવે છે, તેથી કરીને અંતપ્રાંતાદિ સાધારણ આહારથી પણ ક્ષુધા બુઝાવી લેવી જોઇએ (૨૯)

मदो न कर्तव्य इत्याह—'नय' इत्यादि।

(मूलम्)

४ १ ३ ५ ६ ७
न य बाहिर परिभवे, अत्ताण न समुक्कसे।
८ १२ १३ ९ १० ११
सुयलाभे न मज्जेज्जा, जच्चा तवसि बुद्धिए ॥३०॥

॥ छाया ॥

न च बाह्य परिभवेत्, आत्मान न समुत्कर्षयेत्।
श्रुतलाभे न माद्येत जात्या तपसि बुद्ध्या ॥३०॥

॥ टीका ॥

साधुः बाह्यं=स्वस्मात् बहिर्भवो बाह्यः अन्य इत्यर्थः, त न परिभवेत्=न तिरस्कुर्यात, तथा आत्मान न समुत्कर्षयेत्='अहमेवंभूतोऽस्मि, नान्योऽस्ति मम समः' इत्यादि भावना न कुर्यादित्यर्थः। तथा श्रुतलाभे=श्रुत च लाभश्चेति समाहारद्वन्द्वे श्रुतलाभं, तस्मिन् तथोक्ते, तृतीयार्थे सप्तमी प्राकृतत्वात्, श्रुतेन लाभेन चेत्यर्थः ' श्रुतेन=आगमेन विविधागमाभ्यासेनेत्यर्थ, लाभेन=प्रचुरसरसभिक्षाशनादिलाभेन तथा जात्या=ब्राह्मणत्वक्षत्रियत्वादिरूपया तपसि=तृतीयार्थे सप्तमी तपसा षष्ठाष्टमभक्तादिस्वरूपेण वा=अथवा बुद्ध्या=विविधसूक्ष्मार्थपयरहस्यप्रवेशिन्या मत्या न माद्येत='अहं प्रतिष्ठितजातिमानस्मि, तपश्चर्यावानहमस्मि,

---

अब यह बताते हैं कि साधुको मद नहीं करना चाहिए—' न बाहिर ' इत्यादि।

साधु, न दूसरे का तिरस्कार करे और न आत्मप्रशंसा करे कि—"मैं ऐसा हूँ, मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है"। तथा उच्चतम आगमज्ञान का, प्रचुर और सरस अन्नादि आहार के लाभ और अपनी उच्च जाति का, अपने तपस्वीपन का, तथा 'मेरी बुद्धि सूक्ष्म और तीक्ष्ण है' इस प्रकार अपनी बुद्धि के ऐश्वर्य का अभिमान न करे। बुद्धि शब्द उपलक्षण है इस से यह

હવે એમ બતાવે છે કે સાધુએ મદ ન કરવો જોઇએ નબાહિર૦ ઇત્યાદિ

સાધુ બીજાનો તિરસ્કાર કરે નહિ, અને આત્મ પ્રશંસા કરે નહિ કે- 'હુ આવો છુ, તેવો છુ, મારા જેવો બીજો કોઇ નથી,' તથા ઉચ્ચતમ આગમ જ્ઞાન, પ્રચુર અને સરસ અન્નાદિ આહારનો લાભ, પોતાની ઉચ્ચ જાતિ, પોતાનુ તપસ્વીપણુ, તથા 'મારી બુદ્ધિ સૂક્ષ્મ અને તીક્ષ્ણ છે' એ પ્રમાણે પોતાની બુદ્ધિના ઐશ્વર્યનુ અભિમાન કરે નહિ બુદ્ધિ શબ્દ ઉપલક્ષણ છે, તેથી એમ

अहमस्मि मतिभाशाली'–त्यादिरीत्या नाभिमानं कुर्यादित्यर्थः। बुद्धेनुपलक्षणं शिष्याद्यैश्वर्यस्यापि, अनेकदेशानुमत्या परिशिष्टैः कुल-बल रूपैरपि त्रिभिर्न माद्येत्, इत्यपि सूच्यते ॥३०॥

(मूलम्)

१ २ ३ ४ ५ ५ ६
से जाण मजाण वा, कट्टु आहम्मियं पय।
१० ८ ९ ११ १२ १३ १४
सवरे खिप्पमप्पाण, बीयं त न समायरे ॥३१॥

॥ छाया ॥

स ज्ञात्वा अज्ञात्वा, कृत्वा अधार्मिक पदम्।
सवरेत् क्षिप्रमात्मानं, द्वितीय न समाचरेत् ॥३१॥

॥ टीका ॥

'सेजाण' इत्यादि—

सः=निर्ग्रन्थत्वेन प्रसिद्धः साधुः, ज्ञात्वा आभोगेन, अज्ञात्वा अनाभोगेन व अधार्मिकं=मूलोत्तरगुणविराधनरूप पदं=स्थानं कृत्वा=सेवित्वा, क्षिप्र=शीघ्र मात्मानं संवृणुयात्=रक्षेत्, तस्मात्=दोषात् पृथक् कुर्यादित्यर्थः, द्वितीय= द्वितीयवार पुनरित्यर्थः तद्=दोषस्थान न समाचरेत्=न सेवेतेत्यर्थः ॥३१॥

भी समझना चाहिए कि शिष्य आदि सपदा का भी अभिमान न करे। कुल, बल, रूप, इन तीनों का अभिमान भी एकदेश अनुमति से (स्थाली पुलाक न्याय से) निषिद्ध समझना चाहिए क्योंकि इस सूत्र में सब मदों के त्याग करने का अभिप्राय है ॥३०॥

'से जाण'–इत्यादि। निर्ग्रन्थ साधु, जानकर या अनजान में मूल गुण अथवा उत्तर गुणों की विराधना हो जाय तो शीघ्र ही अपनी आत्मा को उस विराधना से पृथक् करे, दूसरी बार, उस दोष का सेवन न करे ॥३१॥

પણ સમજવું કે શિષ્ય આદિ સંપદાનું પણ અભિમાન કરવું નહિ કુળ, બળ, રૂપ, એ ત્રણેનું અભિમાન પણ એક દેશ અનુમતિથી (સ્થાલીપુલાક ન્યાયથી) નિષિદ્ધ સમજવું આ સૂત્રમાં સર્વ મદોનો ત્યાગ કરવાનો અભિપ્રાય રહેલો છે (૩૦)

સેજાણ ઇત્યાદિ નિગ્રન્થ સાધુ જાણે કે અજાણે મૂળ ગુણ અથવા ઉત્તર ગુણોની વિરાધના થઇ જાય તો તુરત જ પોતાના આત્માને એ વિરાધનાથી જુદો પાડી નાખે, બીજીવાર એ દોષનું સેવન ન કરે. (૩૧)

॥ मूलम् ॥

६ ७ ८ ९ १० ११
अणायार परक्कम्म, नेव गूहे न निह्नवे ।
१ २ ३ ४ ५
सुई सया वियडभावे, असंसत्ते जिइंदिए ॥३२॥

॥ छाया ॥

अनाचार पराक्रम्य नैव गूहेत न निह्नुवीत ।
शुचिः सदा विकटभावः असंसक्तो जितेन्द्रियः ॥३२॥

॥ टीका ॥

'अणायार' इत्यादि—

शुचिः=निर्मलः सदा=नित्यं विकटभावः=प्रकटाशयः, यद्वा अविकट-भावः=सरलचित्त इत्यर्थः, असंसक्तः=रागद्वेषरहितः, जितेन्द्रियः=वशीकृतेन्द्रिय-समूहः, अनाचारं=सावद्यक्रिया पराक्रम्य=सेवित्वा नैव गूहेत=आचार्यसमीपे किंचिदपि सगोप्य न कथयेत्, समग्रं ब्रूयादिति भावः। न निह्नुवीत=न सर्वथाऽपलपेत् 'सुई' इति पदेन अनाचारभीरुत्वमावेदितम्। 'वियडभावे' इति पदेन मायावर्जितत्वं व्यञ्जितम्। 'असंसत्ते' इत्यनेन वैराग्यवासितान्तःकरणत्वं द्योतितम्। 'जिइंदिए' इति पदेन प्रायश्चित्तानुष्ठाने कृते पुनः सावद्यकर्माप्रवृत्तत्वं बोधितम् ॥३२॥

'अणायार' इत्यादि। निर्मल, सरल चित्त, रागद्वेष रहित, जितेन्द्रिय साधु अनाचार का (सावद्य क्रिया का) सेवन करके आचार्य के सामने थोडा भी न छिपावे, न सर्वथा गोपन करे।

'सुई' पदसे अनाचारभीरुता, 'वियडभावे' पदसे मायाचाररहितता, 'असंसत्ते' पदसे प्रायश्चित करलेने पर फिर सावद्य व्यापार में प्रवृत्ति न करना चाहिए, यह प्रगट किया गया है ॥३२॥

અણાયાર ઇત્યાદિ નિર્મળ, સરળચિત્ત, રાગદ્વેષ રહિત, જિતેન્દ્રિય (સાધુ) અનાચારનું (સાવદ્ય ક્રિયાઓનું) સેવન કરીને આચાર્યની સમીપે થોડું પણ છુપાવે નહિ કે સર્વથા ગોપન કરે નહિ સુઈ શબ્દથી અનાચાર ભીરુતા, વિયડભાવે શબ્દથી માયાચાર રહિતતા, અસંસત્તે શબ્દથી પ્રાયશ્ચિત કરી લીધા પછી ફરી સાવદ્ય વ્યાપારમાં પ્રવૃત્તિ ન કરવી જોઇએ એમ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે (૩૨)

॥ मूलम् ॥

४ ३ ५ २ १
अमोह वयण कुज्जा, आयरियस्स महप्पणो ।
६ ८ ७ ९ १०
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए ॥३३॥

॥ छाया ॥

अमोघ वचनं कुर्यात्, आर्यस्य महात्मनः ।
तत् परिगृह्य वाचा, कर्मणा उपपादयेत् ॥३३॥

(टीका)

' अमोहं ' इत्यादि—

महात्मनः=पूजनीयस्वरूपस्य, आर्यस्य=गुरोः, वचनं=वाक्यम्, अमोघ=सफल, कुर्यात् । तद् वचन वाचा परिगृह्य=वाचा तथेति कृत्वा स्वं कृत्य कर्मणा=क्रियया, उपपादयेत्=संपादयेत् ॥३३॥

॥ मूलम् ॥

२ १ ३ ४ ८
अधुव जीविय नच्चा, सिद्धिमग्गं वियाणिया ।
१० ९ ६ ७ ५
विणियट्टिज्ज भोगेसु, आउं परिमिअप्पणो ॥३४॥

॥ छाया ॥

अध्रुव जीवित ज्ञात्वा सिद्धिमार्गं विज्ञाय ।
विनिवर्तेत भोगेभ्यः आयुः परिमितमात्मनः ॥३४॥

'अमोह' इत्यादि। पूजनीय आचार्य (गुरु) के वचनों को साधु, सफल करे—उल्लंघन न करे। उनके वचनों को स्वीकार करके कार्यरूपमें परिणत करे ॥३३॥

अमोह ઇત્યાદિ પૂજનીય આચાર્ય (ગુરૂ)ના વચનોને સાધુ સફળ કરે ઉલ્લંઘન ન કરે એમના વચનોનો સ્વીકાર કરીને કાર્યરૂપે પરિણત કરે (૩૩)

॥ टीका ॥

'अधुवं' इत्यादि—

साधुः, जीवितं=जीवनं प्राणधारणमित्यर्थः, अध्रुवम्=अनित्य नश्वरमित्यर्थः, ज्ञात्वा=विदित्वा, सिद्धिमार्गं=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूप, तथा अध्रुवमपि आत्मनः=स्वस्य आयुः=जीवितकाल, परिमित=स्वल्पप्रमाणक देहसयोगवियोगकालानिश्चयत्वेन आगाम्यनन्तरक्षणेऽपि शरीरस्थायित्वानिश्चयाद् अत्यल्पमित्यर्थः, विज्ञाय=निश्चित्य, भोगेभ्यः=विषयेभ्यः, विनिवर्तेत=विरज्येत् ॥३४॥

॥ मूलम् ॥

२ ४ ३ ७ ५ ६ १
बल थामं च पेहाए, सद्धामारुग्गमप्पणो ।
८ १० ९ ११ १२ १३ १४
खित्त काल च विन्नाय, तहप्पाणं निजुजए ॥३५॥

॥ छाया ॥

बलं स्थाम च प्रेक्ष्य श्रद्धामारोग्यमात्मनः ।
क्षेत्रं काल च विज्ञाय तथा आत्मानं नियुञ्जीत ॥३५॥

'अधुव' इत्यादि। जावन अनित्य है–विनश्वर है, ऐसा विचार कर साधु सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्ग को भली भाति जानकर, तथा यह जीवन अनित्य है, न जानें कब इस देह से सयोग छूट जावे, एक क्षण भर भी जीवित रहनेका निश्चय नहीं है, यह भावना भा करके विषयों से विरक्त हो जावे ॥३४॥

अधुव० इत्यादि જીવન અનિત્ય છે- વિનશ્વર છે એવો વિચાર કરીને સાધુ સમ્યગ્ જ્ઞાન સમ્યગ્ દર્શન સમ્યક્ ચારિત્રરૂપ મોક્ષ માર્ગને સારીરીતે જાણી કરીને તથા આ જીવન અનિત્ય છે, ખબર નથી કે ક્યારે આ દેહથી સંયોગ છૂટી જશે, એક ક્ષણ સુધી પણ જીવિત રહેવાનો નિશ્ચય નથી, એ ભાવના ભાવીને વિષયોથી વિરક્ત થઇ જાય (૩૪)

॥ टीका ॥

'बल' इत्यादि—

साधुः आत्मनः=स्वस्य बलं = मानसिकसामर्थ्यं, स्थाम = शारीरिक सामर्थ्यं श्रद्धाम् = आगमोदीरितार्थे दृढप्रत्ययम्, आरोग्य =नैरुज्य, प्रेक्ष्य= दृष्ट्वा, तथा क्षेत्रं, कालं, च-शब्दाद् द्रव्यभावावपि विज्ञाय आत्मानं, तथा=तदनु सारेण आत्मबलस्थामाद्यनुसारेणेत्यर्थः नियुञ्जीत तपश्चर्यादाविति शेषः, तपश्चर्याद्यनुकूलं बलादिकं विज्ञाय तत्र प्रवर्तेत यथा संयमयोगहानिर्न भवेदिति भावः ॥३५॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
जरा जाव न पीलेइ, वाही जाव न वड्ढइ।

१० ९ ११ १२ १३ १४ १५
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥३६॥

(छाया)

जरा यावत् न पीडयति, व्याधिर्यावत् न वर्द्धते।
यावत् इन्द्रियाणि न हीयन्ते, तावत् धर्मं समाचरेत् ॥३६॥

'बल' इत्यादि। साधु, अपनी मानसिक शक्ति, शारीरबल, आगम में प्ररूपित पदार्थों की दृढ श्रद्धा और नीरोगता को देखकर तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को जानकर अर्थात् अपनी शक्ति आदि का निश्चय कर के तपश्चर्या आदि में प्रवृत्त होवे, जिससे संयम योग की हानि न हो ॥३५॥

बल ઇત્યાદિ સાધુ, પોતાની માનસિક શક્તિ, શરીર બળ, આગમમાં પ્રરૂપિત પદાર્થોની દઢ શ્રદ્ધા, અને નીરોગિતાને જોઈને તથા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવને જાણીને, અર્થાત્ પોતાની શક્તિ આદિનો નિશ્ચય કરીને તપશ્ચર્યા આદિમાં પ્રવૃત્ત થાય જેથી સંયમ યોગની હાની થાય નહિ (૩૫)

॥ टीका ॥

'जरा' इत्यादि।

जरा=वार्धक्यं यावत्=यदवधि न पीडयति=अङ्गान्यशैथिल्यादिना न बाधते, व्याधिः=रोगः यावत् न वर्द्धते=शरीर रोगपरतन्त्रं न यावदित्यर्थः, इन्द्रियाणि=श्रोत्रादीनि यावत् न हीयन्ते श्रवणादिशक्तेर्ह्रासो न यावदित्यर्थः, तावत्=तदवधि तदभ्यन्तरे, धर्म श्रुतचारित्रलक्षण, समाचरेत्, मुख्यश्चारित्राराधनकालस्तावदेवेति भावः ॥३६॥

आत्मनः कथ धर्माचरण भवेत् ? इत्युपायं दर्शयति– 'कोहं' इत्यादि—

॥ मूलम् ॥

४ ५ ६ ७ ८ १० ११ ९
कोह माण च माय च, लोहं च पाववड्ढण ।
१४ १२ १३ ३ २ १
वमे चत्तारि दोसाइ, इच्छंतो हियमप्पणो ॥३७॥

॥ छाया ॥

क्रोधं मान च माया च लोभं च पापवर्द्धनम् ।
वमेत् चतुरो दोषान् इच्छन् हितमात्मनः ॥३७॥

'जरा' इत्यादि। जब तक बुढापे के कारण शरीर में शिथिलता नहीं आती, शरीर को रोग नहीं आ घेरते, इन्द्रियों का शक्ति का ह्रास नहीं होता, तब तक–इसी बीच में श्रुतचारित्र रूप धर्म का खूब आचरण कर लेना चाहिए। चारित्र की आराधना का मुख्य काल यही है। वृद्धावस्था आदि में कौन जाने क्या दशा हो जाय ? ॥३६॥

जरा० ઇત્યાદિ જ્યાં સુધી વૃદ્ધાવસ્થાને કારણે શરીરમાં શિથિલતા નથી આવતી, શરીરને રોગો આવીને ઘેરતા નથી, ઇંદ્રિયોની શક્તિનો હ્રાસ નથી થતો, ત્યાં સુધી–એ સ્થિતિ ॥ વચ્ચે શ્રુત ચારિત્ર રૂપ ધર્મનું આચરણ ખૂબ કરી લેવું જોઈએ ચારિત્રની આરાધનાનો મુખ્ય કાળ એજ છે વૃદ્ધાવસ્થા આદિમાં કોણ જાણે છે કે કેવી દશા થઈ જશે? (૩૬)

॥ टीका ॥

आत्मनः=स्वस्य हितं=कल्याणम् इच्छन्=अभिलषन् साधुः, क्रोधं क्रोधः= क्रोधमोहनीयोदयसमुत्थोऽक्षान्तिपरिणतिरूपो जीवस्य विभावपरिणतिविशेष स्तम्, मानम्=मन्यते-अन्यं स्वापेक्षया हीनं येन स मानः=मानमोहनीयोदय समुत्थोऽन्यहीनतामननलक्षण आत्मनो विभावपरिणतिविशेषः, तम्, मायां च=माया=मायामोहनीयोदयसमुत्पन्नस्वपरप्रतारणलक्षणो जीवस्य विभावपरिणामविशेषः, ताम्, पापवर्द्धनं=पापनिदानं लोभं च = लोभः = लोभमोहनीयोदयसमुद्भूतो द्रव्याद्याकाङ्क्षारूपो जीवस्य विभावपरिणामः, तम्। एतान् चतुरः=चतुःसंख्यकान्, दोषान् =चारित्रमालिन्यकारकान्, वमेत् = त्यजेत् तदुक्तम्—

"लोभात् प्रभवति क्रोधो, लोभात् कामः प्रजायते।
लोभान्मोहश्च नाशश्च, लोभः पापस्य कारणम्" ॥३७॥

'कोहं' इत्यादि। अपनी आत्मा का हित चाहने वाला साधु, क्रोधमोहनीय के उदय से होने वाले अक्षमा रूप आत्मा के विभावपरिणामरूप क्रोध को, दूसरे की हीनता का भान करने वाले मानमोहनीय के उदय से उत्पन्न होने वाले आत्मा के विभावपरिणामरूप मान को, माया मोहनीय के उदय से उत्पन्न होने वाले छल कपट रूप आत्मा के विभाव परिणाम, तत्स्वरूप माया को, तथा लोभमोहनीय के उदय से होने वाले द्रव्यादि की आकाङ्क्षारूप आत्मा के विभाव परिणाम लोभ को, अर्थात् चारित्र को दूषित करने वाले इन चारों दोषों को दूर करदे-त्यागदे ॥३७॥

कोहं ઇત્યાદિ પોતાના આત્માનું હિત ચાહનાર સાધુ, ક્રોધ મોહનીયના ઉદયથી ઉત્પન્ન થતા અક્ષમા રૂપ આત્માના વિભાવપરિણામ રૂપ ક્રોધને બીજાની હીનતાનું ભાન કરાવનાર માનમોહનીયના ઉદયથી ઉત્પન્ન થતા આત્માના વિભાવપરિણામ રૂપ માનને, છળ કપટ રૂપ આત્મપરિણામ તત્સ્વરૂપ માયાને, તથા લોભ મોહનીયના ઉદયથી થતા ઇચ્છારૂપ આત્માના વિભાવ પરિણામ લોભને, અર્થાત્ ચારિત્રને દૂષિત કરનારા એ ચાર દોષોને દૂર કરે ત્યાગે (૩૭)

क्रोधादीना फलमाह—'कोहो' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५
कोहो पीइ पणासेइ, माणो विणयनासणो।
६ ७ ८ ९ १०
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो ॥३८॥

॥ छाया ॥

क्रोधः प्रीतिं प्रणाशयति मानो विनयनाशनः,
माया मित्राणि नाशयति लोभः सर्वविनाशनः ॥३८॥

॥ टीका ॥

क्रोधः प्रीतिं नाशयति, क्रोधज्वलनप्रज्वलितचेतसो वचनेन स्फुलिङ्ग-वर्षणेनेव भृशमुद्विग्नास्ततो विरज्यन्ते जना इति भावः। मानः=गर्वः विनयनाशन. विनयोपघातकत्वात्, तीर्थंकरगुर्वादिमर्यादाऽतिक्रमणपूर्वककार्योपक्रमणहेतुत्वाच्च गर्वश्चारित्रोपघातक इति भावः, माया मित्राणि नाशयति, कपटेन जना विरज्यन्ते इति भाव'। लोभ' सर्वविनाशनः चारित्रादिसकलगुणमूलोन्मूलक इति भावः ॥३८॥

क्रोधादि कपायों का फल कहते हैं— 'कोहो' इत्यादि।

जैसे चिनगारियों का वरसा होने स लोग उद्विग्न हो जाते हैं वैसेही क्रोधाग्नि म प्रज्वलित अन्त करण वाले के वचनों से भी लोग विरक्त हो जाते हैं। अतएव क्रोध प्रीति का नाश कर देता है। मान से विनयका नाश होता है उस से चारित्र का अभाव होता है, क्योंकि यह तीर्थंकर गुरु आदिकी मर्यादा का अतिक्रमण कराता है। माया से मित्र छूट जाते हैं और लोभ तो सर्वस्व का सत्यानाश ही कर डालता है उस म समस्त गुण नष्ट हो जाते हैं ॥३८॥

कोहो ઇત્યાદિ જેમ ચીનગારીઓ ॥ વૃષ્ટિ થવાથી લોકો ઉદ્વિગ્ન થઇ જાય છે તેમ ક્રોધાગ્નિથી પ્રજ્વલિત અંતઃકરણવાળાના વચનોથી પણ લોકો વિરક્ત થઇ જાય છે તેથી ક્રોધ પ્રીતિનો નાશ કરે છે માનથી વિનયનો નાશ થાય છે, તેથી ચારિત્રનો અભાવ થાય છે, કારણકે તે તીર્થંકર ગુરૂ આદિની મર્યાદાનુ અતિક્રમણ કરાવે છે માયાથી મિત્રની મિત્રતા તૂટી જાય છે અને લોભ તો સર્વસ્વનુ સત્યા નાશ જ કરી નાખે છે, તેથી બધા ગુણો નષ્ટ થાય છે (૩૮)

कथं जेतव्याः क्रोधादयः? इत्याह–'उवसमेण' इत्यादि।

(मूलम्)

१ ३ २ ५ ४ ६

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।

८ ७ १० ९ ११

मायमज्जवभावेण, लोहं संतोसओ जिणे ॥३९॥

॥ छाया ॥

उपशमेन हन्यात् क्रोधं, मानं मार्दवेन जयेत्।

मायाम् आर्जवभावेन, लोभं संतोषतो जयेत् ॥३९॥

॥ टीका ॥

उपशमेन=क्षमालक्षणेन क्रोधं हन्यात्=जयेत्-शमयेदित्यर्थः। मार्दवेन=मृदुभावेन विनयालम्बनेन मानं जयेत्, आर्जवभावेन=सरलतया निष्कपटभावेनेत्यर्थः मायां=परवञ्चनलक्षणां जयेत्। संतोषतः=तृप्त्या लोभं जयेत् ॥३९॥

एतद्विजयाभावे किं भवेत्? इत्याह–'कोहो य' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोहो य पवड्ढमाणा।

१२ ११ १३ १० १७ १६ १५

चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥४०॥

तो फिर क्रोधादि कषायोंको कैसे जीते? सो बताते हैं–'उवसमेण' इत्यादि।

क्षमा के द्वारा क्रोध को, विनय से मान को, सरलता (निष्कपटता) से माया को और संतोष से लोभ को जीतना चाहिए ॥३९॥

તો પછી ક્રોધાદિ કષાયોને કેવી રીતે જીતવા? તે બતાવે છે–उवसमेण ઇત્યાદિ.

ક્ષમા દ્વારા ક્રોધને, વિનયથી માનને, સરલતા (નિષ્કપટતા) થી માયાને અને સંતોષથી લોભને જીતવો જોઇએ (૩૯)

॥ छाया ॥

क्रोधश्च मानश्च अनिगृहीतौ, माया च लोभश्च प्रवर्धमानौ।
चत्वार एते कृत्स्नाः कषायाः, सिञ्चन्ति मूलानि पुनर्भवस्य ॥४०॥

(टीका)

क्रोधश्च मानश्च, उभौ अनिगृहीतौ, =क्षमाविनयापरिशीलनेनाऽविजितौ, माया च लोभश्च उभौ प्रवर्धमानौ–आर्जवसतोषानुद्दहनेन प्रकर्षमनुप्राप्तौ, एते चत्वारः क्रोधादयः कृत्स्नाः=समग्राः, यद्वा 'कसिणा' इत्यस्य 'कृष्णाः' इति छाया तेन आत्ममालिन्यकारकत्वात् कृष्णाः कषायाः=कषायपदवाच्याः पुनर्भवस्य=पुनर्जन्मनः ससारस्येत्यर्थः मूलानि=कारणानि मिथ्यात्वादीनि, सिञ्चन्ति=पोषयन्ति वर्द्धयन्तीत्यर्थः ॥४०॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
रायणिएसु णय पउजे, धुवसीलय सयय न हावइज्जा।
८ ९ ११ १०
कुम्मुव्व अल्लीणपलीणगुत्तो, परक्कमेज्जा तव-संजमंमि ॥४१॥

कषायों को नहीं जीतने से दोष बताते है–'कोहो य' इत्यादि।

क्रोध और मान इन दोनो का क्षमा और विनय का अवलम्बन लेकर निग्रह (दमन) न किया जाय तथा माया और लोभ ये सरलता और सन्तोष के न रखने से बढते रहें तो ये आत्मा को मलिन करनेवाले चारों कषाय पुनर्भव के मूल मिथ्यात्वादि-को सींचते हैं– अर्थात बढाते हैं– बारम्बार जन्म मरण के कारण होते हैं ॥४०॥

કષાયોને નહિ જીતવાથી લાગતા દોષો બતાવે છે कोहो य० ઇત્યાદિ—

ક્રોધ અને માન એ બેઉનો, ક્ષમા અને વિનયનું અવલંબન લઈને નિગ્રહ (દમન) ન કરવામાં આવે, તથા માયા અને લોભ એ સરલતા અને સંતોષ ન રાખવાથી વધતા રહે તો એ આત્માને મલિન કરનારા ચારે કષાયો પુનર્ભવના મૂળ મિથ્યાત્વ આદિને સિંચે છે અર્થાત્ વધારે છે–વારંવાર જન્મ મરણના કારણ બને છે (૪૦)

॥ मूलम् ॥

३ ४ २ ६ १ ५
जोगं च समणधम्मंमि, जुंजे अनलसो धुवं ।
८ ९ ७ ११ १२ १०
जुत्तो य समणधम्मंमि, अट्ठं लहइ अणुत्तरम् ॥४३॥

(छाया)

योगं च श्रमणधर्मे युञ्जीत अनलसः ध्रुवम् ।
युक्तश्च श्रमणधर्मे अर्थं लभते अनुत्तरम् ॥४३॥

॥ टीका ॥

'जोगं च' इत्यादि—

साधुः अनलसः=आलस्यशून्यः सन्, आलस्य=कायचित्तयोर्गुरुत्व, तद्रहितः सोत्साह इत्यर्थः श्रमणधर्मे=क्षान्त्यादौ दशविधे साधुकरणीये, योग= त्रिविधं मनोवाक्कायलक्षणं ध्रुवं=निश्चितं, युञ्जीत=कुर्यात् तत्र समाहितो भवे- दित्यर्थः । अत्र फलमुखेन हेतुमाह— श्रमणधर्मे=उक्तलक्षणे युक्तश्च=समाहितो हि च-शब्दो हेत्वर्थकः अनुत्तर=न विद्यते उत्तरम्=उत्कृष्टं यस्मात् तम् केवलज्ञानरूप मित्यर्थः, अर्थम् अर्थ्यते=याच्यते इति- अर्थस्तम्, अभीष्ट=प्रयोजनं फलमिति यावत्, लभते ॥४३॥

'जोगं च' इत्यादि। साधु शारीरिक और मानसिक प्रमाद रहित होकर उत्साह के साथ साधु के लिए पालन करने योग्य क्षान्ति आदि दश श्रमण धर्मों में मन वचन काय को निरंतर लगावे अर्थात् उन्हीं में लीन रहे। जो श्रमण धर्म में तीनों योग लगाता है वह सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान रूपी फल को प्राप्त करता है ॥४३॥

जोगंच ઇત્યાદિ સાધુ શારીરિક અને માનસિક પ્રમાદ રહિત થઈને ઉત્સાહથી સાધુને માટે પાળવાયોગ્ય ક્ષાન્તિ આદિ દશ શ્રમણ ધર્મોમાં મન વચન કાયાને નિરંતર લગાવી રાખે, અર્થાત્ તેમાં લીન રહે જે શ્રમણ ધર્મમાં ત્રણ યોગ લગાવે છે તે સર્વોત્કૃષ્ટ કેવળજ્ઞાનરૂપી ફળને પ્રાપ્ત કરે છે (૪૩)

पूर्वोपदिष्टाचारसिद्ध्यर्थमुपायमाह—'इहलोग०' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ ७ २ ४ ३
इहलोगपारत्तहियं, जेण गच्छइ सुग्गइ।
५ ६ ८ ९
वहुस्सुयं पज्जुवासिज्जा, पुच्छिज्जत्थविणिच्छयं ॥४४॥

॥ छाया ॥

इहलोकपरत्रहितं, येन गच्छति सुगतिम्।
वहुश्रुतं पर्युपासीत, पृच्छेदर्थविनिश्चयम् ॥४४॥

॥ टीका ॥

साधुः-इहलोकपरत्रहितम्=ऐहिकामुष्मिकहितकर, तथा येन=यदुपदेशेन प्राणी सुगतिं=पारम्पर्येण मोक्षं गच्छति त बहुश्रुत=यदा यावन्ति शास्त्राण्युपलभ्यानि तेषा मर्मविदं गुरु पर्युपासीत=विनयभावेन सेवेत, तथा अर्थविनिश्चयं=सूत्रार्थनिर्णय च पृच्छेत् ॥४४॥

पृच्छासमये गुरुसमीपोवेशनप्रकारमाह—'हत्थ' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

३ ४ ५ ६ ७ ८ १
हत्थ पाय च काय च, पणिहाय जिइंदिए।
९ १० ११ १२ २
अल्लीणगुत्तो निसिए, सगासे गुरुणो मुणी ॥४५॥

उक्त आचार की सिद्धि का उपाय बताते है—'इहलोग०' इत्यादि।

जिस समय जितने शास्त्र उपलब्ध हों उनके मर्म के ज्ञाता गुरु महाराज की साधु उपासना (सेवा) करे। उपासना करता हुआ जिससे इह लोक में हित तथा परपरा से मोक्ष की प्राप्ति हो उस अर्थ निश्चय के सम्बन्ध में गुरुमहाराज से पूछे ॥४४॥

ઉક્ત આચારની સિદ્ધિનો ઉપાય બતાવે છે-इहलोग० ઇત્યાદિ

જે સમયે જેટલા શાસ્ત્ર ઉપલબ્ધ હોય તેના મર્મના જ્ઞાતા ગુરૂમહારાજની સાધુ ઉપાસના (સેવા) કરે ઉપાસના કરતા જેથી ઇહલોકમા હિત તથા પરપરાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય એ અર્થના નિશ્ચયના સબધમા ગુરૂ મહારાજને પૂછે (૪૪)

॥ छाया ॥

हस्तौ पादौ च कायं च प्रणिधाय जितेन्द्रियः।
आलीनगुप्तो निषीदेत् सकाशे गुरोः मुनिः ॥४५॥

॥ टीका ॥

जितेन्द्रियः = कृतेन्द्रियनिग्रहो मुनिः=साधुः हस्तौ, पादौ, कायं, च प्रणिधाय = विनयाविष्कारकशरीरसंकोचनं विधाय आलीनगुप्तः=मनोवाक्काय संरक्षणपरः गुरोः सकाशे=समीपे निषीदेत = उपविशेत्, अर्थनिश्चयार्थमिति भावः ॥४५॥

॥ मूलम् ॥

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ।
न य ऊरु समासिज्ज, चिट्ठिज्जा गुरुणंतिए ॥४६॥

॥ छाया ॥

न पक्षतो न पुरतो नैव कृत्या पृष्ठतः।
न च ऊरु समासाद्य तिष्ठेद् गुरूणामन्तिके ॥४६॥

गुरु के समीप किस प्रकार बैठना चाहिए सो कहते हैं—'हत्थं' इत्यादि।

इन्द्रियों का दमन करने वाला साधु गुरु के समीप हाथ, पैर और कायको इस प्रकारका रखे जिससे विनय प्रगट होता हो, तथा मन वचन काय को वश में रखकर गुरुमहाराज के समीप बैठे ॥४५॥

ગુરૂની સમીપે કેવી રીતે બેસવું જોઇએ તે કહે છે હત્થં ઇત્યાદિ

ઇંદ્રિયોનું દમન કરનાર સાધુ ગુરૂની સમીપે હાથ, પગ, અને કાયાને એવી રીતે રાખે કે જેથી વિનય પ્રકટ થાય, તથા મન વચન કાયાને વશ રાખીને ગુરૂ મહારાજની સમીપે બેસે (૪૫)

॥ टीका ॥

'न पक्खओ' इत्यादि।

मुनिः गुरुं न पक्षतः=न पार्श्वतः, न पुरतः=नाग्रतः, नैव पृष्ठतः=नापि पश्चाद्भागे च कृत्वा तिष्ठेत्=उपविशेत्, पार्श्वत उपवेशने एकपङ्क्त्युपवेशननिमित्तकाऽविनयादिदोषाविर्भावात, अग्रत उपवेशने वन्दनकर्तृणामाभिमुख्यप्रतिरोधादिना वन्दनालापाद्यन्तरायसम्भवात, पृष्ठत उपवेशने आचार्यदृष्टिपातपात्रताप्रतिरोधसद्भावाच्चेति भावः। तथा गुर्वन्तिके=गुरोः समीपे ऊरुं समासाद्य=ऊरोरुपरि ऊरुं कृत्वा न तिष्ठेत्=नोपविशेत्, तथा सति अविनयौद्धत्यादिदोषापातादिति भावः ॥४६॥

॥ मूलम् ॥

अपुच्छिओ न भासिज्ज, भासमाणस्स अंतरा।
पिट्ठिमंसं न खाइज्जा, मायामोसं विवज्जए ॥४७॥

'न पक्खओ' इत्यादि। साधु, आचार्य आदि तथा जो मुनि दीक्षा में बडे हों उनके न पसवाडे की तरफ बराबरमें बैठे, न आगे बैठे न पीठ की ओर सघटा करता हुआ बैठे। पसवाडे की ओर बैठने से बराबरी पर बैठने के कारण अविनय आदि दोष लगते हैं, आगे बैठने से वन्दना करनेवालों के लिए उनका सामना रुक जाता है अत वन्दना और बोल चाल में विघ्न आजाता है, पीछे की ओर बैठने से आचार्य आदि की दृष्टि नहीं पड सकती, इस के सिवाय गुरु महाराज के समीप पैर पर पैर रखकर भी न बैठे, क्योंकि ऐसे बैठने से अविनय और अहंकार आदि दोष आते हैं ॥४६॥

न पक्खओ ઇત્યાદિ સાધુ, આચાર્ય આદિ તથા જે મુનિ દીક્ષામાં વડા હોય તેમની બાજુની તરફ ન બેસે, તેમની આગળ ન બેસે, પીઠની બાજુએ ન બેસે બાજુની તરફ બેસવાથી બરાબરીએ બેસવાને કારણે અવિનય આદિ દોષ લાગે છે આગળ (મોખરે) બેસવાથી વંદના કરનારા એને માટે એમની સમીપતા રોકાઈ જાય છે તેથી વંદના અને બોલ ચાલમાં વિઘ્ન આવે છે પાછળની બાજુએ બેસવાથી આચાર્ય આદિની દૃષ્ટિ પડી શકતી નથી તે ઉપરાંત ગુરૂ મહારાજની સમીપે પગ પર પગ રાખીને પણ ન બેસવું, કારણ કે એમ બેસવાથી અવિનય અને અહંકાર આદિ દોષ લાગે છે (૪૬)

॥ छाया ॥

अपृष्टो न भाषेत भाषमाणस्य अन्तरा।
पृष्ठमांसं न खादेत् मायामृषा विवर्जयेत् ॥४७॥

॥ टीका ॥

साधुः अपृष्टः=केनाप्यनापृष्टो न भाषेत, तथा भाषमाणस्य=कश्चित् प्रस्तावमालम्ब्य परस्परं वदतः गुरो अन्तरा=मध्ये, प्रस्तुतविषयापरिसमाप्ति समये न भाषेत, तथा पृष्ठमांसं न खादेत्=परोक्षे निन्दावाक्यं न वदेत्, पुरतः प्रियवचनरचनाकौशलेन सद्भावमुपदर्शयन् परोक्षे निन्दादिना तदपराव भाषणं न कुर्यादित्यर्थः। मायामृषा=मायायुक्तमृषा, विवर्जयेत्=परित्यजेत्, न ब्रूयादित्यर्थः ॥४७॥

अपृष्टभाषणादौ दोषान् दर्शयति—'अप्पत्तियं' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

२ १ ३ ६ ७ ५ ४
अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो।
११ ८ १२ १३ १० ९
सव्वसो तं न भासिज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥४८॥

'अपुच्छिओ' इत्यादि। किसी विषय पर आचार्य महाराज बोल रहे हों तो जब तक वह विषय पूरा न हो तब तक बीचही में न बोले। सामने चतुराई के साथ मीठा मीठा बोलकर सद्भाव दिखलाता हुआ परोक्ष में उनकी निन्दा करने वाले वचन न बोले। मायाचार से भरा हुआ असत्य भाषण न करे ॥४७॥

अपुच्छिओ० ઇત્યાદિ કોઇ વિષય પર આચાર્ય મહારાજ વાપરતુ કરી રહ્યા હોય તો જ્યા સુધી એ વિષય પૂરો ન થાય ત્યા સુધી વચમા બોલવુ નહિ સામે ચતુરાઇની સાથે મીઠુ મીઠુ બોલીને સદ્ભાવ બતાવનારાં અને પરોક્ષમા તેમની નિંદા કરનારાં વચનો બોલવા નહિ માયાચારથી ભરેલુ અસત્ય ભાષણ કરવુ નહિ (૪૭)

॥ छाया ॥

अप्रत्ययो येन स्यात् आशु कुप्येत् वा परः।
सर्वशः ता न भाषेत भाषाम् अहितगामिनीम् ॥४८॥

॥ टीका ॥

येन=अपृष्टभाषणेन परस्य अप्रत्ययः = अविश्वासः स्यात्=उत्पद्येत, वा=तथा भाषतो मध्ये भाषणे परः=अन्यो आशु=शीघ्र कुप्येत=क्रोधाविष्टो भवेत्, तथा ताः=तादृशीं परोक्षे निन्दारूपाम् अहितगामिनीम्=अपकारपर्यवसाना भाषा=गिर सर्वशः=सर्वावस्थासु साधुर्न भाषेत=न वदेत्। अप्रत्ययादिसाधन वचन साधुना नोच्चारणीयमिति भावः ॥४८॥

कथ वदे?-दित्याह—'दिट्ठं' इत्यादि।

(मूलम्)

२ ३ ४ ५ ६ ७
दिट्ठ मियं असदिद्ध, पडिपुन्न विय जिय।
८ ९ १० ११ १
अयपिरमणुव्विग्ग, भास निसिर अत्तव ॥४९॥

॥ छाया ॥

दृष्टा मिता असदिग्धा प्रतिपूर्णा व्यक्ता जिताम्।
अजल्पिनीम् अनुद्विग्ना भाषा निसृजेत् आत्मवान् ॥४९॥

'अप्पत्तिय' इत्यादि। किसी भी अवस्था मे साधु को परिणाम में अपकार करने वाली ऐसी वाणी न बोलनी चाहिए जिससे द्वेष उत्पन्न हो जाय, तथा दूसरे को क्रोध आदि आजाय, अर्थात् द्वेष आदि का उत्पादक वचन साधु को कदापि उच्चारण नहीं करना चाहिए ॥४८॥

अप्पत्तियं० ઇત્યાદિ કોઇ પણ અવસ્થામા સાધુએ પરિણામમા અપકાર કરનારી એવી વાણી ન બોલવી જોઇએ કે જેથી દ્વેષ ઉત્પન્ન થાય, તથા બીજાને ક્રોધ આદિ આવી જાય, અર્થાત્ દ્વેષ આદિના ઉત્પાદક વચનો સાધુએ કદાપિ ઉચ્ચારવા ન જોઇએ (૪૮)

॥ टीका ॥

आत्मवान=समाहितः मुनिः दृष्टां=साक्षात्कृतार्थगोचरा, मिता=स्वल्पाक्षराम्, असंदिग्धा=संशयानुत्पादिका संशयनिवर्तिका च, प्रतिपूर्णा=परिपूर्णस्वरवर्णसहिता, व्यक्ता=स्पष्टार्था स्पष्टाक्षरां च, जिता=वशीकृता प्रस्तुतविषयमात्रगामिनीम्, अप्रस्तुतविषयसंचारवर्जितामित्यर्थः, अजल्पनीम्=वाचालतादिदोषवर्जिता, नोच्चैर्न नीचैः किन्तु मृद्वीमित्यर्थः, अनुद्विग्नाम्=अनुद्वेगकारिणीम् उद्वेगानुत्पादिकामित्यर्थः भाषा=गिरं निसृजेत्=उच्चारयेत् ॥४९॥

॥ मूलम् ॥

२ ३ ४

आयारपन्नत्तिधर, दिट्ठिवायमहिज्जगं।

५ ६ ८ ७ ९ १

वायविक्खलिय नचा, न त उवहसे मुणी ॥५०॥

(छाया)

आचारप्रज्ञप्तिधरं दृष्टिवादमधीयानम्।
वाग्विस्खलितं ज्ञात्वा न तम् उपहसेन्मुनिः ॥५०॥

कैसे बोले ? सो कहते हैं—'दिट्ठं' इत्यादि। आत्मार्थी वाला श्रमण, अपनी आँखों देखी हुई बात के विषय में, परिमित, संशय उत्पन्न न करने वाली और संशय को दूर करने वाली, पुष्ट स्वर व्यञ्जन वाली, स्पष्ट और स्पष्ट अर्थ वाली, प्रकरण के ही अनुकूल, प्रकरण से बाहर प्रवृत्त न होने वाली, तथा न बहुत ऊँचे स्वर से और न बहुत नीचे स्वर से बोले जाने वाली, मृदु और उद्वेग को उत्पन्न न करने वाली वाणी उच्चारण करे ॥४९॥

કેમ બોલવું? તે કહે છે દિટ્ઠં૦ ઇત્યાદિ ... ...
આંખે દેખેલી વાતના વિષયમાં, પરિમિત, ...
કરનારી, પુષ્ટ સ્વર વ્યંજનવાળી, સ્પષ્ટ અને ...
પ્રકરણની બહાર પ્રવૃત્ત ન થનારી, તથા ન ...
સ્વરે બોલાતી મૃદુ અને ઉદ્વેગને ઉત્પન્ન ન ...

॥ टीका ॥

'आयार' इत्यादि।

मुनिः=साधुः आचारप्रज्ञप्तिधरम्=आचाराङ्ग-व्याख्याप्रज्ञप्ति-धारकं, यद्वा आचारशब्देनाचाराङ्गाद्यङ्गं, प्रज्ञप्तिशब्देनोपाङ्गं गृह्यते, तयोर्धारकमित्यर्थः तथा दृष्टिवादमधीयानं वाग्विस्खलितं = वाग्विच्छेदवल्लिद ज्ञात्वा=विदित्वा भाषण काले प्रमादादिना स्वरवर्णादित्रुटौ सत्यामिति भावः तम्=आचारप्रज्ञप्तिधरं, दृष्टिवादमधीयानं च, न उपहसेत् = 'कथमेते महाविद्वांसो येषां भाषणं सदूषणं भवती'ति कृत्वा न निन्देदित्यर्थ, तेषां छद्मस्थत्वेन कादाचित्कवाग्विस्खलन-संभावनायाः सत्त्वात्।

'आयार' इत्यादि। आचाराङ्ग और व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) के ज्ञाता, अथवा आचार शब्द से यहा आचाराङ्ग आदि ग्यारह अगों का, और प्रज्ञप्ति शब्द से उपाङ्गों का ग्रहण समझना चाहिए, अत उनके धारी तथा दृष्टिवाद के पाठी मुनि के बोलने समय वचनों में यदि स्खलना हो जाय, अर्थात् बोलते समय प्रमाद आदि किसी कारण से स्वर या व्यञ्जन की त्रुटि रह जाय तो साधु उनकी हँसी न करे क्योंकि छद्मस्थ होने के कारण कभी बोलने में स्खलन हो जाना असभव नहीं है। तात्पर्य यह है कि, जब ऐसे पुरुष भी भाषणमें स्खलित हो जाते हैं तो सामान्य जनकी बात ही क्या है? अतएव किसी की भी हसी नहीं करनी चाहिए।

आयार० ઇત્યાદિ આચારાગ અને વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞપ્તિ (ભગવતી) ના જ્ઞાતા, અથવા આચાર શબ્દથી અહીં આચારાગ આદિ અગીઆર અગોનું અને પ્રજ્ઞપ્તિ શબ્દથી ઉપાગોનું ગ્રહણ સમજી લેવું, એટલે કે એમને ધારણ કરનાર તથા દૃષ્ટિવાદના પાઠી મુનિની, દૃષ્ટિવાદનું અધ્યયન કરતી વખતે વચનોમા જો સ્ખલના થઇ જાય, અર્થાત્ બોલતી વખતે પ્રમાદ આદિ કોઇ કારણથી સ્વર યા વ્યજનની ત્રુટિ રહી જાય તો સાધુ તેની હાસી ન કરે કારણકે તે પણ છદ્મસ્થ છે તે કારણે કોઇવાર બોલવામા સ્ખલના થઇ જવાનો અસભવ નથી તાત્પર્ય એ છે કે, જ્યારે એવા પુરૂષો પણ ભાષણમા સ્ખલિત થઇ જાય છે, તો સામાન્ય જનની તો વાતજ શી? તેથી કરીને કોઇની પણ હાસી ન કરવી જોઇએ

'अहिज्जग' अधीयान-मित्यनेनेदमवगम्यते-यन्निरवशेषाधीतदृष्टिवादस्य वाग्विस्खलनसम्भावनैव नास्ति, तथाविधस्य सकलसंशयोच्छेदकत्वेन जिनसकाशत्व-सकलवाङ्मयाभिज्ञत्व जिनवत्सुस्पष्टत्वाकृतिशक्तिशालित्वप्रतिपादनात्। दृष्टिवादाध्ययनावस्थायामेव कदाचिद्वाग्विस्खलनसम्भव इति वर्तमानार्थकेन शानच-प्रत्ययेन बोध्यते ॥५०॥

साधोर्निमित्तभाषणे दोषमाह—'नक्खत्त' इत्यादि।

(मूलम्)

१ २ ३ ४ ५
नक्खत्त सुमिणं जोगं, निमित्तं मंतभेसजं।
६ ९ ७ ८ १० ११
गिहिणो त न आइक्खे, भूयाहिगरणं पयं ॥५१॥

॥ छाया ॥

नक्षत्र स्वप्नं योग निमित्तं मन्त्र-भेषजम्।
गृहिणः तत् न आचक्षीत भूताधिकरण पदम् ॥५१॥

'अहिज्जग' इस पदसे यह सूचित होता है कि सपूर्ण दृष्टिवाद को जानन वाले के बोलने म स्खलना होने की सभावना ही नहा हो सकती, क्योंकि वे सब सशयों का समाधान करने वाले, जिनसदृश, सकल वाङ्मय के जानकार और जिन भगवान की तरह प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर देन वाले होते है। किन्तु दृष्टिवाद पढते समय कदाचित् उनकी वाणी में स्खलना होने की सभावना रहती है। यह वर्त्तमान अर्थवाले 'शानच्' प्रत्यय से जाना जाता है ॥५०॥

अहिज्जग એ શબ્દથી એમ સૂચિત થાય છે કે- સપૂર્ણ દૃષ્ટિવાદને જાણનારાના બોલવામા સ્ખલના થવાની સભાવનાજ નથી થતી, કારણકે તે સર્વ સશયોના સમાધાન કરનારા જિન સમાન, સકલવાઙ્મયના જાણકાર અને જિન ભગવાનની પેઠે પ્રશ્નોના સ્પષ્ટ ઉત્તર આપનારા હોય છે પરન્તુ દૃષ્ટિવાદ ભણતી વખતે કદાચિત એમની વાણીમા સ્ખલના થવાની સભાવના રહે છે એ વર્તમાન અર્થવાળા 'શાનચ્' પ્રત્યયથી જાણી શકાય છે (૫૦)

॥ टीका ॥

मुनिः, नक्षत्रम्=अश्विन्यादिक, स्वप्न=शुभाशुभस्वप्नफल, योग=वशीकरणाकर्षणादि, निमित्तं=अतीतानागतकथनरूप, मन्त्रभेषजं=मन्त्रश्च भेषजं चेति समाहारद्वन्द्वः, तत्, तत्र मन्त्रः भूतादीनाम्, भेषजम्=अतीसारादीनामौषध. गृहिणो=गृहस्थान् नाचक्षीत=न कथयेत्, यत तद्=नक्षत्रादिकथन, भूताधिकरण= भूतानि अधिक्रियन्ते=व्यापाद्यन्तेऽस्मिन्निति विग्रहः, एकेन्द्रियादिजीवोपघातकं, पद=स्थानमस्ति। गृहस्थैरनुयुक्तेनापि साधुना संयमभङ्गभसङ्गवारणाय नक्षत्रफला-दिक न कथनीयमिति भावः ॥५१॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ६ ५
अन्नट्ठ पगड लयण, भएज्ज सयणासण।
३ ४
उच्चारभूमिसपन्न, इत्थीपसुविवज्जिय ॥५२॥

'नक्खत्त' इत्यादि। मुनि, अश्विनी आदि नक्षत्र, शुभ या अशुभ फल वाले स्वप्न, वशीकरण या आकर्षण आदि योग, भूत या भविष्य काल का कथन रूप निमित्त, भूत प्रेतादि का मन्त्र, अतिसार आदि किसी प्रकार के रोग का प्रतिकार करने वाला औषधि, ये सब गृहस्थ को न बतावे। बताने से आरभ समारभ आदि का सभव है। यदि कोई गृहस्थ, साधु से पूछे तो भी सयम के भग होने के भय से नक्षत्र का फल आदि नहीं कहना चाहिए ॥५१॥

नक्खत्त० ઇત્યાદિ મુનિ, અશ્વિની આદિ નક્ષત્ર, શુભ યા અશુભ સ્વપ્ન વાળા ફળ, વશીકરણ, યા આકર્ષણ આદિ યોગ, ભૂત યા ભવિષ્ય કાળના કથનરૂપ નિમિત્ત, ભૂત પ્રેતાદિના મંત્ર, અતીસાર આદિ કોઇ પ્રકારના રોગ નો પ્રતિકાર કરનારી ઓષધી વધુ ગૃહસ્થને બતાવે નહિ બતાવવાથી આરભ સમારભ આદિનો સંભવ છે જો કોઇ ગૃહસ્થ, સાધુને પૂછે તો પણ સયમનો ભગ થવાના ભયથી નક્ષત્રનું ફળ આદિ કહેવા જોઇએ નહિ (૫૧)

॥ छाया ॥

अन्यार्थं प्रकृतं लयनं भजेत् शयनासनम्।
उच्चारभूमिसंपन्नं स्त्रीपशुविवर्जितम् ॥५२॥

॥ टीका ॥

'अन्नट्ठ' इत्यादि।

साधुः, अन्यार्थं=साध्वपेक्षयाऽन्यः=परो गृहस्थादिः तदर्थं=तन्निमित्तं,=प्रकृतं=निष्पादितम्, उच्चारभूमिसंपन्नं = मलमूत्रोत्सर्जनस्थानयुक्तं. स्त्रीपशुविवर्जितं=स्त्रिया पशुना च रहितम्, उपलक्षणात् नपुंसकरहितं च लयनं=वसतिं, तथा साधुव्यतिरिक्तनिमित्तनिष्पादितं शयनम्, आसनं च, भजेत्=सेवेत, तादृशं संयमयात्रानिर्वाहार्थं स्वीकुर्यादित्यर्थः, उक्तश्चोत्तराध्ययनसूत्रे—

'अन्नट्ठ' इत्यादि। साधु, दूसरे (गृहस्थादि) के लिए बनाये हुए, उच्चार प्रस्रवण की भूमि से युक्त, स्त्री पशु और उपलक्षण से नपुंसक रहित ऐसे उपाश्रय, तथा निरवद्य शय्या, आसन आदि को संयमयात्रा का निर्वाह करने के लिए स्वीकार करे। अर्थात् जिसमें स्त्री पशु नपुंसक न रहते हों, तथा उच्चार प्रस्रवण के लिए स्थान हो ऐसे उपाश्रय को, तथा निरवद्य आसन आदि को साधु अंगीकार करे जो साधु के लिए न बनाया गया हो। जैसे—श्री उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान ने फरमाया है कि—

अन्नट्ठ ઇત્યાદિ સાધુ, બીજા (ગૃહસ્થાદિ)ને માટે બનાવેલી, ઉચ્ચાર પ્રસ્રવણની ભૂમિથી યુક્ત, સ્ત્રી, પશુ, અને ઉપલક્ષણથી નપુંસક રહિત એવા ઉપાશ્રય તથા નિરવદ્ય શય્યા, આસન આદિને સંયમ યાત્રાના નિર્વાહને માટે સ્વીકારે અર્થાત જેમાં સ્ત્રી પશુ નપુંસક ન રહેતા હોય, તથા ઉચ્ચાર પ્રસ્રવણને માટે સ્થાન હોય એવા ઉપાશ્રયને, તથા નિરવદ્ય શય્યા આસન આદિને સાધુ અંગીકાર કરે કે જે સાધુને માટે બનાવેલા ન હોય જેમ કે શ્રી ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં ભગવાને ફરમાવ્યું છે કે-

*"जं विवित्त मणाइन्नं, रहियं थीजणेण य। बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु निसेवए ॥१॥ इति। छाया—यद् विविक्तमनाकीर्णं रहितं स्त्रीजनेन च. ब्रह्मचर्यस्य रक्षार्थं, आलय तु निषेवते ॥ इति ॥५२॥

"जो[1] वसति (उपाश्रय) एकान्त में हो, पशु पण्डकों से अनाकीर्ण और स्त्रियों से रहित हो, ऐसी वसति का साधु, अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए सेवन करे ॥५२॥

"જે[1] વસતિ—(ઉપાશ્રય) એકાન્તમાં હોય, પશુ પંડકોથી અનાકીર્ણ અને સ્ત્રીઓથી રહિત હોય, એવી વસતિનું સાધુ પોતાના બ્રહ્મચર્યની રક્ષાને માટે સેવન કરે (૫૨)

* "जं" इत्यादि। य विविक्त=रहस्यभूत, तत्रैव वास्तव्यस्त्र्याद्यभावात्, अना कीर्णं=असंकुल, तत्तत्प्रयोजनागतस्त्र्याद्यनाकुलत्वात्, रहित =परित्यक्तोऽकालचारिणा वदनश्रवणादिनिमित्तागतेन स्त्रीजनेन, च शब्दात् पण्डकैः पिङ्गादिपुरुषैश्च। प्रकरणापेक्षया चैव व्याख्या। अन्यत्रापि चैव प्रकरणाद्यपेक्षव भावनीयम्। उक्तञ्च—"अर्थात्प्रकरणाल्लिङ्गादौचित्याद्देशकालत । शब्दार्था प्रविभज्यन्ते, न शब्दादेव केवलात्" ॥१॥

ब्रह्मचर्यस्य=उक्तरूपस्य रक्षार्थं=पालननिमित्तम् आलय =आश्रय सर्वत्र लिङ्गव्यत्यय प्राग्वत् यत्तदोर्नित्यसम्बन्धस्त तु=पूर्णे निषेवते=भजते॥ ॥१॥ इति बृहद्वृत्ति ।

१ वहा स्त्रियों का निवास न होने से विविक्त प्रयोजनवश भी स्त्रियों का आना जाना न होने से अनाकीर्ण, अकाल में प्रवृत्ति करने वाली, वदन धर्मकथा श्रवण आदि के लिए आने वाली स्त्रियों से रहित तथा नपुसक और पिङ्ज आदि पुरुषों से रहित स्थान का साधुओं को ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए सेवन करना चाहिए। यह व्याख्या यहाँ प्रकरण के अनुसार की गई है। दूसरी जगह प्रकरण आदि के अनुसार ही समझना चाहिए। कहा भी है—अर्थ प्रकरण, लिंग, औचित्य, देश और कालकी विशेषता से शब्दों के अर्थ में भेद हो जाता है केवल शब्द से ही नहीं।

૧ ત્યાં સ્ત્રીઓનો નિવાસ ન હોવાથી વિવિક્ત પ્રયોજન વશ પણ સ્ત્રીઓની આવજા ન હોવાથી અનાકીર્ણ અકાળે પ્રવૃત્તિ કરનારી વંદન ધર્મકથા શ્રવણ આદિને માટે આવનારી સ્ત્રીઓથી રહિત, તથા નપુંસક અને પિંડજ આદિ પુરુષોથી રહિત એવા સ્થાનનું સાધુઓએ બ્રહ્મચર્યની રક્ષાને માટે સેવન કરવું જોઈએ આ વ્યાખ્યા અહીં પ્રકરણને અનુસાર કરવામાં આવી છે બીજી જગ્યાએ પ્રકરણ આદિને અનુસાર જ સમજવી જોઈએ કહ્યું છે—અર્થ, પ્રકરણ લિંગ ઔચિત્ય, દેશ અને કાળની વિશેષતાથી શબ્દોના અર્થમાં ભેદ પડી જાય છે, કેવળ શબ્દથી જ નહિ

(मूलम्)

३ २ ४ १ ५ ७ ६ ८
विवित्ता य भवे सिज्जा, नारीण न लवे कह।
९ १० ११ १४ १२ १३
गिहिसथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं सथवं ॥५३॥

॥ छाया ॥

विविक्ता च भवेत् शय्या नारीणा, न लपेन् कथाम्।
गृहिसंस्तवं न कुर्यात्, कुर्यात् साधुभिः संस्तवम् ॥५३॥

॥ टीका ॥

'विवित्ता'-शय्या=वसतिः विविक्ता च भवेत्=स्त्रीपशुपण्डकवर्जितत्वेन अन्यार्थमकृतत्वेन च पूता निरवद्याऽपि भवेदित्यर्थः, 'च' शब्दोऽप्यर्थकः तथापि, नारीभिः=स्त्रीभिः सहेतिशेषः, *कथा=धर्मवार्तामपि न लपेत्=न भाषेत, शङ्कादि

'विवित्ता' इत्यादि। वसति (उपाश्रय) एकान्त में हो अर्थात् स्त्री पशु नपुंसक से रहित और दूसरे के लिए बनाई हुई तथा निर्दोष होनी चाहिए और *धर्मकथा भी साधु को

विवित्ता ઇत्याहि वसति (ઉપાશ્રય) એકાન્તમા હોય અર્થાત્ સ્ત્રી પશુ નપુંસકથી રહિત અને બીજાને માટે બનાવેલી તથા નિર્દોષ હોવી જોઈએ, અને ધર્મકથા[1] પણ સાધુએ સ્ત્રીઓની સામે એકાંતમા ન કરવી જોઈએ નહિ તો શંકા

*उक्तं हि भगवता निशीथसूत्रे—"जे भिक्खू राओ वा वियाले वा इत्थीमज्झगए इत्थीससत्ते इत्थीपरिवुडे अपरिमाणाए कह कहेइ कहंत वा साइज्जइ ॥१॥" 'अपरिमाणाए' इत्यत्र प्रकृत्यादित्वादभेदे तृतीया, तेन अपरिमाणा कथा कथयति कथयन्तं वाऽनुमोदते स प्रायश्चित्ती भवतीत्यर्थः। एतेन सत्यनिवार्यकारणे परिमितकथाभाषणं प्रायश्चित्ताय न भवतीति भावः।

* भगवान्ने निशीथ सूत्रमें कहा है—"जो साधु रात्रिमें अथवा विकाल वलामें स्त्रियों के मध्य रहता है, स्त्रियों में आसक्त रहता है, स्त्रियों से घिरा रहता है और अपरिमित कथा (वार्तालाप) करता है या करने वालेकी अनुमोदना करता है वह प्रायश्चित्त का भागी होता है।" "अपरिमाणाए" पद से यह ध्वनित होता है कि अनिवार्य कारण उपस्थित हो जाने पर परिमित वार्तालाप करने से प्रायश्चित्त नहीं लगता।

१ ભગવાને નિશીથ સૂત્રમાં કહ્યું છે કે— 'જે સાધુ રાત્રે અથવા વિકાળ વેળાએ સ્ત્રીઓની વચ્ચે રહે છે, સ્ત્રીઓમાં આસક્ત રહે છે, સ્ત્રીઓથી ઘેરાયલો રહે છે અને અપરિમિત કથા (વાર્તાલાપ) કરે છે અથવા કરનારને અનુમોદે છે તે પ્રાયશ્ચિત્તનો ભાગી બને છે" अपरिमाणए પદથી એમ ધ્વનિત થાય છે કે અનિવાર્ય કારણ ઉપસ્થિત થતાં પરિમિત વાર્તાલાપ કરવાથી પ્રાયશ્ચિત્ત લાગતું નથી

दोषसंसद्भाव्, तथा गृहिसंस्तवं = गृहस्थैः सह परिचयं न कुर्यात् रागादिदोषसंभवादिति भावः। साधुभिस्तु सह संस्तवं=परिचयं कुर्यात् ज्ञान ध्यानाद्यात्मककल्याणवृद्धिसद्भावादिति भावः ॥५३॥

स्त्रीसंस्तवः किमर्थं न कर्त्तव्यः ? इत्याह—'जहा कुक्कुड०' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

जहा कुक्कुडपोयस्स, निच्चं कुललओ भयं।
एवं खु बंभयारिस्स, इत्थीविग्गहओ भयं ॥५४॥

॥ छाया ॥

यथा कुक्कुटपोतस्य नित्यं कुललाद् भयम्।
एवमेव ब्रह्मचारिणः स्त्रीविग्रहाद्भयम् ॥५४॥

॥ टीका ॥

यथा कुक्कुटपोतस्य = कुक्कुटाख्यपक्षिशावकस्य कुललात् = मार्जारात्, नित्य=सततं भयं विद्यते उभयोरेकवसतिनिवासित्वात्, तद्भक्ष्यत्वाच्चेति भावः। एव

स्त्रियों के साथ एकान्त में नहीं करनी चाहिए, अन्यथा शङ्का आदि दोष उत्पन्न हो जाते है, साधु को गृहस्थों के साथ परिचय नहीं करना चाहिए, क्योंकि, गृहस्थों के साथ परिचय करने से राग आदि दोषों का संभव है, साधु को साधुओं के साथ परिचय करना चाहिए क्योंकि, इस से ज्ञान ध्यान रूप कल्याण की वृद्धि होती है ॥५३॥

स्त्रीपरिचय से दोष बताते हैं—'जहा कुक्कुड' इत्यादि,

जैसे कुक्कुट (मुर्गे) का बच्चा और बिलाव एक ही स्थान में निवास करते हों तो

આદિ દોષ ઉત્પન્ન થાય છે સાધુએ ગૃહસ્થની સાથે પરિચય ન કરવો જોઈએ, કારણકે ગૃહસ્થોની સાથે પરિચય કરવાથી રાગાદિ દોષોનો સંભવ રહે છે સાધુએ સાધુઓની સાથે પરિચય કરવો જોઈએ, કારણકે એથી જ્ઞાન ધ્યાનરૂપ કલ્યાણની વૃદ્ધિ થાય છે (૫૩)

સ્ત્રી પરિચયથી દોષ બતાવે છે— जहा कुक्कुड ઇત્યાદિ

જેમ કુકડાના બચ્ચા અને બિલાડી એકજ સ્થાનમાં નિવાસ કરતા હોય

मेव=इत्थमेव ब्रह्मचारिणः=साधोः स्त्रीविग्रहात्=स्त्रीशरीराद् भय भवति। स्त्रीरूप विषयस्य झटिति मनोमोहावहत्वेनेतरविषयापेक्षया दुर्जयत्वादिति भावः ॥५४॥

स्त्रीमस्तत्र सर्वथा न कर्त्तव्यः, इत्याह— 'चित्तभित्ति' इत्यादि।

(मूलम्)

१ ५ ४ २ ३
चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकियं।

८ ७ ९ १०
भक्खरं पिव दट्ठूण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥५५॥

॥ छाया ॥

चित्रभित्तिं न निध्यायेत् नारीं वा स्वलङ्कृताम्।
भास्करमिव दृष्ट्वा दृष्टिं प्रतिसमाहरेत् ॥५५॥

॥ टीका ॥

मुनिः, चित्रभित्तिं=नारीचित्रयुक्त कुड्य वा=अथवा स्वलङ्कृता नारीं सुवसनभूषणशोभिता स्त्रियम्, अस्योपलक्षणत्वादनलंकृतामपि न निध्यायेत्=न निरीक्षेत। कथञ्चिद्दर्शनयोगेऽपि भास्करमिव=प्रचण्डमार्तण्डमिव ता दृष्ट्वा दृष्टिं=

मुर्गे के बच्चे को सदा बिलाव से भय बना रहता है, वैसे ही ब्रह्मचारी (साधु) को स्त्री के शरीर से भय रहता है, क्योंकि, स्त्रीरूप विषय शीघ्र ही मन को मोहित करने वाला होता है इसलिए अन्य विषयों की अपेक्षा दुर्जय है ॥५४॥

'चित्तभित्तिं' इत्यादि। जिस पर स्त्री का चित्र हुआ हो उस भीत को तथा सुन्दर वस्त्रालङ्कारों से अलकृत स्त्री को न देखे। कदाचित् उसपर दृष्टि पडजाय तो जैसे प्रचण्ड सूर्य पर नजर पडने से शीघ्र नेत्र नीचे कर लेने पडते है, वैसे ही उसे देखते ही नेत्र नीचे

તો કુકડાના બચ્ચાને સદા બિલાડીનો ભય રહ્યા કરે છે, તેમ બ્રહ્મચારીને (સાધુને) સ્ત્રીના શરીરથી ભય રહે છે, કારણ કે સ્ત્રીરૂપ વિષય શીઘ્ર જ મનને મોહિત કરનારા બને છે, તેથી અન્ય વિષયોની અપેક્ષાએ તે દુર્જય છે (૫૪)

चित्तभित्तिं ઇત્યાદિ જેની ઉપર સ્ત્રીનું ચિત્ર હોય તે ભીંતને તથા સુંદર સુંદર વસ્ત્રાલંકારોથી અલંકૃત સ્ત્રીને જોવા નહિ કદાચિત્ તે ઉપર દૃષ્ટિ પડી જાય તો જેમ પ્રચંડ સૂર્યપર નજર પડવાથી શીઘ્ર નેત્રોને નીચા કરી લેવા પડે

चक्षुः प्रतिसमाहरेत्=ततः प्रतिसंहरेदित्यर्थः, यथा प्रचण्डमार्तण्डविलोकनमात्रं नयनयोर्मालिन्यमुपनयति, तथा नारीनिरीक्षणमात्रं साधोश्चारित्रमालिन्यं सद्यः समुद्भावयतीति भावः ॥५५॥

किं बहुना—'हत्थपाय' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

हत्थपायपडिच्छिन्नं, कन्ननासविगप्पियं।
अवि वाससयं नारी, बंभयारी विवज्जए ॥५६॥

॥ छाया ॥

हस्तपादप्रतिच्छिन्नां कर्णनासाविकर्तिताम्।
अपि वर्षशतां नारीं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥५६॥

॥ टीका ॥

ब्रह्मचारी=साधुः हस्तपादप्रतिच्छिन्नां=छिन्नकरचरणां, कर्णनासाविकर्तितां=विकर्तितकर्णनासिकां वर्षशतामपि=पूर्णशतवर्षवयस्कामपि जराजर्जरितदेहामपीत्यर्थः नारीं विवर्जयेत्=एवम्भूताया अपि नार्याः संसर्गं न कुर्यादिति भावः ॥५६॥

कर लेवे। तात्पर्य यह है कि जैसे प्रचण्ड सूरज की ओर नजर करने से ही आंखों में मलिनता आजाती है वैसे ही स्त्री पर सानुराग दृष्टि पडने से चारित्र में मलिनता आजाती है ॥५५॥

'हत्थपाय०' इत्यादि। अधिक क्या कहा जाय—जिसके हाथ पैर छेदे हुए हों तथा कान नाक कटी हुई हों ऐसी सौ वर्ष की वृद्ध स्त्री का भी संसर्ग साधु न करे ॥५६॥

છે તેમ તેને જોતાંજ નેત્ર નીચાં ઢાળી દેવાં તાત્પર્ય એ છે કે—જેમ પ્રચંડ સૂર્ય તરફ નજર કરવાથીજ આંખોમાં મલિનતા આવી જાય છે, તેમ સ્ત્રી પર સાનુરાગ દૃષ્ટિ પડવાથી ચારિત્રમાં મલિનતા આવી જાય છે (૫૫)

હત્થપાય૦ ઇત્યાદિ વધારે શું કહીએ—જેના હાથ પગ છેદેલા હોય તથા નાક કાન કાપેલાં હોય, એવી સો વર્ષની વૃદ્ધ સ્ત્રીનો પણ સંસર્ગ સાધુ ન કરે (૫૬)

॥ मूलम् ॥

३ ४ ५ ६
विभूसा इत्थिससग्गो, पणीय रसभायणं ।
२ १ ९ ८ ७
नरस्सत्तगवेसिस्स, विसं तालउड जहा ॥५७॥

॥ छाया ॥

विभूषा स्त्रीसंसर्गः प्रणीतरसभोजनम् ।
नरस्यात्मगवेषिणः विषं तालपुटं यथा ॥५७॥

(टीका)

'विभूसा' इत्यादि ।

आत्मगवेषिणः=आत्मकल्याणाभिलाषिणः नरस्य=साधुपुरुषस्य विभूषा=शरीरमण्डनं, स्त्रीसंसर्गः=स्त्रिया सहालपनादि, प्रणीतरसभोजनं=नित्य घृतादि रसाभ्यवहरणम्, एतत्सर्वं यथा तालपुटं=तालुस्पर्शमात्रेण प्राणापहारकं विषं भवति तथैव विभूषादिकं सद्यश्चारित्रापहारकमित्यर्थः ॥५७॥

॥ मूलम् ॥

३ ४ ५
अंगपच्चंगसंठाणं, चारुल्लवियपेहियं ।
१ ८ ६ ७ २
इत्थीणं तं न निज्झाए, कामरागविवड्ढणं ॥५८॥

'विभूसा' इत्यादि । आत्मकल्याण के अभिलाषी पुरुष साधु-को, शरीर का मण्डन, स्त्री के साथ बोल चाल आदि संसर्ग तथा प्रतिदिन प्रणीत-सरस-भोजन न करना चाहिए। ये सब चारित्र को शीघ्र ही इस प्रकार नष्ट कर देते हैं जैसे तालपुट (तालु में स्पर्श होते ही प्राण हरण करने वाला) विष प्राणों का नाश कर देता है ॥५७॥

विभूसा० ઇત્યાદિ આત્મકલ્યાણના અભિલાષી સાધુ પુરૂષે, શરીરનું મંડન, સ્ત્રીની સાથે બોલ-ચાલ આદિ સંસર્ગ તથા પ્રતિદિન પ્રણીત-સરસ-ભોજન ન કરવું જોઈએ એ બધું ચારિત્રને એવી રીતે શીઘ્ર નષ્ટ કરી નાખે છે કે જેવી રીતે તાલપુટ (તાળવામાં સ્પર્શ થતાં જ પ્રાણ હરણ કરનાર) વિષ પ્રાણનો નાશ કરી નાખે છે (૫૭)

॥ छाया ॥

अङ्गप्रत्यङ्गसंस्थानं चारूल्लपितं प्रेक्षितम्।
स्त्रीणां तत् न निध्यायेत् कामरागविवर्धनम् ॥५८॥

॥ टीका ॥

'अंगपच्चंग'० इत्यादि।

स्त्रीणाम् अङ्गप्रत्यङ्ग संस्थानम्=अङ्गानि=मुखादीनि, प्रत्यङ्गानि नयनादीनि, तेषां संस्थान=संनिवेशविशेषः आकारविशेष इत्यर्थ, चारु=मनोज्ञम् उल्लपितम्= उच्चैर्भाषितं गीतादिकं, तथा प्रेक्षितं=कटाक्षविक्षेपादिकं, न निध्यायेत्=सराग-नावलोकयेत् न चिन्तयेद् वा, यतः तत्सर्वं कामरागविवर्धनं=कामविकारजनक-मित्यर्थः ॥५८॥

॥ मूलम् ॥

८ ७ ९ १०
विसएसु मणुन्नेसु, पेमं नाभिनिवेसए।
५ १ ६ ४ ३ २
अणिच्चं तेसिं विन्नाय, परिणामं पुग्गलाण य ॥५९॥

(छाया)

विषयेषु मनोज्ञेषु प्रेम नाभिनिवेशयेत्।
अनित्यं तेषां विज्ञाय परिणामं पुद्गलानां च ॥५९॥

'अंगपच्चंग०' इत्यादि। स्त्रियों के मुख आदि अंगों का, नेत्र आदि उपाङ्गों की बनावट, मनोहर भाषण और कटाक्षविक्षेप आदि को अनुरागपूर्वक न देखें, और न इन के विषय में ध्यान करे। क्योंकि, ये सब, काम राग को बढाने वाले हैं ॥५८॥

अंगपच्चंग० ઇત્યાદિ સ્ત્રીઓના મુખ આદિ અંગોની, નેત્રાદિ ઉપાંગોની બનાવટ, મનોહર ભાષણ, અને કટાક્ષ વિક્ષેપ આદિ અનુરાગ પૂર્વક જોવા નહિ, અને એના વિષયમાં ધ્યાન કરવું નહિ, કારણ કે બધાં કામ-રાગને વધારનારાં છે (૫૮)

॥ टीका ॥

'विसएसु' इत्यादि ।

साधुः, तेषां=शब्दादिविषय-सम्बन्धिनां पुद्गलानां परिणामं=पर्यायान्तरपरिणतिलक्षणम् अनित्यं विज्ञाय=जिनशासनतो विदित्वा, मनोज्ञेषु=मनोहरेषु, विषयेषु=शब्दादिषु, प्रेम=रागं नाभिनिवेशयेत्=न कुर्यात्, शब्दादिविषयैः सहेन्द्रियाणां कदाचित् सम्बन्धे सति तत्रासक्त्यपरपर्यायं रागं न कुर्यात्, किञ्च—अनित्यविषयरागो दुःखायैव कल्पते इति तत्र रागो न विधेयः। स्वदेहस्य शब्दादिविषयस्य च क्षयित्वेन तत्सम्बन्धकृतसुखस्यापि तथात्वादिति भावः ॥५९॥

॥ मूलम् ॥

पोग्गलाण परीणामं, तेसिं नच्चा जहातहा ।

वणीयतिण्हो विहरे, सीईभूएण अप्पणा ॥६०॥

'विसएसु' इत्यादि । साधु जिनशासन से भली भाँति विदित करले कि शब्दादि विषयों के पुद्गल अनित्य हैं, सदा एक पर्याय से दूसरी पर्याय में परिवर्तित होते रहते हैं। स्थायी नहीं हैं। ऐसा जानकर उन मनोज्ञ विषयों में राग न करे और अमनोज्ञ में द्वेष भी न करे। शब्दादि विषयों के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध हो जाय तो उन में आसक्ति न करे उन में मग्न न होवे। अनित्य विषयों में किया हुआ राग, परिणाम में दुःखदायी ही होता है, ऐसा समझकर उनमें राग भी न करे। अपना शरीर तथा शब्दादि विषय नश्वर हैं इसलिए उनके निमित्त से उत्पन्न होने वाला सुख भी नश्वर है ॥५९॥

विसयेसु० ઇત્યાદિ સાધુ જિનશાસનથી સારી પેઠે જાણી લે કે-શબ્દાદિ વિષયોના પુદ્ગલ અનિત્ય છે સદા એક પર્યાયથી બીજા પર્યાયમા પરિવર્તિત થતા રહે છે, સ્થાયી નથી એમ જાણીને એ મનોજ્ઞ વિષયોમા રાગ ન કરે અને અમનોજ્ઞમા દ્વેષ પણ ન કરે શબ્દાદિ વિષયોની સાથે ઇંદ્રિયોનો સબંધ થઇ જાય તો તેમા આસક્તિ ન કરે, તેમા મગ્ન ન થાય અનિત્ય વિષયોમા કરેલો રાગ પરિણામે દુખદાયીજ બને છે એમ સમજીને તેમા રાગ ન કરે પોતાનું શરીર તથા શબ્દાદિ વિષય નશ્વર છે તેથી તેના નિમિત્તે ઉત્પન્ન થનારું સુખ પણ નશ્વર છે (૫૯)

॥ छाया ॥

पुद्गलाना परिणाम तेषा ज्ञात्वा यथा-तथा।
विनीततृष्णो विहरेत् शीतीभूतेन आत्मना ॥६०॥

॥ टीका ॥

'पोग्गलाण' इत्यादि।

साधुः, तेषां=शब्दादिविषयसम्बन्धिनां पुद्गलानां परिणाम पर्यायरूपान्तराऽऽपत्तिरूप यथा-तथा='ये इष्टास्तेऽनिष्टा भवन्ति, येऽनिष्टास्ते इष्टा भवन्ति' इत्यादि ज्ञात्वा विनीततृष्णः=अपगतस्पृहः शीतीभूतेन=क्रोधादिकषायानलोपशमनलब्धशैत्येन आत्मना विहरेत्=विचरेत्। पुद्गलस्वभावानुस्मरणोत्पादितविरत्या सयममार्गे विचरेदिति भावः ॥६०॥

॥ मूलम् ॥

१ ५ ४
जाए सद्धाए निक्खंतो, परियायट्ठाणमुत्तम।
६ ९ ८ ७
तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरियसमए ॥६१॥

'पोग्गलाण' इत्यादि। साधु शब्दादि विषयों के पुद्गलों का विनश्वरता रूप परिणाम को जानकर, अथवा यह जानकर कि-जो पुद्गल कभी इष्ट होते हैं वेही दूसरे समय अनिष्ट हो जाते हैं, और जो एक समय अनिष्ट होते हैं वेही दूसरे समय इष्ट हो जाते हैं उन विषयों में तृष्णा (लालसा) का त्याग करके क्रोध आदि कषाय रूपी अग्नि की उपशान्ति से प्राप्त हुई युक्त आत्मा के साथ विहार करे। अर्थात पुद्गलों के स्वभाव को स्मरण करने से उत्पन्न हुए वैराग्य के साथ संयम मार्ग में विचरे ॥६०॥

પોગ્ગલાણ ઇત્યાદિ સાધુ શબ્દાદિ વિષયોના પુદ્ગલોનું વિનશ્વરતા રૂપ પરિણામ જાણીને, અથવા એમ જાણીને કે જે પુદ્ગલ એક સમયે ઇષ્ટ હોય છે તેજ બીજે સમયે અનિષ્ટ બની જાય છે અને જે એક સમયે અનિષ્ટ હોય છે તેજ બીજે સમયે ઇષ્ટ બની જાય છે, એ વિષયોમા તૃષ્ણા (લાલસા) નો ત્યાગ કરીને ક્રોધ આદિ કષાયરૂપી અગ્નિની ઉપશાન્તિથી પ્રાપ્ત થએલા યુક્ત આત્માની સાથે વિહાર કરે અર્થાત્-પુદ્ગલોના સ્વભાવનું સ્મરણ કરવાથી ઉત્પન્ન થએલા વૈરાગ્યની સાથે સયમ માર્ગમા વિચરે (૬૦)

॥ छाया ॥

यया श्रद्धया निष्क्रान्तः पर्यायस्थानमुत्तमम् ।
तामेव अनुपालयेत गुणेषु आचार्यसंमतेषु ॥६१॥

(टीका)

'जाए सद्धाए' इत्यादि ।

साधुः, यया श्रद्धया=भावनया निष्क्रान्तः गृहात्प्रव्रजितः सन् उत्तमं= सर्वोत्कृष्टं पर्यायस्थानं सर्वविरतिस्वीकाररूपं प्रव्रज्यालक्षणं स्थानं प्राप्तः सन् तामेव श्रद्धाम् आचार्यसंमतेषु=तीर्थङ्कराद्यनुमतेषु गुणेषु=मूलोत्तरगुणेषु अनुपालयेत्=मूलोत्तरगुणसंरक्षणतत्परिवर्द्धनहेतुभूतां तामेव श्रद्धां यत्नतः प्रवर्धयेदित्यर्थः। येनैव उत्कृष्टपरिणामेन चारित्रं गृहीतं तेनैव वर्द्धमानपरिणामेन यावज्जीवं निर्वाहयेदिति भावः ॥६१॥

अथाचारप्रणिधेः फलमाह— 'तवंचिमं' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

२ ३ १ ४ ५ ६ ७ ८ ९
तवं चिमं संजमजोगयं च, सज्झायजोगं च सया अहिट्ठिए ।
११ १० १२ १४ १३ १५ १६ १
सूरेव सेणाइ समत्तमाउहे, अलमप्पणो होइ अलं परेसिं ॥६२॥

'जाए सद्धाए' इत्यादि । साधु जिस श्रद्धा भावना के साथ गृहस्थावास का त्याग करके दीक्षित होकर सर्वश्रेष्ठ सर्वविरतिरूप पद को प्राप्त हुआ उसी श्रद्धा का तीर्थङ्कर प्रणीत मूल गुण और उत्तर गुणों में पालन करे । अर्थात् मूल गुण और उत्तर गुणों की रक्षा करने वाली तथा उन्हें बढाने वाली उसी श्रद्धा को यत्नपूर्वक बढाता रहे । तात्पर्य यह है कि जिस उत्कृष्ट परिणाम से चारित्र ग्रहण किया था उसी उत्कृष्ट परिणाम से यावज्जीवन उस का पालन करे ॥६१॥

जाए सद्धाए ' इत्यादि साधु જે શ્રદ્ધા ભાવનાની સાથે ગૃહસ્થાવાસનો ત્યાગ કરીને દીક્ષિત થઇ સર્વશ્રેષ્ઠ સર્વવિરતિ રૂપ પદને પ્રાપ્ત થયો, એ શ્રદ્ધાને તીર્થંકર પ્રણીત મૂલ ગુણો અને ઉત્તર ગુણોમા પાલન કરે અર્થાત્ મૂલ ગુણો અને ઉત્તર ગુણોની રક્ષા કરનારી તથા તેમને વધારનારી એ શ્રદ્ધાને યત્નપૂર્વક વધારતો રહે તાત્પર્ય એ છે કે-જે ઉત્કૃષ્ટ પરિણામથી ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યું હતુ, તે ઉત્કૃષ્ટ પરિણામથી યાવજ્જીવન એનું પાલન કરે (૬૧)

॥ छाया ॥

तपश्चेदं संयमयोगं च स्वाध्याययोगं च सदा अधिष्ठाता ।
शूर इव सेनया समात्तायुधः अलमात्मनो भवति अलं परेषाम् ॥६२॥

॥ टीका ॥

इदं=प्राग्व्याख्यातरूपं, तपः=अनशनादिलक्षणं च संयमयोगं=षड्जीवनिकायरक्षणलक्षणं च, स्वाध्याययोगं=वाचनापृच्छाद्यात्मकं, सदा = नित्यम् अधिष्ठाता=तदाचरणपरायणः साधुः—सेनया=चतुरङ्गात्मिकया शूर इव=शौर्यवानिव समात्तायुधः = सम्यगुपात्ततपश्चर्यास्त्रः, ज्ञानावरणीयादिकर्मशत्रुनिराकरणाय तपश्चर्याया अस्त्रसदृशत्वादस्त्रत्व कथनम्। आत्मनः कल्याणाय अलं= समर्थो भवति, तथा परेषां जीवानां कल्याणाय चालं भवतीत्यर्थः।

यद्वा 'समत्तमाउहे' इत्यस्य 'समाप्तायुधः' इतिच्छाया तथा च–सेनया समाप्तायुधः समाप्तं=शत्रुपराजयकरणेन विरतं निवृत्तमिति यावत् आयुधम् =

'तवंचिमं' इत्यादि। जैसे शूरवीर पुरुष चतुरङ्ग सेना को साथ लेकर उसने अस्त्रशस्त्रों से शत्रुओं को हटा देता है, वैसे ही अनशन आदि तप षट्जीवनिकाय की सरक्षारूप संयम, वाचना, प्रच्छना आदि रूप स्वाध्याय का सदा आचरण करने में तत्पर साधु पूर्वोक्त तपश्चर्या आदि अस्त्रों से ज्ञानावरण आदि कर्मशत्रुओं के जीतने में, तथा परका कल्याण करने में समर्थ होता है। तपश्चर्या, कर्मों का नाश करने के लिये अस्त्र के समान है अतः उसे अस्त्र कहा गया है। 'समत्तमाउहे' पदकी दूसरी छाया यह है—समाप्तायुध, अर्थात् जैसे शूरवीर अपनी सेनाकी सहायता से शत्रुओं को परास्त करके युद्ध समाप्त कर देता है,

तवं चिमं० ઇત્યાદિ જેમ શૂરવીર પુરૂષ ચતુરંગ સેનાને સાથે લઈને પોતાના અસ્ત્રશસ્ત્રોથી શત્રુઓને હઠાવી દે છે તેમજ અનશન આદિ તપ, ષટ્જીવનિકાયની સંરક્ષારૂપ સંયમ, વાચના, પૃચ્છના, આદિરૂપ સ્વાધ્યાયને સદા આચરવામાં તત્પર એવો સાધુ પૂર્વોક્ત તપશ્ચર્યા આદિ અસ્ત્રોથી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મશત્રુઓને જીતવામાં, તથા પરનું કલ્યાણ કરવામાં સમર્થ બને છે તપશ્ચર્યા કર્મોનો નાશ કરવાને માટે અસ્ત્રની સમાન છે, તેથી તેને અસ્ત્ર કહેવામાં આવ્યું છે સમત્તમાउहे પદનો બીજો અર્થ છે સમાપ્તાયુધ અર્થાત્ જેમ શૂરવીર પોતાની સેનાની સહાયતાથી શત્રુઓને પરાસ્ત કરીને યુદ્ધ સમાપ્ત કરી નાખે છે, તેમ સાધુ

आयुधव्यापारो युद्धं यस्य स तथोक्तः शूर इव साधुः, साधुपक्षे सेनया=तपश्चर्यादि रूपया समाप्तायुधः = ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मक्षयकरणेन समाप्त=निवृत्तम् आयुधं=तद्विजयव्यापारः परीषहसहनादिरूपो यस्य स तथोक्त इत्यर्थः। शेष पूर्ववत्। साधूना तपश्चर्यादिकमेव कर्मशत्रुविनाशनाय सकलसेनाकार्य सपादयति, तप श्चर्यादिना सकलकर्मशत्रौ प्रक्षीणे सति कारणाभावान्न पुनः कर्मोत्पत्तिर्भवतीति केवलित्व मासाना साधूना तद्विजयव्यापारो निवर्तते इति भावः ॥

'तव' इतिपदेन कर्मशत्रुदमनोत्साहवत्त्वं, 'सजमजोगय' इत्यनेन कर्मशत्रु संबन्धिशक्तिक्षयकारकत्वं, 'सज्झायजोग' इत्येतेन कर्मशत्रुनिराकरणकर्तृत्व च ध्वनितम् ॥६२॥

उसी प्रकार साधु तपश्चर्या आदि सेना से अष्टविध कर्म - रूपी रिपुओं को परास्त करके छेडे हुए रण (सग्राम) को समाप्त कर देता है। अर्थात्–साधुओं के तो तप सयम ही कर्म शत्रुओं का नाश करने के लिए सेना का काम करते है, तात्पर्य यह है कि–तप सयम से सब कर्मों का नाश हो जानेपर कारण के अभाव से फिर कर्मों का प्रादुर्भाव नहीं होता अत केवली होनेपर साधुओं का कर्म के जीतने का व्यापार निवृत्त हो जाता है।

'तव' पद से कर्म रूपी दुश्मन का दमन करने में उत्साह, 'सजमजोगय' पद से कर्मशत्रु की शक्ति का क्षय और 'सज्झायजोग' पद से कर्मरूपी वैरी का निराकरण करना (हटाना) प्रगट किया है ॥६२॥

तपश्चर्यादि सेनाथी अष्टविध कर्मरूपी रिपुओने परास्त करीने–छेडेला रण (सग्राम) ने समाप्त करी नाखे छे अर्थात्–साधुओना तप-सयमज कर्म शत्रुओनो नाश करवाने माटे सेनानुं काम करे छे तात्पर्य ए छे के तप सयमथी सर्व कर्मोनो नाश थई जता, कारणनो अभाव थता, पछी कर्मोनो प्रादुर्भाव थतो नथी एटले केवळी थता साधुओनो कर्म जीतवानो व्यापार निवृत्त थई जाय छे

तव पदथी कर्मरूपी दुश्मननुं दमन करवामा उत्साह, सजमजोगय पदथी कर्मशत्रुनी शक्तिनो क्षय अने सज्झायजोग पदथी कर्मरूपी वैरीनुं निराकरण करवुं (हठाववु) प्रकट कर्युं छे (६२)

॥ मूलम् ॥

सज्झायसज्झाणरयस्स ताइणो, अपावभावस्स तवे रयस्स ।
विसुज्झई जं सि मलं पुरेकडं, समीरियं रुप्पमलं व जोइणा ॥६३॥

॥ छाया ॥

स्वाध्याय–सद्ध्यानरतस्य त्रायिणः अपापभावस्य तपसि रतस्य ।
विशुध्यति यत् तस्य मलं पुराकृतं, समीरित रूप्यमलम् इव ज्योतिषा ॥६३॥

॥ टीका ॥

'सज्झाय०' इत्यादि ।

स्वाध्यायसद्ध्यानरतस्य=स्वाध्यायो=वाचनादिपञ्चविधः, सद्ध्यान=प्रशस्तध्यान धर्मशुक्लध्यानात्मकम् अनयोर्द्वन्द्वः, स्वाध्यायसद्ध्याने, तत्र रतस्तस्य पञ्चविधस्वाध्यायधर्मशुक्लध्याननिमग्नस्येत्यर्थः, त्रायिणः=स्वपररक्षणतत्परस्य, अपापभावस्य=शुद्धचित्तस्य विगतविषयसुखस्पृहस्येत्यर्थः । तपसि=अनशनादिलक्षणे रतस्य=समासक्तस्य तस्य=साधो' यत् पुराकृत=पूर्वोपार्जित मल=पापं, तत् ज्योतिषा=वह्निना समीरितं=सयोजित रूप्यमलं=रजतमलमिव विशुध्यति=प्रक्षीयते ।

'सज्झाय'–इत्यादि। वाचना आदि पाँच प्रकार का स्वाध्याय, तथा धर्म और शुक्ल ध्यान रूप प्रशस्त ध्यान में लीन, स्व पर की रक्षा करने वाले, सर्वथा विकार रहित चित्त वाले, और अनशन आदि तप में लीन साधु का पूर्वोपार्जित पाप इस प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे अग्नि के द्वारा चादी का मैल नष्ट हो जाता है।

सज्झाय० ઇત્યાદિ વાચના આદિ પાચ પ્રકારના સ્વાધ્યાય, તથા ધર્મ અને શુક્લ ધ્યાનરૂપ પ્રશસ્ત ધ્યાનમા લીન, સ્વપરની રક્ષા કરનારા, સર્વથા વિકાર રહિત ચિત્તવાળા, અને અનશન આદિ તપમા લીન, એવા સાધુના પૂર્વોપાર્જિત પાપ એ રીતે નષ્ટ થઇ જાય છે કે જે રીતે અગ્નિ દ્વારા ચાદીનો મેલ નષ્ટ થઇ જાય છે

'सज्झायसज्झाणरयस्स' इत्यनेन स्वाध्याये चित्तैकाग्रता, विकथावर्जित्वं निष्प्रयोजनावस्थितिरहितत्वं च सूचितम्। 'ताइणो' इत्यनेन संयमरक्षणशीलत्वं ध्वनितम्। 'अपावभावस्स' इत्यनेन जिनवचनाभिरुचिमत्त्वं व्यक्तीकृतम्। 'तवेरयस्स' इत्यनेनात्मसंशोधनातिशयाभिलाषवत्त्वमावेदितम् ॥६३॥

(मूलम्)

८ १ २ ३ ४ ५ ६ ७
से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिये, सुयेण जुत्ते अममे अकिंचणे।
१४ ९ १० ११ १२ १३
विरायई कम्मघणंमि अवगए, कसिणब्भपुडावगमे व चंदिमे ॥६४॥

॥ छाया ॥

स तादृशो दुःखसहो जितेन्द्रियः, श्रुतेन युक्तोऽममोऽकिञ्चनः।
विराजते कर्मघनेऽपगते, कृत्स्नाभ्रपुटापगमे इव चन्द्रमाः ॥
इति ब्रवीमि ॥६४॥

'सज्झायसज्झाणरयस्स'—इस पद से चित्त की एकाग्रता, विकथाओं का त्याग, तथा निकम्मे रहने का त्याग सूचित किया है।

'ताइणो' पद से संयम की रक्षणशीलता व्यक्त की गई है। 'अपावभावस्स'—पद से जिनेन्द्र भगवान् के वचनों में रुचि रखने का विधान किया गया है। 'तवेरयस्स' पद से आत्मशुद्धि की अतिशय अभिलाषा रखना बताया गया है ॥६३॥

सज्झायसज्झाणरयस्स એ પદથી ચિત્તની એકાગ્રતા, વિકથાઓનો ત્યાગ, તથા નકામા રહેવાનો ત્યાગ સૂચિત કર્યો છે ताइणो પદથી સંયમની રક્ષણશીલતા વ્યક્ત કરી છે अपावभावस्स પદથી જિનેન્દ્ર ભગવાનનાં વચનોમાં રુચિ રાખવાનું વિધાન કરવામાં આવ્યું છે तवेरयस्स પદથી આત્મશુદ્ધિની અતિશય અભિલાષા રાખવાનું બતાવ્યું છે (૬૩)

॥ टीका ॥

'से तारिसे' इत्यादि।

तादृशः=पूर्वोक्तगुणविशिष्टः, दुःखसहः=अनुकूलप्रतिकूलपरीषहजिष्णुः, जितेन्द्रियः=रागद्वेषरहितः, श्रुतेन युक्तः=शास्त्रमर्माभिज्ञः अममः=ममत्वरहितः, अकिञ्चनः=द्रव्यभावपरिग्रहशून्यः, स साधुः कर्मघने=कर्मघन इवेति कर्मघनः, तस्मिन्, पुरुषव्याघ्रवत्समासः, आवरकत्वेन घनसादृश्य, मेघसदृशे ज्ञानावरणीयादिकर्मणीत्यर्थः अपगते=प्रक्षीणे सति, कृत्स्नाभ्रपुटापगमे=सकलजलदमण्डलावरणक्षये सति चन्द्रमा इव विराजते=शोभते, अनन्तविमलकेवलज्ञानप्रकाशादित्यर्थः॥

'दुक्खसहे' इत्यनेन साधोः प्राणात्ययसङ्कटेऽपि प्रवचनाचलत्वं, 'जिइंदिए' इत्यनेनाचारवत्त्वं, 'सुएण जुत्ते' इत्यनेन ज्ञानवत्त्व, 'अममे' इत्यनेनैहिक-राजसमानादि,-पारत्रिक-दिव्यदेवर्द्ध्यादिप्राप्तिलक्षणपौद्गलिकसुखाभिलापनिर-

---

'स तारिसे' इत्यादि। पूर्वोक्तगुणविशिष्ट, अनुकूल—प्रतिकूल परीषहों को जानने वाले, रागद्वेष रहित, जितेन्द्रिय, आगमों के मर्म के ज्ञाता, ममत्वरहित, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्यागी साधु, मेघ के समान आवरण करने वाले कर्मों का क्षय होने पर केवल ज्ञान रूपी प्रकाश से शोभित होते हैं। जैसे मेघ का पटल हटने से चन्द्रमा शोभायमान होता है।

'दुक्खसहे' इस पद से यह सूचित किया है कि प्राण जाने पर भी जिनप्रवचन में चलायमान न होना चाहिए। 'जिइंदिए' पद से आचार, 'सुएण जुत्ते' पद से ज्ञान, 'अममे' पदसे इहलोकसम्बन्धी राजसम्मान आदि और परलोकसम्बन्धी देवता आदि की ऋद्धि वगैरह

से तारिसे० ઇત્યાદિ પૂર્વોકતગુણવિશિષ્ટ, અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ પરીષહોને જીતનાર, રાગદ્વેષ રહિત, જિતેન્દ્રિય, આગમના મર્મના જ્ઞાતા, મમત્વ-રહિત, બાહ્યાભ્યન્તર પરિગ્રહના ત્યાગી, એવા સાધુ મેઘની પેઠે આવરણ કરનારા કર્મોનો ક્ષય થતા કેવળજ્ઞાનરૂપી પ્રકાશથી શોભિત બને છે, કે જેમ મેઘનો પડદો હટી જવાથી ચન્દ્રમા શોભાયમાન બને છે દુક્ખસહે પદથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે-પ્રાણ જવા છતા પણ જિન પ્રવચનથી ચલાયમાન થવુ ન જોઇએ જિઇંદિએ શબ્દથી આચાર, सुएण जुत्ते પદથી જ્ઞાન, अममे પદથી ઇહલોકસબંધી રાજસમાન અને પરલોકસબંધી દેવતા આદિની ઋદ્ધિ વગેરે પૌદ્ગલિક સુખોની

पेशलम्, 'अकिंचणे' इत्यनेन च पक्षिणः पक्षातिरिक्तसाहाय्यरहितत्वमिव साधोर्धर्मोपकरणातिरिक्तवस्तुरहितत्वं धर्मोपकरणेऽप्यगृध्नुत्वं च सूचितम्। इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥६४॥

इति श्री विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापकप्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–शाहू
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित कोल्हापुर-
राजगुरु बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलाल–व्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्याया-
मष्टममाचारप्रणिधिनामकमध्ययनं
समाप्तम् ॥८॥

पौद्गलिक सुखों की अभिलाषा का त्याग, और 'अकिंचणे' पदसे, जैसे—पक्षी को, सिवाय पाखों के और किसी की अपेक्षा नहीं रहती, उसी प्रकार साधु को धर्म के उपकरणों के सिवाय समस्त वस्तुओं का त्याग, तथा धर्मोपकरणों में भी ममता न रखना सूचित किया है ॥६४॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि–हे जम्बू! भगवान् महावीर प्रभु के समीप जैसे मैंने सुना है वैसा ही मैं तुझे कहता हूँ ॥

श्री दशवैकालिक सूत्र की आचारमणिमञ्जूषा टीका के आठवें आचारप्रणिधिनामके अध्ययन का हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥८॥

અભિલાષાનો ત્યાગ, અને अकिंचणे પદથી જેમ પક્ષીને પાંખો વિના બીજી કશી અપેક્ષા રહેતી નથી, તેમ સાધુને ધર્મના ઉપકરણો સિવાય બીજી બધી વસ્તુઓનો ત્યાગ તથા ધર્મોપકરણોમાં પણ મમતા ન રાખવી એમ સૂચિત કર્યું છે (૬૪)

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે કે હે જમ્બૂ! ભગવાન મહાવીર પ્રભુની સમીપે જેવું મે સાભળ્યુ છે તેવુજ મે તમને કહ્યુ છે

ઇતિ દશવૈકાલિકસૂત્રનુ આઠમુ આચારપ્રણિધિ નામનુ
અધ્યયન સમાપ્ત (૮)

॥ अथ नवमाध्ययनम् ॥

आचारपालनपरस्यैव वचो निरवद्यं भवतीत्यत आचारमणिविधि-बोधनार्थमष्टममध्ययनमुक्तम् । आचारमणिधानं च यथायोग्यविनययुक्तस्यैव भवतीति विनयसमाधिनामकं नवममध्ययनं शिक्षणीयानां विनयशिक्षणार्थं प्रस्तूयते—'थंभाव' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
थंभा व कोहा व मयप्पमाया, गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे।
१३ १४ १२ ११ १५ १७ १८ १६ १९ २०
सो चेव उ तस्स अभूइभावो, फलं व कीअस्स वहाय होइ ॥१॥

॥ छाया ॥

स्तम्भाद् वा क्रोधाद् वा माया-प्रमादाद् गुरोः सकाशे विनयं न शिक्षते।
स एव तु तस्य अभूतिभावः फलमिव कीचकस्य वधाय भवति ॥१॥

॥ अथ नववाँ अध्ययन ॥

जो आचार का सम्यक् प्रकार परिपालन करने में तत्पर रहते हैं उन्हीं की भाषा निरवद्य होती है। यह बताने के लिए आठवाँ अध्ययन भगवान् ने कहा है। आचार का परिपालन वही कर सकता है जो यथोचित विनयवान् हो, इसलिए विनयसमाधि नामक नववें अध्ययन में विनय की शिक्षा का व्याख्यान करते हैं—'थभाव' इत्यादि।

(અથ નવમું અધ્યયન)

જે આચારનું સમ્યક્ પ્રકારે પરિપાલન કરવામાં તત્પર રહે છે તેની ભાષા નિરવદ્ય હોય છે એ બતાવવા માટે ભગવાને આઠમું અધ્યયન કહેલું છે

જે યથાર્થ વિનયવાન હોય તેજ આચારનું સંપૂર્ણપણે પાલન કરી શકે છે, એટલા માટે વિનયસમાધિ નામના નવમા અધ્યયનમાં વિનયની શિક્ષાનું વ્યાખ્યાન કરે છે— "થભાવ" ઇત્યાદિ

॥ टीका ॥

यः स्तम्भाद्=जातिकुलाद्यभिमानात्, क्रोधाद्=विनयाद्यर्थगुरुकृतभर्त्सना समुत्थितादक्षमालक्षणात्, मायाप्रमादात्, तत्र मायातः = कपटतः असत्यामपि वेदनाया 'मम देहे वेदना विद्यते' इत्यादिरूपतः, सूत्रे प्राकृतत्वाद् द्वन्द्व', प्रमादाद् वा=निद्राविकथाऽऽलस्यादितो वा गुरोः सकाशे=समीपे विनय=ग्रहणासेवन शिक्षालक्षण न शिक्षते=नाधीते तस्य साधोस्तु स एव=स्तम्भक्रोधादिक एव अभूति भाव'=ज्ञानादिसम्पदाहित्यम्, कीचकस्य=कीचकाख्यस्य वेणोः फलमिव वधाय= नाशाय=गुणरूप-भावप्राण-नाशाय भवति=जायते, वंशस्य फलोद्गमे सति तन्नाश इवेति भावः। शिष्यः स्वकल्याणाय स्तम्भादिकं विहाय गुरुसमीपे विनय शिक्षामुपाददीतेति गाथाशयः ॥१॥

जो जाति या कुल के अभिमान से अथवा विनय आदि सिखलाने के लिए गुरु द्वारा की हुई भर्त्सना द्वारा उत्पन्न हुए क्रोध से तथा वेदना न होने पर भी "मेरे शरीर में वेदना है" इस प्रकार की माया (कपट) से, तथा निद्रा, विकथा, आलस्य, आदि प्रमाद से गुरु के समीप ग्रहण आसेवन रूपा शिक्षा नहीं सीखता, उस साधु की ज्ञानादि रूप सम्पत्ति, अभिमान या क्रोध आदि से नष्ट हो जाती है, जैसे कीचक बांस के फल आनेपर उस बांस का नाश हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि अभिमान तथा क्रोध आदि का त्याग करके शिष्य को गुरु के समीप विनय की शिक्षा ग्रहण करना चाहिए ॥१॥

જે જાતિ અથવા કુલના અભિમાનથી, અથવા વિનય આદિનું શિક્ષણ આપવા માટે ગુરૂએ કહેલા કડવા શબ્દોથી ઉત્પન્ન થયેલા ક્રોધથી તથા કોઇ પ્રકારની શરીરમા વેદના નહી હોવા છતાય "મારા શરીરમા વેદના થાય છે" આ પ્રમાણે માયા-કપટથી તથા નિદ્રા, વિકથા આલસ્ય આદિ પ્રમાદોથી ગુરુના સમીપે ગ્રહણ અને આસેવન રુપ શિક્ષા ગ્રહણ કરતા નથી, તે સાધુની જ્ઞાન આદિ રૂપ જે સંપત્તિ છે તે અભિમાન અથવા ક્રોધથી નાશ પામી જાય છે. જેવી રીતે કીચક વાંસને ફળ આવે ત્યારે તે વાંસનો નાશ થઇ જાય છે

તાત્પર્ય એ છે કે—અભિમાન તથા ક્રોધ વગેરેનો ત્યાગ કરીને શિષ્યે ગુરુની સમીપમા વિનયનું શિક્ષણ લેવુ જોઇએ (૧).

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ९ ४ ५ ६ ७ ८
जे यावि मदेत्ति गुरु विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुए त्ति नच्चा।
१० ११ १२ १५ १६ १३ १४
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करंति आसायण ते गुरूण ॥२॥

॥ छाया ॥

ये चापि मन्द इति गुरुं विदित्वा डहरोऽयम् अल्पश्रुत इति ज्ञात्वा।
हीलयन्ति मिथ्यात्व प्रतिपद्यमाना' कुर्वन्ति आशातना ते गुरूणाम् ॥२॥

॥ टीका ॥

'जे यावि' इत्यादि।

ये चापि केचन द्रव्यसाधवः मन्द इति=मन्दप्रज्ञोऽयमिति विदित्वा, तथा डहरोऽयम्=बालोऽयम्–अल्पवयस्कोऽयमिति, तथा अल्पश्रुत.=अल्पज्ञोऽयम्–अविदितसिद्धान्तोऽयमिति च ज्ञात्वा=मत्वा गुरु=रत्नाधिकं हीलयन्ति=अवमानयन्ति ते शिष्याः मिथ्यात्वम्=अनन्तसंसारकारणभूत पाप प्रतिपद्यमानाः=प्राप्यमाणाः 'गुरुर्न हीलनीयः' इति जिनशासनरहस्यममन्यमाना सन्त इत्यर्थः, गुरुणा-

'जे यावि' इत्यादि। जो द्रव्यलिङ्गी साधु रत्नाधिक गुरु को 'यह मन्दबुद्धि है' 'यह बालक है' 'यह अल्पश्रुत–सिद्धान्त का अनभिज्ञ है' ऐसा मानकर उनका अनादर करता है, वह अनन्त संसार के कारणभूत मिथ्यात्व को प्राप्त होकर गुरु की निन्दा न करना रूप जिनशासन के रहस्य को न जानता हुआ गुरु की आशातना-अपराध करता है। भाव

'जे यावि' इत्यादि जे द्रव्यलिंगी साधु रत्नाधिक गुरुने 'आ मंदबुद्धि छे' 'आ बालक छे' 'अल्पश्रुत-सिद्धान्तना अजाण छे' ए प्रमाणे समजीने तेमनो अनादर करे छे, ते अनन्त संसारना कारणभूत मिथ्यात्वने प्राप्त थई, 'गुरुनी निंदा नहि करवी जोईए' एवु जिनशासननुं जे रहस्य तेने नही जाणवाथी गुरुनी अशातना-अपराध-करे छे. तात्पर्य ए छे के — जे गुरु होय अने दीक्षाना

गाशातना=तिरस्कारेणापरा र कुर्वन्ति=जनयन्ति । रत्नाधिकः सर्वथा विनयभावे नाऽऽराधनीय इति भावः ॥२॥

॥ मूलम् ॥

पगईए मन्दा वि भवंति एगे, डहरा विय जे सुयबुद्धोववेया।
आयारमंता गुणसुट्ठिअप्पा, ते हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा ॥३॥

(छाया)

प्रकृत्या मन्दा अपि भवन्ति एके डहरा अपिच ये श्रुतबुद्ध्युपपेताः।
आचारवन्तः गुणसुस्थितात्मानः ते हीलिता' शिखीव भस्म कुर्युः ॥३॥

॥ टीका ॥

'पगईए' इत्यादि ।

एके = केचित् प्रकृत्या=स्वभावेन मन्दा अपि = वार्तालापादिव्यवहारा ऽकुशला अपि भवन्ति, ये डहरा=अल्पवयस्काः, अपिच=किन्तु श्रुतबुद्ध्युपपेताः= श्रुतज्ञानसपन्नाः=आगमार्थज्ञानवन्तः, आचारवन्तः=पञ्चप्रकाराचारयुक्ताः, गुण सुस्थितात्मानः=मूलोत्तरगुणरक्षणतत्परान्तःकरणाः, गुरवो भवन्ति, ते=उभयविधा

यह है कि जो गुरु है, तथा दीक्षा मे बडे हैं वे बुद्धि आदि गुणों से समृद्ध न भी हों तथा बाल्क हों तो भी सब प्रकार से उन की विनय द्वारा आराधना करनी चाहिए ॥२॥

'पगईए' इत्यादि। कोई कोई गुरु वार्तालाप व्यवहार आदि मे कुशल नहीं भी होते, तथा कोई कोई अल्प उम्र के भी होते हैं, किन्तु श्रुत ज्ञान से सपन्न, पाँच आचारों से युक्त तथा मूल और उत्तर गुणों के पालन करने मे मन लगाने वाले होते हैं, उन दोनों प्रकार के

મોટા હોય તે કદાચ બુદ્ધિ વગેરે ગુણોમા સપૂર્ણ ન હોય, તેમજ બાલક હોય તો પણ તેમની સર્વ પ્રકારે વિનય સહિત આરાધના કરવી જોઇએ (૨)

'પગઈએ' ઇત્યાદિ કોઇ-કોઇ ગુરુ વાર્તાલાપ આદિ વ્યવહારમા કુશળ નથી હોતા, તથા કેટલાક નાની ઉમરવાળા પણ હોય છે પરન્તુ શ્રુતજ્ઞાનથી સપન્ન, તથા પાચ આચારોથી યુક્ત તથા મૂલ ગુણ અને ઉત્તર ગુણોનું પાલન કરવામા મન સ્થિર રાખવાવાળા હોય છે એ બન્ને પ્રકારના રત્નાધિકનો અવિનય કરવાથી જ્ઞાન આદિ

ापि, हीलिताः=खिंसिताः तिरस्कृताः सन्तः इत्यर्थः शिखीव=वह्निरिव भस्म=
ानादिगुणनाशं कुर्युः=जनयेयुः, यस्य कस्यापि रत्नाधिकस्याशातना ज्ञानादिगुण
णनाशायजायते, इत्याशयः ॥३॥

पुनर्विशेषरूपेण डहरतिरस्कारे दोषमाह—'जे यावि' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ५ ३ ४ ६ ७ ८ ९

जे यावि नाग डहर ति नचा, आसायए से अहियाय होइ।

१० ११ १२ १५ १६ १४ १३

एवायरियं पि हु हीलयंतो, नियच्छई जाइपह खु मंदो ॥४॥

॥ छाया ॥

यश्चापि नाग डहर इति ज्ञात्वा आशातयति तस्य अहिताय भवति।
एवमाचार्यमपि हु हीलयन् नियच्छति जातिपथ खलु मन्द' ॥४॥

॥ टीका ॥

यश्चापि डहर इति='अयं बालः' इति ज्ञात्वा=मत्वा, नाग=सर्पम्, आशा-
तयति=अवमानयति 'अयमकिंचित्करः' इति कृत्वा लकुटादिनाऽपराध्यति, मा-

---

रत्नाधिक का अविनय करने से ज्ञान आदि सद्गुणों का उसी प्रकार नाश हो जाता है
जैसे अग्नि म पडा हुआ इधन भस्म हो जाता है, अर्थात् किसी भी रत्नाधिक की आशातना
करने से ज्ञान आदि गुणों का नाश हो जाता है ॥३॥

फिर भी बाल (अल्पवयवाले) रत्नाधिक के अविनय के दोष बताते हैं—'जेयावि'
इत्यादि।

जैसे कोई व्यक्ति "यह छोटा है" ऐसा समझ कर दण्ड आदि से साँपको छेडता

સદ્ગુણોનો નાશ થઈ જાય છે જેવી રીતે અગ્નિમા લાકડા (કાષ્ઠ) પડતા તે
ભસ્મ થઈ જાય છે તેવીજ રીતે-કોઇપણ રત્નાધિકની આશાતના કરવાથી જ્ઞાન
આદિ ગુણોનો નાશ થઈ જાય છે (૩)

ફરીથી પણ બાલ (અલ્પવય વાળા) રત્નાધિકના અવિનયથી થતા દોષોને
બતાવે છે — 'જેયાવિ' ઇત્યાદિ

જેવી રીતે કે જે કોઇ વ્યક્તિ 'આ નાન્હો છે" એ પ્રમાણે સમજીને

आशातना, मे=तस्य=अपराधकर्तुः, अहिताय=जीवितनाशाय भवति 'एव' एवम्=अनेनैव प्रकारेण डहरः बुद्धचेत्यर्थः आचार्यमपि=आचार्य-पदाधिष्ठितमपि योग्यमुनेरभावेऽल्पवयस्कमप्याचार्यपदे नियुक्तमित्यर्थः। अपिशब्दाद् रत्नाधिक हीलयन्=तिरस्कुर्वन् मन्दः = जिनवचनमर्मानभिज्ञः, खलु=निश्चयेन जातिपथ= जन्ममार्गं संसारमिति यावत् नियच्छति=पुनः पुनः प्राप्नोति संसारे परि भ्रमत्येवेत्यर्थः ॥४॥

(मूलम्)

आसीविसो या वि परं सुरुट्ठो, किं जीवनासाउ परं नु कुज्जा।
आयरियपाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मुक्खो ॥५॥

॥ छाया ॥

आशीविषो वाऽपि परं सुरुष्टः किं जीवनाशात् परं नु कुर्यात्।
आचार्यपादाः पुनरप्रसन्नाः अबोधि० आशातना नास्ति मोक्षः ॥५॥

॥ टीका ॥

'आसीविसो' इत्यादि।

परम्=अतिशयेन सुरुष्टोऽपि=सर्वथा क्रुद्धोऽपि आशीविषो विषधरः,

है, वह छेड़ना उस छेड़ने वाले का अहित—जीवन का नाश करने वाला होता है उसी प्रकार कदाचित योग्य मुनि के अभाव में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित अल्पवयस्क भी आचार्य को बालक समझ कर उनका तिरस्कार करने वाला जिन मार्ग का अनजान, निश्चय ही संसार में परिभ्रमण करता है ॥४॥

'आसीविसो' इत्यादि।

अत्यन्त क्रुद्ध विषधर जीवन का अन्त कर सकता है इस से अधिक और कुछ भी

દંડ-લાકડી આદિ વડે કરી સર્પને છંછેડે છે, તો તે પોતાના જીવનનો નાશ કરનારું હોય છે તે પ્રમાણે કદાચિત્ યોગ્ય મુનિના અભાવમાં આચાર્ય પદ ઉપર પ્રતિષ્ઠિત નાની ઉમરના આચાર્યને બાળક સમજીને તેનો તિરસ્કાર કરવા વાળા, જિન માર્ગના અજાણ નક્કી સંસારમાં જ પરિભ્રમણ કરે છે (૪)

"આસીવિસો" ઇત્યાદિ એકદમ ક્રોધાયમાન થયેલો સર્પ જીવનનો નાશ

जीवनाशात्=प्राणोपघातात्, परम्=अधिक, किं नु वा कुर्यात्? न किमपीत्यर्थः। आचार्यपादाः=पूज्यचरणाः पुनरप्रसन्नाः=विनयाभावेन अनाराधिताश्चेद् भवन्ति, तदा आशातना=विनयादिगुणनाशो भवति, ततः अबोधिः=जिनधर्माप्राप्तिः, तथा च सति साधोर्मोक्षो=मुक्तिर्नास्ति=न भवति। सर्पदष्टाः सकृदेव म्रियन्ते, आशातनाकर्तारस्त्वनन्तवार म्रियन्ते, मोक्षाभावेन पुनः पुनर्जन्म-मरणलक्षणसंसार-परिभ्रमणसत्त्वादिति भावः ॥५॥

॥ मूलम् ॥

जो पावगं जलिअमवक्कमिज्जा, आसीविसं वावि हु कोवइज्जा
जो वा विसं खायइ जीविअट्ठी, एसोवमाऽऽसायणया गुरूणं ॥६॥

नहीं बिगाड सकता। किंतु पूज्यपाद आचार्य महाराज, यदि भली भाँति विनय पूर्वक आराधित न किये जायँ तो उनकी आशातना रूप अबोधि–मिथ्यात्व से मुनि को मुक्ति नहीं मिल सकती, अर्थात् आचार्य की आशातना से बोधि-सम्यक्त्व का अभाव हो जाता है और बोधिका अभाव होने से चतुर्गतिक ससार सागर के जन्ममरणादि विविध विकराल आवर्तो (चक्रों) में घूमते घूमते जन्म जन्मान्तर तक दु ख भोगने पडते हैं, यह आशय है कि साप के काटने से एक ही वार मृत्यु होती है किन्तु गुरु की आशातना करने से वारवार जन्म मरण के दु ख भोगने पडते हैं, क्योंकि उन्हें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती ॥५॥

करी शके छे तेथी वधारे बीजुं कशुं य बगाडी शकतो नथी, परन्तु पूज्यपाद आचार्य महाराजनी रूडा प्रकारे जो आराधना विनयपूर्वक करवामा आवे नही, तो तेमनी अशातना रूप अबोधि-मिथ्यात्वथी मुनिने मुक्ति मळी शकती नथी अर्थात् आचार्यनी अशातनाथी बोधिबीज-सम्यक्त्वनो अभाव थई जाय छे, अने बोधिनो अभाव थवाथी चार गतिरूप संसार सागरना जन्म-मरणादि विविध विकराल चक्रोमां भटकता-भटकता जन्म जन्मातर सुधी दु ख भोगववा पडे छे आशय ए छे के– सर्पना डंशथी एकज वार मृत्यु थाय छे, परन्तु गुरुनी अशातना करवाथी वारवार जन्म-मरणना दु खो भोगववा पडे छे कारणके तेने मोक्षनी प्राप्ति थती नथी (५)

॥ छाया ॥

यः पावकं ज्वलितमवक्रामेत्, आशीविषं वाऽपि हु कोपयेत्।
यो वा विषं खादति जीवितार्थी, एषोपमाऽऽशातनया गुरूणाम् ॥६॥

(टीका)

'जो पावग' इत्यादि।

यो नरः ज्वलितं=दीप्तं पावकं=वह्निम् अवक्रामेत्=पादेनारोहेत् पादतले कृत्वा तिष्ठेदित्यर्थः, अपिवा आशीविषं=सर्पं कोपयेत्=क्रुद्धं कुर्यात, वा=अथवा यो जीवितार्थी=प्राणान् दिधीर्षुः विषं=गरलं खादति=अश्नाति, एषा उपमा=तुल्ना गुरूणाम् अशातनया भवति। गुरूणामाशातना ज्वलितानलारोहण-सर्पकोपोत्पादन-प्राणधारणनिमित्तविषभक्षणैतत्त्रितयतुल्येति भावः ॥६॥

अत्र विशेषमाह—'सिया हु' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ ४ २ ३ ५ ६ ९ ७ ८ १० ११
सिया हु से पावय नो डहिज्जा, आसीविसो वा कुविओ न भक्खे।
१२ १४ १३ १५ १६ १९ २० १८ १७
सिया विसं हालहलं न मारे, न यावि मुक्खो गुरुहीलणाए ॥७॥

'जो पावग' इत्यादि। जो मनुष्य जलती हुई अग्नि को पैर से दबा कर खड़ा हो जाय, सर्प को क्रोधित करे तथा जो जीने की इच्छा रखता हुआ भी विष खा लेवे, तो उसकी जैसी दुर्दशा होती है वैसी ही गुरु की आशातना करने वाले की होती है। अर्थात् गुरु की आशातना इन सब उपमाओं के समान अनर्थ करने वाली है ॥६॥

'जो पावग' ઇત્યાદિ જે મનુષ્ય સળગતી અગ્નિમાં પગ મૂકીને ઉભો થઈ જાય, સર્પને ક્રોધિત કરે, તથા જે જીવવાની ઇચ્છા રાખે છે છતાય, વિષ-ઝેર ખાય, તો તેની જે દુર્દશા થાય છે તેવી જ દુર્દશા ગુરુની આશાતના કરવાવાળાની થાય છે અર્થાત્ ગુરુની આશાતના, ઉપર આપેલી સર્વ ઉપમાઓ પ્રમાણે અનર્થ કરવાવાળી છે (૬)

॥ छाया ॥

स्यात् खलु स पावको नो दहेत्, आशीविषो वा कुपितो न भक्षेत्।
स्यात विषं हलाहलं न मारयेत्, न चापि मोक्षो गुरुहीलनया ॥७॥

॥ टीका ॥

स्यात्=कदाचित् स ज्वलितः पावकः=अग्निः खलु=निश्चयेन नो दहेत्= मणिमन्त्रादिमाहात्म्यान्न भस्मीकुर्यात्, वा=अथवा कुपितः=उत्पादितक्रोधः आशीविषः=सर्पो न भक्षेत्=केनापि कारणवशेन न दशेत्, अपिच हलाहल विष=तीव्रतर गरल हलाहल-नामधेयम्, उक्त च हलाहलस्वरूपं यथा—

"गोस्तनाभफलो गुच्छ-स्तालपत्रच्छदस्तथा।
तेजसा यस्य दह्यन्ते, समीपस्था द्रुमादयः ॥१॥

यहा विशेषता दिखाते है—'सिया हु' इत्यादि।

संभव है कि अग्नि किसी को न भी जलावे, क्रोधित किया हुआ सर्प किसी कारण से न भी काटे और तीव्रतर विष (हलाहल) का भक्षण करने पर भी औषध के प्रभाव से बच जावे, परन्तु गुरु की अवहेलना करने से जन्म मरण के दु ख कदापि नहीं मिट सकते, अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कभी संभव नहीं हो सकता।

हलाहल विषका स्वरूप यह है—"गाय के स्तन के समान जिसके फल होते हैं, जिसके तेज से आसपास के वृक्ष आदि भस्म हो जाते है उसे हलाहल विष कहते हैं,

---

વિશેષતા બતાવે છે—'सिया हु' ઇત્યાદિ

સંભવ છે કે— કદાચિત્ અગ્નિ કોઇને બાળે પણ નહિ, ક્રોધાયમાન થયેલો સર્પ પણ કદાચિત્ કોઇને ડંશ કરે નહી અને ભયાનક હલાહલ વિષ-ઝેરનું ભક્ષણ કરવા છતાંય કોઇ ઔષધના પ્રભાવે પ્રાણ બચી પણ જાય પરન્તુ ગુરુની અવહેલના કરવાથી જન્મ-મરણના દુઃખો કદાપિ પણ મટી શકતા નથી, અર્થાત મોક્ષની પ્રાપ્તિ કદાપિ પણ થાય નહી

હલાહલ વિષનું સ્વરૂપ એ છે કે— 'ગાયના આંચળ પ્રમાણે જેના ફળ હોય છે જેના તેજથી આજુ-બાજુના વૃક્ષો બળીને ભસ્મ થઇ જાય છે તેને

असौ हालाहलो ज्ञेयः, किष्किन्धाया हिमालये।
दक्षिणाब्धितटे देशे कोङ्कणेऽपि च जायते ॥१॥"
इति भावप्रकाशे।

स्यात्=कदाचित् न मारयेत्=विषहारकौषधमन्त्रादिप्रभावेण न प्राणानपहरेत्, परन्तु गुरुहीलनया=गुरुतिरस्कारेण मोक्षो=निर्वाणं न चापि भवति=नैव सपद्यते। पावकाद्याशातनाऽपेक्षया गुर्वाशातना गरीयसेऽनर्थाय कल्पते इति भावः ॥७॥

॥ मूलम् ॥

१ ३ २ ४ ५ ७ ६ ८ ९
जो पव्वय सिरसा भित्तुमिच्छे, सुत्तं व सीहं पडिबोहइज्जा।
१० ११ १४ १२ १३ १५ १६ १७
जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं, एसोवमाऽऽसायणया गुरूणम् ॥८॥

॥ छाया ॥

यः शिरसा पर्वतं भेत्तुमिच्छेत्, सुप्तं वा सिंहं प्रतिबोधयेत्।
यो वा दद्यात् शक्त्यग्रे प्रहारम् एषोपमाऽऽशातनया गुरूणाम् ॥८॥

यह विष किष्किन्धा, हिमालय, दक्षिण समुद्र के किनारे तथा कोङ्कण—(कोकन) देश में उत्पन्न होता है ॥१॥

तात्पर्य यह है कि—अग्नि आदि की अपेक्षा गुरु की आशातना महान् अनर्थका कारण है ॥७॥

હાલાહલ વિષ-ઝેર કહે છે આ વિષ કિષ્કિન્ધા, હિમાલય, દક્ષિણ સમુદ્રના કિનારે તથા કોકણ દેશમા ઉત્પન્ન થાય છે (૧)

અર્થાત્ અગ્નિ આદિની અપેક્ષાએ ગુરુની આશાતના મહાન્ અનર્થનું કારણ છે (૭)

॥ टीका ॥

'जो पव्वयं' इत्यादि ।

यः शिरसा मस्तकेन पर्वत=शैलं भेत्तु=विदारयितुम् इच्छेत्=अभिलषेत्, वा=अथवा सुप्तं=शयितं सिंह प्रतिबोधयेत्=जागरयेत्, यो वा शक्त्यग्रे=शक्तिः= शस्त्र-विशेषस्तस्या अग्रे=धारायां प्रहार=मुष्ट्यादिना ताडनं दद्यात्=कुर्यात्, एषो-पमा=तुलना गुरूणामाशातनया भवति । शिरसा गिरिस्फोटनं, सुप्तसिंहप्रबोधनं, शक्तिधारोपरि मुष्ट्यादिना प्रहारः, एतत्त्रितयवदनर्थाय भवति गुरूणामाशातनेति भावः ॥८॥

अत्रापि विशेषमाह— 'सिया हु' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१ ५ २ ३ ४ ६ ७ १० ९ ८ ११ १२
सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे, सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे ।
१४ १६ १८ १३ १५ २० २१ १९ १८
सिया न भिंदिज्ज व सत्तिअग्गं, न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए ॥९॥

(छाया)

स्यात् खलु शिरसा गिरिमपि भिन्द्यात्, स्यात् खलु सिंहः कुपितो न भक्षेत् ।
स्यात् न भिन्द्याद् वा शक्त्यग्रं, न चापि मोक्षो गुरुहीलनया ॥९॥

'जो पव्वय' इत्यादि । जो अपने मस्तक की टक्कर से पर्वत को छिन्न-भिन्न करना चाहता है, जो सोये हुए सिंह को जगा देता है, जो शक्ति नामक शस्त्र की धार पर मुष्टि से प्रहार करता है, उस की जैसी दशा होती है वैसी ही दशा गुरु की आशातना करने वाले की होती है । अर्थात् गुरु की आशातना जन्म मरण आदि अनेक दुःख का कारण है ॥८॥

'जो पव्वय' ઇત્યાદિ જે પોતાનું માથું મારીને પર્વતને છિન્ન-ભિન્ન કરવા ઇચ્છે છે, જે સુતેલા સિંહને જગાડે છે, જે તલવારની ધાર ઉપર મુઠ્ઠીનો પ્રહાર કરે છે તે સૌની જેવી દશા થાય છે, તેવી જ દશા ગુરુની આશાતના કરવાવાળાની થાય છે અર્થાત્ ગુરુની આશાતના જન્મ-મરણ આદિ અનેક દુઃખોનું કારણ છે (૮)

॥ टीका ॥

स्यात्=कदाचित् कश्चिद् वासुदेवादिः शक्त्यतिशयवशात् शिरसा=मस्तकेन गिरिं=पर्वतमपि खलु=निश्चयेन भिन्द्यात्=विदारयेत्, स्यात्=कदाचित् कुपितः=माप्तक्रोधः सिंहः खलु=निश्चयेन न भक्षेत्=न खादेत् मन्त्रादिप्रभावादिति भावः। वा=अथवा स्यात्=कदाचित् शक्त्यग्र=शक्तिशस्त्रधारा मुष्ट्याद्युपहताऽपि न भिन्द्यात्=न भञ्ज्यात् गीर्वाणानुग्रहादिनेति भावः, परन्तु गुरुहीलनया=गुरोराशातनया मोक्षो=मुक्तिर्नचापि=नचैव भवतीत्यर्थः ॥९॥

॥ मूलम् ॥

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मोक्खो।
तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी, गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा ॥१०॥

॥ छाया ॥

आचार्यपादाः पुनरप्रसन्ना अबोधिः आशातना नास्ति मोक्षः।
तस्माद् अनाबाधसुखाभिकाङ्क्षी गुरुप्रसादाभिमुखो रमेत ॥१०॥

विशेष रूप से अविनय का फल दिखाते हैं—'सिया हु' इत्यादि।

किसी समय वासुदेव आदि की शक्ति के प्रभाव से मस्तक की टक्कर से पर्वत चूर-चूर हो जाय, संभव है कुपित सिंह किसी कारण से जगाने वाले का भक्षण न करे, और यह भी संभव है-कि मन्त्र आदि की शक्ति से शक्ति नामक शस्त्र की धारा मुट्ठी को न छेदे परन्तु गुरु की आशातना निश्चय ही मोक्ष को रोकने वाली होती है ॥९॥

વિશેષ રૂપથી અવિનયનું ફળ બતાવે છે — 'सिया हु' ઇત્યાદિ

કોઇ સમયપર વાસુદેવ આદિની શક્તિના પ્રભાવથી મસ્તકની ટક્કર મારવાથી પણ પર્વતના ચૂરે ચૂરા થઇ જાય, તેમજ સંભવ છે કે ક્રોધાયમાન થયેલો સિંહ કોઇ કારણથી જગાડવાવાળાનું ભક્ષણ પણ ન કરે અને તે પણ સંભવ છે કે — મંત્રશક્તિ વડે તલવારની ધાર પર મુઠ્ઠી મારવા છતાંય જરાય છેદાય નહી, પરન્તુ ગુરુની આશાતના તો નક્કીજ મોક્ષને અટકાવનારી છે (૯)

॥ टीका ॥

'आयरिय' इत्यादि।

आचार्यपादाः=पूज्यचरणाः पुनरप्रसन्नाः=विनयाभावेन अनाराधिता श्चेद् भवन्ति, तदा आशातना = विनयादिगुणभ्रंशः, तेन अबोधिः = जिनधर्माप्राप्तिर्भवति, तथा च सति साधोर्मोक्षो=मुक्तिर्नास्ति=न भवति, तस्माद् = गुरुणामाशातनाया मोक्षप्रतिबन्धकत्वाद् अनाबाधसुखाभिकाङ्क्षी = मोक्षसुखाभिलाषी, गुरुप्रसादाभिमुखः=गुरुप्रसादनसाधनसावधानमनाः सन् रमेत=सुखं विचरेत्। गुरुप्रसादेन करतलगतामलकफलवत् स्वायत्तीकृतमोक्षसुखस्य शिष्यस्य संसारपरिभ्रमणशङ्काऽऽतङ्काद्यभावादिति भावः ॥१०॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ४ ५ ३
जहाहिअग्गी जलणं नमसे, नाणाहुईमंतपयाभिसित्तं।
६ १० ११ ७ ८ ९
एवायरियं उवचिट्ठइज्जा, अणंतनाणोवगओ वि संतो ॥११॥

'आयरियपाया' इत्यादि। आचार्य महाराज की यदि विनयपूर्वक आराधना न की जाय तो उनकी आशातना रूपी मिथ्यात्व से साधु को सिद्धिगति की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए मोक्ष सुख का अभिलाषी, साधु गुरु को प्रसन्न करने में मन लगाता हुआ सुखसे विचरे। क्योंकि, गुरु की प्रसन्नता से शिष्य को मुक्ति का सुख हथेली में रखने हुए आंवले के समान सुलभ हो जाता है और संसार में परिभ्रमण करने का तनिक (थोडा) भी भय नहीं रहता ॥१०॥

'आयरियपाया' ઇત્યાદિ જો, આચાર્ય મહારાજની વિનયપૂર્વક આરાધના કરવામાં આવે નહી તો, તેમની અશાતનારૂપી મિથ્યાત્વથી સાધુને સિદ્ધિગતિની પ્રાપ્તિ થતી નથી એટલા માટે મોક્ષ સુખના અભિલાષી, સાધુ ગુરુને પ્રસન્ન કરવામાં ચિત્ત લગાડીને સુખપૂર્વક વિચરે કારણ કે ગુરુની પ્રસન્નતાથી શિષ્યને મોક્ષનુ સુખ હથેલીમા રાખેલા આમલા સમાન સુલભ થઇ જાય છે અને સંસારમા પરિભ્રમણ કરવાનો થોડો પણ ભય રહેતો નથી (૧૦)

॥ छाया ॥

यथाऽऽहिताग्निर्ज्वलनं नमस्यति, नानाहुतिमन्त्रपदाभिषिक्तम्।
एवमाचार्यमुपतिष्ठेत, अनन्तज्ञानोपगतोऽपि सन् ॥११॥

॥ टीका ॥

'जहा' इत्यादि।

यथा=येन प्रकारेण आहिताग्निः=अग्निहोत्री द्विजः नानाऽऽहुतिमन्त्रपदाभिषिक्तं=नानाऽऽहुतयः=आज्यादिप्रक्षेपाः मन्त्रपदानि='अग्नये स्वाहा' इत्यादीनि, तैरभिषिक्तं=संस्कृतं ज्वलनं=वह्निं नमस्यति=पूजयति। एवम्=अनेन प्रकारेण शिष्यः अनन्तज्ञानोपगतः=केवलज्ञानसंपन्नोऽपि सन् आचार्यं=गुरुम् उपतिष्ठेत=विनयादिना सेवेत ॥११॥

गुरुः शिष्यं प्रति संबोध्याह— 'जस्संतिए' इत्यादि।

(मूलम्)

२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
जस्संतिए धम्मपयाइ सिक्खे, तस्संतिए वेणइयं पउंजे।
१२ १० ११ १२ १ १३ १४ १५
सक्कारए सिरसा पंजलीओ, कायग्गिरा भो मणसा य निच्चं ॥१२॥

॥ छाया ॥

यस्यान्तिके धर्मपदानि शिक्षेत, तस्यान्तिके वैनयिकं प्रयुञ्जीत।
सत्कारयेत् शिरसा प्राञ्जलिकः, कायगिरा भो मनसा च नित्यम् ॥१२॥

'जहाहिअग्गी' इत्यादि। जैसे अग्निहोत्री ब्राह्मण, घृत आदि की अनेक आहुतियों से "अग्नये स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों द्वारा संस्कार की हुई अग्नि को नमस्कार करता है उसी प्रकार शिष्य अनन्तज्ञान (केवलज्ञान) से युक्त होकर भी गुरु (आचार्य) का विनय करे ॥११॥

'जहाहिअग्गी' ઇત્યાદિ જેમ અગ્નિહોત્રી બ્રાહ્મણ ઘૃત ઘી આદિની અનેક આહુતિઓથી 'અગ્નયે સ્વાહા' ઇત્યાદિ મન્ત્રદ્વારા સંસ્કાર કરેલી અગ્નિને નમસ્કાર કરે છે, તે પ્રમાણે શિષ્ય અનન્તજ્ઞાન (કેવલજ્ઞાન) થી યુક્ત હોય તો પણ ગુરુ (આચાર્ય) નો વિનય કરે (૧૧)

॥ टीका ॥

भोशिष्य ! (साधुः) यस्य=आचार्यादेः अन्तिके=समीपे, धर्मपदानि=धर्मप्रधानपदानि शास्त्राणीत्यर्थः, शिक्षेत=अधीयीत, तस्य आचार्यादेः=अन्तिके=सन्निधौ वैनयिकं=विनयव्यवहार, प्रयुञ्जीत=कुर्यात्। केन प्रकारेण विनय कुर्याद्? इत्याह– शिरसा=मस्तकेन सह प्राञ्जलिकः=बद्धकरपुटः शिर.संलग्नबद्धकरपुटः सन्नित्यर्थः, कायगिरा=कायेन=शरीरेण गिरा=वाचा कायेन नम्रीभूय "मत्थएण वदामि" इति भाषमाणः, मनसा च विशुद्धभावेन नित्य=निरन्तर यावज्जीवमित्यर्थः सत्कारयेत्=अभ्युत्थानवन्दनादिना समानयेत्, नत्वध्ययनकाल एव स्वार्थपरायणतयेति भाव ॥१२॥

गुरु, शिष्य के प्रति कहते है—'जस्सतिए' इत्यादि।

हे शिष्य ! विनीत शिष्य का यह कर्तव्य है कि जिन आचार्य आदि के समीप शास्त्रों का अध्ययन करे उन के समाप विनय भाव अवश्य दिखलावे। विनय किस विधिसे करे' सो कहते हैं—दोनों हाथ जोडकर और जोडे हुए हाथों को मस्तक से लगाकर शरीर से नम्र होकर "मत्थएण वदामि" (मस्तक म प्रणाम करता हूँ) इन वचनों का उच्चारण करता हुआ विशुद्ध मनसे निरन्तर (यावज्जीव) गुरु का सम्मान करे।

तात्पर्य यह है कि स्वार्थ साधन क लिए कवल अध्ययन करते समय ही नहीं किन्तु गुरु का सदा सम्मान करना चाहिए ॥१२॥

ગુરુ, શિષ્ય પ્રતિ કહે છે—'जस्सतिए' ઇત્યાદિ

હે શિષ્ય! વિનીત શિષ્યનું એ કર્તવ્ય છે કે જે આચાર્ય આદિની પાસે શાસ્ત્રોનું અધ્યયન કરે, અભ્યાસ કરે, તેમના સમીપ અવશ્ય વિનય-ભાવ બતાવે વિનય કેવી રીતે કરે? તે કહે છે-બે હાથ જોડીને તે જોડેલા હાથોને માથા સુધી લઈને શરીર વડે નમ્રતા બતાવી—मत्थएण वदामि (મસ્તક વડે કરી પ્રણામ કરું છુ) આ શબ્દો બોલીને વિશુદ્ધ મનથી નિરન્તર (યાવતજીવન) ગુરુનું સન્માન કરે

તાત્પર્ય એ છે કે—સ્વાર્થ સાધવા માટે કેવળ અધ્યયન-અભ્યાસ કરતા સમયેજ નહીં, પરન્તુ ગુરુનું સદાય સન્માન કરવું જોઈએ (૧૨)

विनयी शिष्यः कीदृशं चिन्तयेदित्याह–'लज्जादया' इत्यादि।

(मूलम्)

२ १ ३

लज्जादयासंजमबंभचेरं कल्लाणभागिस्स विसोहिठाणं।

४ ५ ६ ७ ८ ९ १२ १० ११ १३

जे मे गुरू सययमणुसासयंति, ते हं गुरू सययं पूययामि ॥१३॥

॥ छाया ॥

लज्जा दया संयमं ब्रह्मचर्यं, कल्याणभागिनो विशोधिस्थानम्।
ये मां गुरवः सततमनुशासयन्ति, तान् अहं गुरून् सततं पूजयामि ॥१३॥

॥ टीका ॥

कल्याणभागिनः=मोक्षाधिकारिणः शुभमार्गगामिन इत्यर्थः लज्जादया संयम–ब्रह्मचर्यम्=लज्जा च दया च संयमश्च ब्रह्मचर्यं चेत्येषां समाहारद्वन्द्वः, तत्र लज्जा=असंयममार्गाद्भयं, दया=परदुःखदूरीकरणेच्छा, संयमः=सावद्ययोगविरतिलक्षणः सप्तदशविधः, ब्रह्मचर्यं=मैथुनविरतिः, एतच्चतुष्टयं विशोधिस्थानं धर्ममलप्रक्षालनस्थानं ये गुरवो मां सततमनुशासयन्ति=लज्जादयादिकं शिक्षयन्ति तान् गुरून् सततं=निरन्तरमहं पूजयामि=विनयादिनाऽऽराधयामि। 'लज्जादयादि-

---

विनयवान् शिष्य कैसा विचार करे? सो बताते हैं—'लज्जा दया' इत्यादि।

मोक्ष मार्ग में गमन करनेवाले जो गुरु, असंयम मार्ग का भय रूप लज्जा, अन्य प्राणियों के दुःख को दूर करने रूप दया, सावद्य व्यापार से विरत होने रूप सत्तरह प्रकार का संयम तथा ब्रह्मचर्य, इन की सदा शिक्षा देते हैं, उन गुरु महाराज की मैं सदा विनय आदि से आराधना करूं।

વિનયવાન શિષ્ય કેવા વિચાર કરે ? તે બતાવે છે—લજ્જાદયા૦ ઇત્યાદિ

મોક્ષ માર્ગમાં ગમન કરવાવાળા જે ગુરૂ અસંયમ માર્ગના ભયરૂપ લજ્જા અન્ય પ્રાણીઓના દુઃખને દૂર કરવા રૂપ દયા, સાવદ્ય વ્યાપારથી નિવૃત્ત થવા રૂપ સત્તર પ્રકારનો સંયમ, તથા બ્રહ્મચર્યની હંમેશા શિક્ષા આપે છે-શિખવે આપે છે-તે ગુરૂ મહારાજની હું વિનયથી હંમેશા આરાધના કરૂં

धर्मोपदेशेन कल्याणपदाधिकारदायिने गुरवे यावज्जीवमपि, इयता विनयादि-लक्षणाराधनेन, मया तदीयनिष्कृति नैव शक्यते कर्तुमिति चिन्तयन् विशुद्ध-चेतसा सतत गुरुपदाराधनतत्परो भवेदिति भावः ॥१३॥

॥ मूलम् ॥

जहा निसंते तवण च्चिमाली, पभासइ केवल भारहं तु ।
एवायरिओ सुअसीलबुद्धिए, विरायइ, सुरमज्झे व इंदो ॥१४॥

॥ छाया ॥

यथा निशान्ते तपनोऽर्चिर्माली प्रभासयति केवल भारतं तु
एवमाचार्यः श्रुतशीलबुद्धया विराजते सुरमध्ये इव इन्द्रः ॥१४॥

॥ टीका ॥

'जहानिसते' इत्यादि। यथा=येन प्रकारेण, निशान्ते=रजन्यवसाने, अर्चि-र्माली=अर्चिषा किरणाना माला=अर्चिर्माला साऽस्यास्तीति अर्चिमाली तपनः=

तात्पर्य यह है कि लज्जा दया सयम और ब्रह्मचर्य का उपदेश देकर कल्याण करनेवाले गुरु महाराज का बदला मैं ऐसी विनय भक्ति करके भी यावज्जीव नहीं चुका सकता हूँ। ऐसा विचार कर शुद्ध चित्त से सदैव गुरु महाराज की आराधना करने में तपर रहे ॥१३॥

'जहा निसते' इत्यादि। रात्रि का अन्त होने पर जैसे सूर्य, सपूर्ण भरत क्षेत्र को प्रकाशित करता है उसी प्रकार आगम और आचार में तपर आचार्य महाराज अर्थागम का

તાત્પર્ય એ છે કે—લજ્જા, દયા, સયમ અને બ્રહ્મચર્યનો ઉપદેશ આપીને કલ્યાણ કરવાવાળા ગુરૂ મહારાજનો બદલો હું એવી વિનય-ભક્તિ યાવત જીવન કરૂ તો પણ ચૂકાવી શકુ તેમ નથી અર્થાત્ ગુરૂનું ઋણ વિનય ભક્તિ જીદગી ભર કરતા છતા ચૂકાવી શકાય તેમ નથી એવો વિચાર કરીને શુદ્ધ ચિત્ત થી ગુરૂ મહારાજની આરાધના કરવા તત્પર રહે (૧૩)

"जहा निसते" ઇત્યાદિ રાત્રી પૂરી થયા પછી જેવી રીતે સૂર્ય, સપૂર્ણ ભરત ક્ષેત્રને પ્રકાશિત કરે છે-અર્થાત્ પ્રકાશ આપે છે તે પ્રમાણે આગમ અને

सूर्यः केवलं=संपूर्ण 'लुप्तविभक्तिकं पदम्' भारत=भरतक्षेत्रं प्रभासयति =स्वकिरणकलापैः प्रकाशयति, एवम्=अनेन प्रकारेण, आचार्यः=गणी, श्रुतशील बुद्धया=श्रुत च शीलं चेति द्वन्द्वः श्रुतशीले तयोर्बुद्धिः श्रुतशीलबुद्धिस्तया, तत्र श्रुत=सिद्धान्त; शील=सकलप्राणिनिकरकल्याणाऽऽकलन तद्विषयिण्या धियेत्यर्थ. प्रभासयति मोक्षमार्गमिति शेष', यद्वा भारतम्-भारम्=अर्थागमलक्षणमागममात तनोतीति भारत=शब्दागमस्वरूपं, प्रभासयति=भव्येषु प्रकाशयति भगवद्भाषि तार्थानुसारेण गणधररचित शब्दागम शब्दतोऽर्थतश्च भव्यान् बोधयतीति भाव, । सुरमध्ये=देवगणमध्ये 'दीव' इन्द्र इव=देवराज इव मुनिमण्डलमध्ये विराजते= संशोभते इत्यर्थः ॥१४॥

॥ मूलम् ॥

१ ४ २ ३

जहा ससी कोमुइजोगजुत्तो, नक्खत्ततारागणपरिवुडप्पा ।

५ ६ ८ १० १२ ११

खे सोहइ विमले अब्भमुक्के, एव गणी सोहइ भिक्खुमज्झे ॥१५॥

॥ छाया ॥

यथा शशी कौमुदीयोगयुक्तः नक्षत्रतारागणपरिवृतात्मा ।
खे शोभते विमलेऽभ्रमुक्के, एव गणी शोभते भिक्षुमध्ये ॥१५॥

॥ टीका ॥

'जहा ससी' इत्यादि ।

यथा=येन प्रकारेण, कौमुदीयोगयुक्तः-कौमुदस्य=कार्तिकमासस्येय' कौमुदी= कार्तिकी पूर्णिमा, अथवा कौमुदी=आश्विनी पूर्णिमा, तस्या योगः=सम्बन्धस्तेन

प्रतिपादन करनेवाले शब्दरूप प्रवचन के तत्त्व को प्रकाशित करते हैं। अतएव वे मुनि मण्डल के मध्य मे इस प्रकार शोभित होते हैं, जैसे देवों में इन्द्र ॥१४॥

આચારમા ત પર આચાર્ય મહારાજ અર્થાગમોના પ્રતિપાદન કરવાવાળા શબ્દરૂપ પ્રવચનના તત્ત્વોને પ્રકાશિત કરે છે એટલા માટે-તે મુનિમંડળના મધ્યમા દેવોની સભામા જેમ ઇંદ્ર મહારાજ શોભે છે તેવી રીતે શોભે છે (૧૪)

युक्तः, यद्वा कौमुदी=चन्द्रकला, तस्या योगः=सकलकलासम्बन्धस्तेन युक्तः=पूर्ण इत्यर्थः सर्वथाशारदपूर्णमण्डल इति भावः, नक्षत्रतारागणपरिवृतात्मा=नक्षत्रतारागणपरिवलितस्वरूपः शशी=चन्द्रः विमले=धूलिधूमध्वान्तादिकृतमालिन्यरहिते, अभ्रमुक्ते=घनपटलशून्ये,' खे=आकाशे, शोभते=द्योतते, एवम्=अनेन प्रकारेण गणी=आचार्यः भिक्षुमध्ये=साधुवृन्दमध्ये शोभते ॥१५॥

॥ मूलम् ॥

महागरा आयरिया महेसी, समाहिजोगे सुअसीलबुद्धिए

संपाविउकामे अणुत्तराइ, आराहए तोसइ धम्मकामी ॥१६॥

॥ छाया ॥

महाकरान् आचार्यान् महैषिणः समाधियोगान् श्रुतशीलबुद्धया ।
संप्राप्तुकामोऽनुत्तराणि आराधयेत् तोषयेत् धर्मकामी ॥ १६॥

॥ टीका ॥

'महागरा' इत्यादि । अनुत्तराणि-न विद्यते उत्तरम्=उत्कृष्टं येभ्यस्तानि ज्ञानादिरत्नानीत्यर्थः, समाप्तुकामो=लब्धुकामः, धर्मकामी=कर्मनिर्जरार्थी, मुनिः

'जहा ससी' इत्यादि। जिस प्रकार नक्षत्र और ताराओं से वेष्टित शरद ऋतु की पूर्णिमासी का चन्द्र मेघ आदि रहित निर्मल आकाश में शोभा पाता है, उसी प्रकार आचार्य महाराज, साधुओं के समूह में शोभित होते है ॥१५॥

'महागरा' इत्यादि। सर्वोत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान आदि रत्नत्रय के अभिलाषी तथा कर्मों की निर्जरा चाहने वाले मुनि, रत्नत्रय के परम स्थान, महर्षि, अर्थात् महान् आनन्द के

"जहा ससी' वी रीते नक्षत्र अने तारा मंडळथी वेष्टित शरद ऋतुनी पूर्णिमा-पूनमनो चन्द्र मेघ रहित निर्मल आकाशमां शोभा पामे छे ते प्रमाणे आचार्य महाराज साधुओना समूहमां शोभी रहे छे (१५)

"महागरा" इत्यादि- सर्वोत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान आदि रत्नत्रयना अभिलाषी तथा कर्मोनी निर्जरानी इच्छा राखवावाळा मुनि रत्नत्रयना परम स्थान, महर्षी, अर्थात

महाकरान्=ज्ञानादिरत्नाधिष्ठानभूतान, महैषिणः=महः=एकान्तोत्सवस्तन्मोक्ष स्तदन्वेषिण' आचार्यान्=गणिनः समाधौ=ध्यानादिविषये योगः=मनोवाकायव्यो येषां ते तथा तान् श्रुतशीलबुद्धया = ज्ञानाचारगोचरया बुद्धया आराधयेत्= संमानयेत् । तोषयेत्=तन्मनोऽनुकूलप्रवृत्त्या प्रसादयेदित्यर्थः. ॥१६॥

॥ मूलम् ॥

३ ४ १ २ ७ ६ ५

सोचा ण मेहावी सुभासियाइं, सुस्सूसए आयरियमप्पमत्तो ॥

११ १२ १० ९ ८ १ १४ १३ १६ १५

आराहइत्ता ण गुणे अणेगे, से पावइ सिद्धिमणुत्तरं ॥१७॥-तिबेमि ॥

॥ छाया ॥

श्रुत्वा ण मेधावी सुभाषितानि, शुश्रूषते आचार्यम् अप्रमत्तः ।
आराध्य णं गुणान अनेकान स प्राप्नोति सिद्धिमनुत्तराम् ॥१७॥ इति ब्रवीमि ।

॥ टीका ॥

'सोचाण' इत्यादि। मेधावी=गुरुभाषितार्थधारणधीसम्पन्नो मुनिः, सुभा षितानि तीर्थकरसङ्कीर्तितविनयाराधनवचांसि, श्रुत्वा=आकर्ण्य, ण=वाक्यालङ्कारे

स्थान मोक्ष के अभिलाषी ध्यानादि में लीन आचार्य महाराज की एकाग्र चित्त और ज्ञाना चार की बुद्धि से आराधना करे, तथा उनके मन के अनुकूल प्रवृत्ति कर के उ सतुष्ट रखे ॥१६॥

'सोचाण' इत्यादि। गुरु महाराज द्वारा उपदेश दिये हुए अर्थ को धार करनेवाली बुद्धिसे युक्त मुनि, तीर्थङ्कर भगवान् के कहे हुए विनय आराधना के वचनों क

મહાન્ આનન્દનું સ્થાન, અને મોક્ષના અભિલાષી ધ્યાન આદિમાં લીન આચાર મહારાજની એકાગ્ર ચિત્ત અને જ્ઞાનાચારની બુદ્ધિથી આરાધના કરે, તથા તેમન મનની અનુકૂળતા પ્રમાણે પ્રવૃત્તિ કરીને તેમને પ્રસન્ન રાખે (૧૬)

'સોચાણ' ઇત્યાદિ- ગુરુ મહારાજ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલા ઉપદેશના અર્થ ધારણ કરવા વાળી બુદ્ધિથી યુક્ત મુનિ, તીર્થંકર ભગવાને કહેલા વિનય આરાધનાન

अप्रमत्तः=निद्रालस्यादिरहितः सावधानः सन्नित्यर्थः, आचार्य=गणिन रत्नाधिकं वा, शुश्रूषते=विनयादिना समाराधयति स विनीतो मुनिः अनेकान्=बहून् गुणान= ज्ञानादीन् आराध्य=संसेव्य, अनुत्तरा=सर्वोत्कृष्टा, सिद्धिं=सिद्धगतिं मुक्तिमिति यावत् प्राप्नोति=लभते, ॥१७॥ इति ब्रवीमि पूर्ववत् ॥

विनयसमाधिनामनवमाध्ययने प्रथम उद्देशः समाप्त. ॥ ॥९–१॥

सुनकर प्रमाद का परित्याग करके सावधान हो कर आचार्य महाराज तथा दीक्षा मे बडे साधु का विनय करके उन्हें सन्मानित करे। ऐसा विनीत मुनि, ज्ञानादि बहुतसे गुणों को प्राप्त करके सर्वश्रेष्ठ सिद्धगति को प्राप्त कर लेता है ॥१७॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते है कि–हे जम्बू ! भगवान् महावीरने जैसा कहा है वैसा ही मैने तुम्हे सुनाया है ॥

विनयसमाधि नामक नववाँ अध्ययन का पहला उद्देश समाप्त ॥९–१॥

વચનોને સાંભળી પ્રમાદનો પરિત્યાગ કરી સાવધાનતાપૂર્વક આચાર્ય મહારાજ તથા દીક્ષાપર્યાયથી મોટા સાધુ મુનિયોનો વિનય કરીને તેમનું સન્માન કરે, એવા વિનીત મુનિ, જ્ઞાન–આદિ ઘણાજ ગુણોને પ્રાપ્ત કરી સર્વશ્રેષ્ઠ સિદ્ધગતિને પ્રાપ્ત કરી લે છે (૧૭)

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે કે હે જમ્બૂ! ભગવાન મહાવીરે જે પ્રમાણે કહ્યું છે તે પ્રમાણે જ મે તમને સંભળાવ્યુ અથવા કહ્યુ છે

વિનયસમાધિ નામના નવમા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ
સમાપ્ત ॥૯–૧॥

अथ द्वितीयोद्देशः।

पुनरपि विनयमहिमानमभिधातुं द्वितीयोद्देशः प्रस्तूयते— 'मूलाउ' इत्यादि

॥ मूलम् ॥

२ ३ १ ५ ४ ७ ६

मूलाउ खंधप्पभवो दुमस्स, खंधाउ पच्छा समुविंति साहा।

८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८

साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता, तओ से पुप्फं च फलं रसो य ॥१॥

॥ छाया ॥

मूलात् स्कन्धप्रभवो द्रुमस्य, स्कन्धात् पश्चात् समुपयान्ति शाखाः।
शाखाभ्यः प्रशाखा विरोहन्ति पत्राणि, ततस्तस्य पुष्पं च फलं रसश्च ॥१॥

॥ टीका ॥

द्रुमस्य=वृक्षस्य, मूलात्=भूमिष्ठभागविशेषात् स्कन्धप्रभवः=स्कन्धोत्पत्तिः, पश्चात्=तदनु, स्कन्धात् शाखाः समुपयान्ति=उद्भवन्ति, शाखाभ्यः= 'साहा' इति मूले लुप्तपञ्चम्यन्तं पदम्, प्रशाखाः=लघुशाखा, विरोहन्ति= समुत्पद्यन्ते, प्रशाखातः पत्राणि विरोहन्तीत्यस्यात्रापि संबन्धः। ततः=तदनन्तरं, तस्य=वृक्षस्य, पुष्पं फलं च, रसश्च, भवतीत्यर्थः ॥१॥

। दूसरा उद्देश।

फिरभी विनय की महिमा कहने के लिए दूसरे उद्देश का प्रारम्भ करते हैं— 'मूलाउ' इत्यादि।

जैसे वृक्ष के मूलसे स्कन्ध की उत्पत्ति होती है, स्कन्ध से शाखाएँ, शाखाओं से प्रशाखाएँ तथा प्रशाखाओं से पत्ते उत्पन्न होते हैं। इसके-अनन्तर उस वृक्ष में फूल, फल और फल में रस आता है ॥१॥

અથ દ્વિતીયોદ્દેશઃ

ફરી વિનયનો મહિમા કહેવા માટે બીજા ઉદ્દેશાનો પ્રારંભ કરે છે.— "મુલાઉ" ઇત્યાદિ—

જેમ વૃક્ષના મૂળથી સ્કન્ધની ઉત્પત્તિ થાય છે સ્કંધથી શાખાઓ, શાખાઓથી પ્રશાખાઓ, તથા પ્રશાખાઓથી પત્તા-પાંદડા ઉત્પન્ન થાય છે તે પછી એ વૃક્ષમાં ફૂલ-ફળ અને ફળમાં રસ આવે છે (૧)

दृष्टान्तं प्रदर्श्य दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—'एव' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
एव धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो।
८ ९ ११ १० १२ १
जेण कित्तिं सुअं सिग्घं, नीसेसं चाभिगच्छइ ॥२॥

॥ छाया ॥

एवं धर्मस्य विनयो मूलं, परमस्तस्य मोक्षः।
येन कीर्तिं श्रुतं श्लाघ्यं निःशेषं चाभिगच्छति ॥२॥

॥ टीका ॥

एवं=महीरुहमूलवत् विनयः=विनयति दूरीकरोति चतुर्गतिपरिभ्रमणक्लेशविधायकं ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं कर्मेति विनयः=गुरुजनाभ्युत्थानाभिवादन-तदादेशकरणादि-तन्मनोऽनुकूलाचरणलक्षणाराधनरूपः, धर्मस्य मूलं=मूलकारणम्, तस्य=विनयस्य, परमः=सर्वोत्कृष्टफलं मोक्षो भवति। येन मूललक्षणेन विनयेन

दृष्टान्त बताकर अब दार्ष्टान्तिक योजना कहते हैं—'एव धम्मस्स' इत्यादि।

चार गतियों में भ्रमण रूप क्लेश को उत्पन्न करनेवाले ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को जो दूर करता है उसे विनय कहते हैं। गुरुजन के आने पर खड़ा हो जाना, अभिवादन (वंदना) करना, उनकी आज्ञा पालना तथा उनके मन के अनुकूल आचरण करके उनकी आराधना करना, यह सब विनय है। जैसे वृक्ष का मूल उस की जड़ है वैसे ही विनय, धर्म का मूल है विनय का सर्वोत्कृष्ट फल मोक्ष है, इस धर्ममूल विनय से

દૃષ્ટાન્ત કહીને હવે દાર્ષ્ટાન્તિક યોજના કહે છે —"एव धम्मस्स" ઇત્યાદિ— ચાર ગતિઓમાં ભ્રમણ કરવા રૂપ ક્લેશને ઉત્પન્ન કરનારા જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોને જે દૂર કરે છે તેને વિનય કહે છે ગુરુજન આવતાં ઉભા થઈ જવુ, વંદના કરવી, તેમની આજ્ઞાનું પાલન કરવુ, તથા તેમની ઇચ્છાને અનુકૂળ આચરણ કરવુ, તેમની આરાધના કરવી, આ સર્વ વિનય તે ધર્મનુ મૂલ છે વિનયનુ—સર્વોત્કૃષ્ટ ફલ મોક્ષ છે ધર્મના

साधुः कीर्तिं=शुभप्रवादलक्षणा तथा श्लाघ्यंश्रुतं=सम्यक्शास्त्रं द्वादशाङ्गात्मकं, निःशेषम्=अखण्ड समग्रमिति यावत्, अभिगच्छति=प्राप्नोति। यथा महीरुहस्य मूलं स्कन्धादिरसपर्यन्तनिमित्तं तथा धर्मस्य मूल विनयः—कीर्त्यादिमोक्षपर्यन्त निमित्तमिति भावः ॥

अथवा—अष्टविधदृष्टान्तप्रदर्शकपूर्वगाथानुरोधेनैतद्गाथाया, स्कन्ध-शाखा-प्रशाखारूपदृष्टान्तत्रयानुरूपानुक्तदार्ष्टान्तिकत्रयमभ्याहरणीयम्, एवं च विनयेन सह क्रमिककार्यकारणभावानुरोधेन ज्ञान, महाव्रत, समित्यादि चाध्याह्रियन्ते, एतैर्विना कीर्तिपदोपलक्ष्यसंयमादिसिद्धिर्न जातु जनितु प्रभवति। तथा च-

---

साधु को कीर्ति तथा समस्त द्वादशाङ्ग की सम्यक् प्राप्ति होती है। आशय यह है कि जैसे वृक्ष का मूल वृक्ष के स्कन्ध से लेकर रस तक का कारण होता है उसी प्रकार विनय, कीर्ति से लगाकर मोक्ष पर्यन्त का कारण है।

अथवा—पहली गाथा मे वृक्ष के आठ अङ्गों को लेकर दृष्टान्त बताये हैं। पूर्व गाथा के अनुरोध से—स्कन्ध, शाखा, प्रशाखा, इन तीन दृष्टान्तों के तीन दार्ष्टान्तिक इस गाथा में समझ लेना चाहिए। इस प्रकार विनय के साथ क्रमश कार्यकारण भाव होने से ज्ञान, महाव्रत और समिति आदिका भी अध्याहार करना चाहिए। इसके विना संयम आदि की सिद्धि नहीं हो सकती। दृष्टान्त इस प्रकार घटाना—(१) वृक्ष के मूल की

મૂળરૂપ એ વિનયથી સાધુ-મુનિઓને કીર્તિ તથા સમસ્ત દ્વાદશાંગની સમ્યક્ પ્રાપ્તિ થાય છે આશય એ છે કે —જેવી રીતે વૃક્ષનું મૂલ-વૃક્ષના સ્કન્ધથી લઈને રસ સુધીનું કારણ હોય છે તે પ્રમાણે વિનય કીર્તિથી આરંભીને મોક્ષ સુધીનું કારણ છે

અથવા—પહેલી ગાથામાં વૃક્ષના આઠ અંગો સહિત દૃષ્ટાંત બનાવ્યું છે પૂર્વની ગાથાના અનુરોધથી—'સ્કન્ધ, શાખા, પ્રશાખા, એ ત્રણ દૃષ્ટાન્તોના ત્રણ દાર્ષ્ટાન્તિક આ ગાથામાં સમજી લેવું જોઈએ' આ પ્રમાણે વિનયની સાથે ક્રમથી કાર્ય-કારણ ભાવ હોવાથી જ્ઞાન, મહાવ્રત, અને સમિતિ આદિનો પણ અધ્યાહાર કરવો જોઈએ તેના વિના સંયમ આદિની સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી દૃષ્ટાન્ત આ

महीरुहमूलवद् धर्मस्य मूल विनयः (१), विनयात्प्रशस्तभावः स्कन्धवत् (२), ततो महाव्रत शाखावत् (३), तस्मात्समितिगुप्ती प्रशाखावत् (४), ताभ्या कीर्तिः, अनेन-कीर्तिकारणीभूता इन्द्रियनिग्रहादयः पत्रतुल्या उपलक्ष्यन्ते(५), ततः श्रुत च द्वादशाङ्गम्, अनेन पुष्पोपमानि पञ्चविधस्वाध्याय-तज्जनितक्षमातपोध्यानानि ध्वन्यन्ते (६), ततः श्लाघ्यं=श्लाघनीयम् उत्कृष्टम्, अनेन कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षःफलतुल्यः (७), मोक्षजनितमनन्तमव्याबाधं सिद्धसुख च फलरससदृशं व्यज्यते। एव मूलाद्यष्टविधवृक्षाङ्गदृष्टान्तो विनयाद्यष्टासु धर्माङ्गेषु क्रमशः समन्वेतीति गाथाशय॰ ॥२॥

तरह विनय, धर्म का मूल है, (२) जैसे वृक्ष के मूल से स्कन्ध होता है वैसे ही विनय से प्रशस्त भाव होता है, (३) स्कन्ध के समान प्रशस्त भाव से शाखा के समान महाव्रत होते हे (४) महाव्रत से प्रशाखाओं के समान समिति गुप्ति होता हैं, (५) समिति गुप्ति से पत्र के समान कीर्ति के कारण इन्द्रियनिग्रह आदि उत्पन्न होते हैं, (६) इन से पुष्पो क सदृश पाच प्रकार के स्वाध्याय तथा स्वाध्यायजनित क्षमा, ध्यान तथा तप की प्राप्ति होता है, (७) इन से वृक्ष क फल के समान सब कर्मों का सर्वथा छूट जाना रूपी मोक्ष प्राप्त होता है, (८) मोक्ष प्राप्त होनेसे फल के रस क सदृश अनन्त अव्याबाध सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार वृक्ष के मूल (जड) आदि अङ्गों के दृष्टान्त, धर्म के विनय आदि आठ अङ्गों में क्रम से जोडे जाते है ॥२॥

પ્રમાણે ઘટાવવુ —(૧) વૃક્ષના મૂળ પ્રમાણે વિનય, ધર્મનુ મૂળ છે (૨) જેવી રીતે વૃક્ષના મૂળથી સ્કન્ધ થાય છે, તેવી રીતે વિનયથી પ્રશસ્ત ભાવ થાય છે (૩) સ્કન્ધના સમાન પ્રશસ્ત ભાવથી શાખાની સમાન મહાવ્રત થાય છે (૪) મહાવ્રતથી પ્રશાખાઓની સમાન સમિતિ-ગુપ્તિ થાય છે, (૫) સમિતિગુપ્તિથી પત્ર-પાદડાની સમાન કીર્તિના કારણ રૂપ ઇન્દ્રિયનિગ્રહ આદિ ઉત્પન્ન થાય છે (૬) તેનાથી પુષ્પોના સમાન પાચ પ્રકારના સ્વાધ્યાય તથા સ્વાધ્યાયથી ઉત્પન્ન ક્ષમા, ધ્યાન તથા તપની પ્રાપ્તિ થાય છે (૭) તેનાથી વૃક્ષના ફલ સમાન સર્વ કર્મોનુ સર્વથા છુટી જવા રૂપ મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે (૮) મોક્ષ પ્રાપ્ત હોવાથી ફૂલના રસ સમાન અનન્ત અવ્યાબાધ સુખ પ્રાપ્ત થાય છે આ પ્રમાણે વૃક્ષના મૂળ આદિ અગોના દૃષ્ટાન્ત, ધર્મના વિનય આદિ આઠ અગોમા ક્રમથી જોડવા મા આવે છે (૨)

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
जे य चडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे।
१४ ९ १० १३ १२ ११
वुज्झइ से अविणीअप्पा, कट्ठ सोयगयं जहा ॥३॥

॥ छाया ॥

यश्च चण्डो मृगः स्तब्धो दुर्वादी निकृतिः शठः।
उह्यते स अविनीतात्मा काष्ठ स्रोतोगतं यथ ॥३॥

॥ टीका ॥

'जे य' इत्यादि।

यश्च मनुष्य. चण्डः=क्रोधनिध्मातमनाः, तथा मृगः = मृगसदृशत्वान्मृगः तत्तुल्यः विवेकशून्यः भीरुर्वा केनचित् भयहेतुना प्रवचनभ्रन्युत इत्यर्थः, यः स्तब्धः=अभिमानी, दुर्वादी=परुषाहितभाषी, निकृतिः=कपटी, शठः=धूर्तो भवति, सोऽविनीतात्मा = सकलसुखसाधनविनयविनिर्मुक्तः क्रोधाविवेकाद्यपरित्यागा दित्यर्थः। यथा=येन प्रकारेण स्रोतोगतं=वारिप्रवाहपतितं काष्ठ=शुष्कं दारु उह्यते प्रवाहेणेतिभावः, तथा उह्यते अनादिचतुर्गतिलक्षणससारप्रवाहेणेत्यर्थः ॥३॥

'जेय' इयादि। जो मनुष्य क्रोधी और अविवेकी होता है, तथा भय क कारण उपस्थित होनपर प्रवचन से च्युत हाजाता है, अभिमानी कठोरभाषी कपटी और धूर्त होता है वह अविनीत, चतुर्गतिक ससार क प्रवाह में इसी प्रकार बहता रहता है, जैस जल के पूर में पडा हुआ सूखा काष्ठ सदैव बहता रहता है। ॥३॥

"जेय" ઇત્યાદિ— જે મનુષ્ય ક્રોધી અને અવિવેકી હોય છે તથા ભયનુ કારણ ઉભુ થતા પ્રવચનથી ચ્યુત થઇ જાય છે, અભિમાની, કઠોર ભાષણ કરનાર, કપટી અને ધૂર્ત હોય છે તે અવિનીત ચાર ગતિ રૂપ સસાર પ્રવાહમા આ પ્રમાણે વહેતો રહે છે જેવી રીતે જલના પ્રવાહમા પડેલુ સૂકુ કાષ્ઠ હમેશા વહેતુ રહે છે-તણાતુ જ રહે છે (૩)

(मूलम्)

३ २ ४ ५ १
विणयमि उवाएण, चोइओ कुप्पई नरो।
८ ६ ९ ७ १० ११
दिव्वं सो सिरिमिज्जंतिं, दंडेण पडिसेहए ॥४॥

॥ छाया ॥

विनये यः उपायेन चोदितः कुप्यति नरः।
दिव्या सः श्रियम् आयन्तीं दण्डेन प्रतिषेधयति ॥४॥

॥ टीका ॥

'विणयमि' इत्यादि।

यो नरः उपायेन=प्रियवचनेन आचार्यादिना विनये=विनयधारणविषये चोदितः=प्रेरितः उपदिष्टः सन् कुप्यति = क्रोधाविष्टो भवति, 'किमहं मूर्खोऽस्मि यन्मामयमुपदिशती' त्यादिदुर्भावनावशादित्यर्थः, आयन्तीं=आगच्छन्तीं दिव्याम्= अलौकिकीं श्रियं=लक्ष्मीं स्वयं दण्डेन=लकुटेन प्रतिषेधयति=निवारयति ।४॥

[1] 'आ' इत्युपसर्गसहितस्य 'इण गतौ' इत्यस्य रूपम्।

'विणयम्मि' इत्यादि। आचार्य महाराज का प्रियवचनों से दिया हुआ विनय आदि का उपदेश सुनकर जो कुपित हो जाता है, अर्थात् "मैं क्या मूर्ख हूँ जो यह मुझे उपदेश देते हैं" इस प्रकार की दुर्भावना से क्रोधित हो जाता है वह व्यक्ति, आती हुई अलौकिक लक्ष्मी को डंडा मारकर खुद रोक देता है ॥४॥

"विणयम्मि, ઇત્યાદિ— પ્રિય વચનોથી આપેલો આચાર્ય મહારાજનો વિનય વિષેનો જે ઉપદેશ તેને સાંભળીને જે કોપાયમાન થઇ જાય છે અર્થાત "શું હું મૂર્ખ છું કે જે મને આ ઉપદેશ આપે છે" આ પ્રકારની દુર્ભાવનાથી ક્રોધિત થઇ જાય છે તે વ્યક્તિ-માણસ, સામે ચાલીને આવેલી અલૌકિક લક્ષ્મીને ડંડા મારીને ખુદ પોતેજ રોકી દે છે (૪)

अविनयदोषमाह—'तहेव' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१० ४ १ २ ३
तहेव अविणीअप्पा, उववज्झा हया गया ।
९ ७ ८ ५ ६
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिया ॥५॥

॥ छाया ॥

तथैव अविनीतात्मानः औपवाह्या हया गजाः ।
दृश्यन्ते दुःखमेधमाना आभियोग्यमुपस्थिताः ॥५॥

॥ टीका ॥

यथा औपवाह्याः=राज्ञा राजप्रियाणां चोपवाहनयोग्याः, हयाः=अश्वाः गजाः=हस्तिनः अविनीतात्मानः=शिक्षाप्रतिकूलप्रवृत्तिमन्तः सन्तः आभियोग्यमुपस्थिताः–आभिमुख्येन युज्यन्ते=भारवहनकर्मसु व्यापार्यन्ते इत्यभियोगास्तेषां भावः आभियोग्यं=भारवहनकर्मकरत्वभारवाहित्वमित्यर्थः उपस्थिताः=प्राप्ताः दुःखम् एधमानाः=धातूनामनेकार्थत्वाद् अनुभवन्तः स्वाभीष्टपुष्टिकारकचणकाद्याहारप्रतिरोधेन विविधाधिकभारवाहित्वेन च सततं खिद्यन्तो दृश्यन्ते, तथैव=तद्वदेव अविनीतात्मानः साधव उभयलोकदुःखानुभविनो भवन्तीत्यर्थः ॥५॥

अविनय के दोष दिखाते हैं—'तहेव' इत्यादि ।

राजाओं की या राजा के प्रियजनों की सवारी के काम आने वाले जो घोड़े या हाथी अविनीत होते हैं वे केवल बोझा ढोनेवाले होकर दुःख को प्राप्त होते हैं, अर्थात् अपनी अभीष्ट खुराक न पाकर अधिक दुःख भोगते हैं, यह बात लोक में प्रत्यक्ष देखी जाती है, इसी प्रकार अविनीत साधु इहलोक-परलोक में दुःख के भागी होते हैं ॥५॥

અવિનયના દોષ બતાવે છે —"तहेव" ઇત્યાદિ–રાજાઓની અથવા રાજાઓના પ્રિયજનોની સ્વારીમાં કામમાં–ઉપયોગમાં લેવામાં આવતા ઘોડા અથવા હાથી અવિનીત જે થઇ જાય છે અર્થાત્ નિરંકુશ બની જાય છે તે કેવલ બોજો ઉપાડવાના કામ માટે થઇ જાય છે અને દુઃખને પ્રાપ્ત થાય છે અર્થાત્ પોતાનો ઇચ્છિત ખોરાક તેને મળતો નથી અને અધિક દુઃખ ભોગવે છે આ વાત લોકમાં –જગતમાં પણ પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવે છે એ પ્રમાણે–અવિનીત સાધુ આ લોકમાં અને પરલોકમાં દુઃખને પ્રાપ્ત કરે છે (૫)

॥ मूलम् ॥

११ ४ १ २ ३
तहेव सुविणीअप्पा, उववज्झा हया गया।
१० ८ ९ ६ ७ ५
दीसंति सुहमेहंता इड्ढिपत्ता महाजसा ॥६॥

॥ छाया ॥

तथैव सुविनीतात्मान. औपवाह्या हया गजाः।
दृश्यन्ते सुखमेधमाना ऋद्धिप्राप्ता महायशसः ॥६॥

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि।

यथा औपवाह्याः=राजवाहनयोग्या हयाः गजाः सुविनीतात्मानः=शासनानुसारिप्रवृत्तिमन्तः सन्तः महायशस'=भद्रभावेन ख्यातिमापन्नाः, ऋद्धिप्राप्ताः नानाविधभूषणभूषितशरीराः सुखमेधमानाः=सुखमनुभवन्तो दृश्यन्ते, तथैव= तद्वदेव सुविनीतात्मानः=गुरुमनोऽनुगामिप्रवृत्तिमन्तः साधवोऽपि विनयाराधनेन चतुर्विधसङ्घश्लाघ्यमाना ज्ञानादिरत्नत्रयऋद्धिसमृद्धा. मोक्षसुखमनुभवन्तो दृश्यन्त इत्यर्थः ॥६॥

'तहेव सुविणीअप्पा' इत्यादि। जैसे हाथी अथवा घोडा विनीत अर्थात् शिक्षा के अनुसार चलनेवाले होकर महान् यश पाते है, भद्र कहलाते हैं और नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित होकर अभीष्ट खुराक खाकर सुखी देखे जाते हैं, वैसे ही गुरु महाराज की शिक्षा के अनुकूल चलनेवाले सुविनीत साधु, चतुर्विध सघमें कीर्ति पाते हैं तथा ज्ञानादि रत्न रूप ऋद्धि से समृद्ध होकर मोक्ष के सुखका अनुभव करते हैं ॥६॥

"तहेव सुविणीअप्पा"-ઇત્યાદિ-જેવી રીતે હાથી અથવા ઘોડા વિનીત અર્થાત્ આજ્ઞા પ્રમાણે ચાલના વાળા હોઇને મહાન્ યશ પામે છે, સારા કહેવાય છે અને અનેક પ્રકારના આભૂષણોથી શણગારીને ઇચ્છિત અનુકૂળ ખોરાક ખાઇને સુખી જોવામા આવે છે તેવીજ રીતે ગુરુ મહારાજની આજ્ઞાને અનુકૂળ રહીને ચાલવા વાળા સુવિનીત સાધુ, ચતુર્વિધ સંઘમા કીર્તિ પ્રાપ્ત કરે છે તથા જ્ઞાનાદિરત્નરૂપ ઋદ્ધિથી સમૃદ્ધ બનીને મોક્ષ સુખનો અનુભવ કરે છે (૬)

विनीताऽविनीतपशुदृष्टान्तेन विनयाविनयफलं स्फुटीकृत्याविनीतमनुष्यदृष्टान्तेनाऽविनयफलमाह—'तहेव अविणीअप्पा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

तहेव अविणीअप्पा, लोगंसि नरनारिओ।
दीसंति दुहमेहंता, छाया ते विगलिंदिया ॥७॥

॥ छाया ॥

तथैव अविनीतात्मानः लोके नरनार्यः
दृश्यन्ते दुःखमेधमाना-श्छाताश्ते विकलेन्द्रियाः ॥७॥

॥ टीका ॥

लोके=मनुष्यलोके या नरनार्यः=पुरुषाः स्त्रियश्च, अविनीतात्मानः=चौर्यसाहसव्यभिचाराचरणपरायणाः भवन्ति, ते=ते च ताश्चेत्येकशेषः, दुष्कर्मकारकाः छाताः=कशाघातादिना क्षतशरीराः विकलेन्द्रियाः = हस्तादिच्छेदेन उपहतेन्द्रियाः दुःखमेधमानाः=क्लेशमनुभवन्तो यथा दृश्यन्ते, तथैव=तद्वदेव अविनीतात्मानः साधवोऽपीत्यर्थः ॥७॥

विनीत और अविनीत पशुका दृष्टान्त देकर विनय और अविनय का फल स्पष्ट करके अविनीत मनुष्य के दृष्टान्त से अविनय का फल बताते हैं—'तहेव अविणीअप्पा' इत्यादि।

लोकमें जो अविनयी नर और नारी, चोरी, साहस तथा व्यभिचार आदि कुकर्मों में तत्पर रहते हैं उन सब दुष्कर्म करने वाले का शरीर कोडों से उधेडा जाता है, वे हाथ पैर आदि अङ्ग काट लेने से विकलाङ्ग होजाते हैं और अनेक प्रकार के दुःख भोगते देखे जाते हैं, इसी प्रकार अविनयी साधु भी दुःख के भागी होते हैं ॥७॥

વિનીત અને અવિનીત પશુનું દૃષ્ટાંત આપીને વિનય અને અવિનયનું ફળ સ્પષ્ટ કરીને અવિનીત મનુષ્યના દૃષ્ટાન્તથી અવિનયનું ફળ બતાવે છે — "तहेव अविणीयप्पा" ઇત્યાદિ—લોકમાં-જગતમાં અવિનયી પુરુષ અને સ્ત્રી ચોરી, સાહસ તથા વ્યભિચાર આદિ કુકર્મોમાં તત્પર રહે છે તે દુષ્કર્મ કરવા વાળા મનુષ્યના શરીર પર કોરડાઓનો માર પડે છે તેના હાથ-પગ આદિ કાપી લેવાથી વિકલાંગ થઈ જાય છે અને અનેક પ્રકારના દુઃખને ભોગવતા જોવામાં આવે છે એ પ્રમાણે અવિનયી સાધુ પણ દુઃખના ભાગી થાય છે (૭)

अपिच-अविनीतात्मानो नरनार्यः एवंविधा भवन्तीत्याह—'दंडसत्थ०' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

दंडसत्थपरिज्जुन्ना, असब्भवयणेहि अ।
कलुणा विवन्नच्छंदा, खुप्पिवासपरिगया ॥८॥

॥ छाया ॥

दण्डशस्त्रैः परीजीर्णाः असभ्यवचनैश्च।
करुणाव्यापन्नच्छन्दाः क्षुत्पिपासापरिगताः ॥८॥

॥ टीका ॥

अविनीतात्मानो नरनार्यः दण्डशस्त्रैः=मूले-"दंडसत्थ" इति पदं लुप्ततृतीयान्तम्,=दण्डैः=वेत्रलकुटादिभिः, शस्त्रैः=भल्लादिभिः, परिजीर्णाः दण्डादिप्रहारदुःखेनातिकृशाः, च=पुनः असभ्यवचनैः=मर्मच्छेदिपरुषादिवचनैः, परिजीर्णाः=खिद्यन्तः वाग्बाणव्यथितहृदयत्वेन दीना इत्यर्थः, तथा करुणाः=करुणोत्पादकत्वाद् दयनीयाः, तदीयदुर्दशामालोक्यान्येषां दयोत्पत्तेरित्यर्थः. तथा व्याप-

अविनयी नर नारी किस प्रकार के होते हैं सो फिर बताते है-'दंडसत्थ०' इत्यादि।

अविनयी नर और नारी डंडा, वेंत, लकड़ी तथा भाला आदि शस्त्र के प्रहार से दुर्बल बनादिये जाते हैं। मर्मभेदी कठोर वचनों से उनके दिलपर चोट पहुंचाई जाती है।

અવિનયી પુરુષ અને સ્ત્રી કેવા પ્રકારના હોય છે તે ફરીને બતાવે છે - "દંડસત્થ૦" ઈત્યાદિ—

અવિનયી નર- અને નારી ડંડા, સોટી, લાકડી તથા ભાલા આદિ શસ્ત્રોના પ્રહારથી દુર્બલ બનાવવામાં આવે છે મર્મભેદી કઠોર વચનોથી તેમના

नष्टछन्दाः=व्यापन्नः=नष्टः छन्दः=अभिप्रायो येषां ते तथाभूताः पराधीनतया स्वकीयाभिप्रायेण किमपि कार्यं कर्तुमशक्ता इत्यर्थः, तथा क्षुत्पिपासापरिगताः= बुभुक्षापिपासाव्याकुलाः अन्नपानप्रतिरोधेन असमानपूर्वकाल्पादिलाभेन वा यथेष्टाहाराभावादित्यर्थः, यथा दृश्यन्ते=विलोक्यन्ते लोके उपलभ्यन्ते तथैवाविनीतात्मानः शिष्या अपि दुःखिनो भवन्ति ॥८॥

विनीतमनुष्यदृष्टान्तेन विनयफलमाह—'तहेव सुविणीअप्पा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१० ३ १ २
तहेव सुविणीअप्पा, लोगंसि नरनारिओ।
९ ७ ८ ५ ६ ४
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिपत्ता महाजसा ॥९॥

॥ छाया ॥

तथैव सुविनीतात्मानः लोके नरनार्यः।
दृश्यन्ते सुखमेधमाना ऋद्धिप्राप्ता महायशसः ॥९॥

उनकी ऐसी दुर्दशा होजाती है कि उन्हें देखकर दूसरों को दया आजाती है। पराधीन होने के कारण उनकी स्वतन्त्र इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं।

वे भोजन पान न मिलने से अथवा अनादरपूर्वक थोडासा भोजन पान मिलने से भूख प्यास के दारुण दुःखों को उठाते हैं। ये सब बातें लोकमें प्रत्यक्ष देखी जाती हैं, अविनीत शिष्य भी इसी प्रकार दुःख भोगते हैं ॥८॥

હૃદયને ધક્કો પહોંચાડવામાં આવે છે તેમની એવી દુર્દશા થઇ જાય છે કે - તેને જોઇને બીજાઓને દયા આવી જાય છે પરાધીન હોવાના કારણે તેમની સ્વતન્ત્ર ઇચ્છાઓ નાશ થઇ જાય છે તેને ભોજન પાન નહી મળવાથી અથવા અનાદર પૂર્વક થોડું ભોજન-પાન મળવાથી ભૂખ તરસના દારુણ દુઃખને ઉઠાવે છે આ સર્વ વાત જગતમાં પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવે છે અવિનીત શિષ્ય પણ આ પ્રમાણે દુઃખ ભોગવે છે (૮)

॥ टीका ॥

तथैव=सुविनीतहयगजवत् लोके=मनुष्यलोके नरनार्यः=पुरुषाः स्त्रियश्च, सुविनीतात्मानः=समाराधितमातापितृश्वश्रूश्वशुरादिगुरुजनाः, महायशसः=विततकीर्तियुक्ताः, ऋद्धिम्=ऐश्वर्यं प्राप्ताः, सुखमेधमानाः=सुखं लभमानाः दृश्यन्ते = विलोक्यन्ते। तथैव सुविनीतात्मानः शिष्याः सुखिनो भवन्तीत्यर्थः ॥९॥

देवदृष्टान्तेनाविनयविपाकमाह–'तहेव अविणीअप्पा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

तहेव अविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसंति दुहमेहंता, आभियोगमुवट्ठिया ॥१०॥

॥ छाया ॥

तथैव अविनीतात्मानः देवा यक्षाश्च गुह्यकाः।
दृश्यन्ते दुःखमेधमानाः आभियोग्यमुपस्थिताः ॥१०॥

॥ टीका ॥

तथैव=अविनीतनरनारीवत् अविनीतात्मानः=विनयाचरणरहिताः, देवाः

विनीत मनुष्य के दृष्टान्त से विनय का विपाक (फल) बताते हैं—'तहेव सुविणीअप्पा' इत्यादि। विनीत घोडे और हाथी की तरह लोकमें माता पिता सासू श्वशुर आदि बडों में विनय रखनेवाले पुरुष और स्त्री भी कीर्ति तथा ऐश्वर्य पाकर सुखी देखे जाते हैं वैसे ही विनयवान् शिष्य सुखी होते हैं ॥९॥

देवों के दृष्टान्त से अविनय का फल दिखाते हैं—'तहेव अविणीअप्पा' इत्यादि।

अविनीत मनुष्य की तरह ज्योतिषी वैमानिक तथा यक्ष राक्षस आदि व्यन्तर

વિનીત મનુષ્યના દૃષ્ટાન્તથી વિનયનું ફળ બતાવે છે – "तहेव सुविणीअप्पा" ઇત્યાદિ– સુવિનીત ઘોડા હાથીની પેઠે લોકમા–જગતમા માતા-પિતા તથા સાસુ, સસરા આદિ વડિલો પ્રત્યે વિનયવાન્ પુરુષ અથવા સ્ત્રી કીર્તિ તથા ઐશ્વર્ય પામીને સુખી જોવામા આવે છે તેવીજ રીતે વિનયવાન્ શિષ્ય સુખી થાય છે (૯)

દેવોના દૃષ્ટાન્તથી અવિનયનું ફળ બતાવે છે—"तहेव अविणीअप्पा" ઇત્યાદિ– અવિનીત મનુષ્યના પ્રમાણે જ્યોતિષી, વૈમાનિક તથા યક્ષ-રાક્ષસ આદિ

=ज्योतिष्का वैमानिकाश्च, यक्षाः=व्यन्तराः, गुह्यकाः=भवनवासिनः, पूर्व कर्मयोगेन देवत्वादिकं प्राप्ता अपि आभियोग्यमुपस्थिताः=अन्यदेवाना किङ्करत्व मुपगताः, दुःखमेधमानाः=दुःखमनुभवन्तो दृश्यन्ते शास्त्रे श्रूयन्ते इत्यर्थः। एव मविनीताः शिष्या अपि दुःखमनुभवन्तीति भावः ॥१०॥

विनीतदेवदृष्टान्तेन विनयफलमाह—'तहेव सुविणीअप्पा' इत्यादि।

(मूलम्)

तहेव सुविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिपत्ता महायसा ॥११॥

॥ छाया ॥

तथैव सुविनीतात्मानः देवा यक्षाश्च गुह्यकाः।
दृश्यन्ते सुखमेधमानाः ऋद्धिप्राप्ता महायशसः ॥११॥

॥ टीका ॥

तथैव=सुविनीतनरनारीवत्, सुविनीतात्मानः=विनयाचरणसपन्नाः, देवा यक्षा गुह्यकाश्च महायशसः=विस्तृतकीर्तिमन्तः, ऋद्धिप्राप्ताः=ऐश्वर्यविस्तराः, सुखमेधमानाः=स्वाधीनतालक्षणसुखमनुभवन्तो दृश्यन्ते=विलोक्यन्ते ॥११॥

अथवा भवनवासी देव होकर भी अविनीत होने से दूसरे देवों के दास बनकर दुःख भोगते हैं, ऐसा शास्त्रों में सुना जाता है, इसी प्रकार अविनीत शिष्य भी दुःख भोगते हैं ॥१०॥

'तहेव सुविणीअप्पा' इत्यादि। सुविनीत नरनारी की तरह जो देव (ज्योतिषि-वैमानिक) यक्ष (व्यन्तर) और गुह्यक (भवनवासी) विनयवान् होते हैं वे महान् यशस्वी तथा ऐश्वर्यवान होकर सुख से परिपूर्ण देखे जाते हैं ॥११॥

વ્યન્તર અથવા ભવનવાસી દેવ થઈને પણ અવિનીત હોવાથી બીજા દેવોના દાસ બનીને દુ ખ ભોગવે છે એ પ્રમાણે શાસ્ત્રોદ્વારા સાંભળવામાં આવ્યું છે એજ પ્રમાણે અવિનીત શિષ્ય પણ દુ ખ ભોગવે છે (૧૦)

"તહેવ સુવિણીઅપ્પા" ઇત્યાદિ-સુવિનીત નર નારીની પ્રમાણે જે દેવ (જ્યોતિષી, વૈમાનિક) યક્ષ (વ્યન્તર) અને ગુહ્યક (ભવનવાસી) વિનયવાન હોય છે તે મહાન્ યશસ્વી તથા ઐશ્વર્યવાન્ થઈને સુખથી પરિપૂર્ણ જોવામાં આવે છે (૧૧)

लोकोत्तरविनयाराधनफलमुपदर्शयति–'जे आयरिय०' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३
जे आयरिय-उवज्झायाण, सुस्सूसावयणकरा ।
४ ८ ९ ६ ७ ५
तेसिं सिक्खा पवड्ढति, जलसित्ता इव पायवा ॥१२॥

॥ छाया ॥

ये आचार्योपाध्यायाना शुश्रूषावचनकराः ।
तेषा शिक्षाः प्रवर्धन्ते जलसिक्ता इव पादपाः ॥१२॥

॥ टीका ॥

ये आचार्योपाध्यायाना शुश्रूषावचनकराः=सेवानिदेशतत्पराः शिष्या भवन्ति, तेषा जलसिक्ताः पादपाः=वृक्षा इव, शिक्षाः=ग्रहणासेवनलक्षणाः प्रवर्धन्ते= वृद्धिं गच्छन्ति । गुर्वादिसेवानिदेशतत्पराणा शिष्याणा मूलोत्तरगुणा उत्कर्षमुपयान्तीति भावः ॥१२॥

वक्ष्माणविषयमपि विचार्य विनयः करणीयः, इत्याह—'अप्पणट्ठा' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

२ ३ ४ ६ ७ ८
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, सिप्पा णेउणियाणि य ।
१ ५ ९ १० ११
गिहिणो उवभोगट्ठा, इहलोगस्स कारणा ॥१३॥

'जे आयरिय०' इत्यादि । जैसे जल सींचने से वृक्ष बढते हैं उसी प्रकार जो शिष्य, आचार्य और उपाध्याय की सेवा तथा आज्ञा में तत्पर रहते हैं वे भी ज्ञानवृद्धि को प्राप्त होते हैं अर्थात् उनके ज्ञान आदि गुण खूब बढते है ॥१२॥

'जे आयरिय०' ઇત્યાદિ— જેવી રીતે જલનું સિંચન કરવાથી વૃક્ષ વૃદ્ધિ પામે છે તે પ્રમાણે જે શિષ્ય આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયની સેવા તથા આજ્ઞામાં તત્પર રહે છે, તે પણ વૃદ્ધિ પામે છે અર્થાત્ તેના જ્ઞાન આદિ ગુણો ખૂબ વધે છે (૧૨)

॥ छाया ॥

आत्मार्थं वा परार्थं वा शिल्पानि नैपुण्यानि च ।
गृहिण उपभोगार्थम् इहलोकस्य कारणम् ॥१३॥

॥ टीका ॥

गृहिणो=गृहस्थाः, आत्मार्थे परार्थेवा=आत्मनः परेषां पुत्रादीनां वा कृते, उपभोगार्थम् अन्नपानाद्युपभोगाय शिल्पानि=चित्रनिर्माणादिकशकर्माणि नैपुण्यानि=व्यवहारकौशलानि यत् शिक्षन्ते तत् इहलोकस्य=एतज्जन्मोपभोग्य सुखस्य कारणं=निमित्तमित्यर्थः ॥१३॥

॥ मूलम् ॥

१ ७ ८ ६ १० ११ ९
जेण बंधं वहं घोरं, परियावं च दारुणं ।
५ १० २ ४ ३
सिक्खमाणा नियच्छंति, जुत्ता ते ललिइंदिया ॥१४॥

॥ छाया ॥

येन बन्धं वधं घोरं परितापं च दारुणम् ।
शिक्षमाणाः नियच्छन्ति युक्तास्ते ललितेन्द्रियाः ॥१४॥

आगे कहे जाने वाले विषय को विचार कर विनय करना चाहिए सो कहते हैं—'अप्पणट्ठा' इत्यादि ।

गृहस्थ, अपने और पर–पुत्र पौत्र आदि के लिए चित्र-चित्रण आदि शिल्प कलामें चतुरता प्राप्त करते हैं वह इस लोक सम्बन्धी सुख के लिए है ॥१३॥

આગળ પર કહેવાના વિષયનો વિચાર કરી વિનય કરવો જોઇએ તે કહે છે–

'અપ્પણટ્ઠા' ઇત્યાદિ— ગૃહસ્થ પોતાના અથવા તો પોતાના પુત્ર-પૌત્ર આદિ બીજા માટે ચિત્ર-ચિત્રણ આદિ શિલ્પ કલામાં પ્રવીણતા-કુશળતા પ્રાપ્ત કરે છે તે આ લોકના સુખ માટે છે (૧૩)

॥ टीका ॥

'जेण' इत्यादि।

येन = शिल्पादिहेतुना युक्ताः = नियुक्ताः कलाशिक्षणार्थं शिक्षकाय समर्पिताः, ललितेन्द्रियाः=सुन्दरसकलेन्द्रियाः सुकुमारा राजकुमारा इत्यर्थः, ते शिक्षमाणाः=कलाशिक्षां प्राप्नुवन्तः, घोर=कठोर, बन्धं=शृङ्खलादिबन्धनं, तथा घोर वध=वेत्रदण्डचपेटादिना तीव्रताडनलक्षण, च = पुनः, दारुण=दुस्सहं, परितापं=भर्त्सनजन्यदुःख नियच्छन्ति=प्राप्नुवन्ति ॥१४॥

॥ मूलम् ॥

ते वि त गुरु पूयति, तस्स सिप्पस्स कारणा।
सकारति नमस्संति, तुट्ठा निद्देसवत्तिणो ॥१५॥

॥ छाया ॥

तेऽपि तं गुरुं पूजयन्ति, तस्य शिल्पस्य कारणम्।
सत्कारयन्ति नमस्यन्ति, तुष्टा निदेशवर्तिनः ॥१५॥

॥ टीका ॥

'तेवि' इत्यादि।

तें = सुकुमारशरीरा राजकुमारादयोऽपि तीव्रबन्धनताडनादिकं प्राप्ता

'जेण वध' इत्यादि। शिल्पकला आदि सीखने के लिए शिक्षक को सौंपे हुए सुकुमार भी राजपुत्र आदि, सीखते समय साँकल आदि का बन्धन, वेत, डडे आदि की मार तथा तीव्र भर्त्सना आदि क दु ख सहते है ॥१४॥

'तेवि त' इत्यादि। वे सुकुमार राजकुमार आदि, पूर्वोक्त तीव्र ताडना को प्राप्त होने पर भी प्रसन्नतापूर्वक गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करते हैं अर्थात् शिल्पकला आदि सीखने

'જેણ વધ' ઇત્યાદિ– શિલ્પકલા આદિ શિખવા માટે શિક્ષકને સોંપવામાં આવેલા સુકુમાર રાજપુત્ર આદિ શિખવા સમયે સાંકલ આદિનું બંધન, સોટી લાકડી વગેરેનો માર તથા તીવ્ર તિરસ્કાર આદિ દુઃખને સહન કરે છે (૧૪)

'તેવિ ત' ઇત્યાદિ – તે સુકુમાર–સુકોમલ રાજપુત્ર આદિ આગળ કહેવા પ્રમાણે તીવ્ર તાડ–માર ખાવા છતાંય પણ પ્રસન્નતાપૂર્વક ગુરુની આજ્ઞાને

अपि, तुष्टा =मुदितमनसः, निर्देशवर्तिनः = विनयमदर्शनपूर्वकतदीयादेशकारिण एव भवन्तः तस्य=पूर्वोक्तस्य शिल्पस्य=कलाकर्मणः कारण=निमित्तं तर्जन-बन्धनताडनादिकर्तारं गुरु = शिल्पशिक्षकं पूजयन्ति = विभववसनादिवितरणेन अर्चयन्ति, सत्कारयन्ति = अभ्युत्थानादिना संमानयन्ति, नमस्यन्ति=पादे नमस्कुर्वन्ति, न तु तदप्रियमाचरन्तीत्यर्थः ॥१५॥

॥ मूलम् ॥

किं पुण जे सुयग्गाही, अणंतहियकामए।
आयरिया जं वए भिक्खू, तम्हा तं नाइवत्तए ॥१६॥

॥ छाया ॥

किं पुनर्यः श्रुतग्राही अनन्तहितकामुकः ।
आचार्या यद् वदन्ति भिक्षुस्तस्मात् तन्नातिवर्तते ॥१६॥

॥ टीका ॥

'किं पुण' इत्यादि ।

यदि शिक्षकैस्ताड्यमाना लौकिकशिल्पाभिलाषिणोऽपि अन्यजनसेव्या राजकुमारादयः शिक्षकं सेवन्ते तर्हि किं पुनर्यः साधुरनन्तहितकामुको=मोक्ष

के लिए मार पीट सहते हुए भी गुरु को वस्त्र आदि प्रदान करके सम्मानित करते हैं, उनके आते ही उठकर सत्कार करते हैं तथा उनको नमस्कार करते हैं और उनका अनिष्ट कदापि नहीं करते ॥१५॥

'किं पुण जो' इत्यादि। जब लौकिक शिल्प विद्या आदि के अभिलाषी राजकुमार आदि ताडना सहते हुए भी शिक्षक की सेवा करते हैं तो फिर जो साधु अनन्त हित मोक्ष

શિર પર ચઢાવી લે છે અર્થાત્-શિલ્પ કલા આદિ શિખવા માટે માર-પીટ સહન કરતા છતાંય ગુરુને વસ્ત્ર આદિ-આપીને-તેમનું સન્માન કરે છે તેમના આવતા સાથેજ શિષ્ય ઉભા થઇને સત્કાર કરે છે, તથા તેમને નમસ્કાર કરે છે, અને તેમનું અનિષ્ટ કોઇ વખત પણ કરતા નથી (૧૫)

'કિંપુણ જો' ઇત્યાદિ-જ્યારે લૌકિક શિલ્પ વિદ્યા આદિના અભિલાષી રાજકુમાર આદિ, માર સહન કરતા થકા પણ શિક્ષકની સેવા કરે છે, તો પછી જે

भिकाङ्क्षी श्रुतग्राही=जिनेन्द्रागमगूढतत्त्वज्ञानाभिलाषी, तेन तु गुरवः सदैव संसेव्या इति भावः। तस्माद् हेतोः आचार्याः=गुरवो यद् वदन्ति=आदिशन्ति, भिक्षुः= साधुस्तन्नातिवर्तेत=न तदुल्लङ्घनं कुर्यात् ।

यद्वा–'जे सुभग्गाही अणंतहियकामुए' इत्यस्य पदसमुदायस्य 'ये श्रुतग्राहिणः अनन्तहितकामुकाः' इति छाया, तथा चैतानि-आचार्यविशेषणपदानि। लौकिकफलमात्रसाधनशिक्षादायिनो गुरवो यदि ताडितैरपि नृपकुमारैः सेव्यन्ते तदा किं पुनर्ये श्रुतग्राहिणः=आगमरहस्यं ग्राहयितारः, अनन्तहितकामुकाः= शिष्याय अनन्तहितं=मोक्षं कामयन्ते–इत्येवंशीला आचार्याः, ते तु अवश्यं संसेवनीयाः, शिल्पविद्याजन्यलौकिकफलापेक्षयोत्कृष्टतरमोक्षफलावाप्तिकारयितृत्वादित्यर्थः ॥१६॥

की अभिलाषा करते हैं जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट आगम के मर्म के जिज्ञासु हैं उनका तो कहना ही क्या? अर्थात् उन्हें तो गुरु महाराज की सेवा अवश्य करनी चाहिए। अत आचार्य (गुरु) महाराज जो आदेश देवें उसका उल्लङ्घन शिष्य कदापि न करे।

अथवा–जब राजकुमार आदि केवल इस लोकमें सुख देने वाली शिल्पकला आदि के शिक्षक–गुरुकी सेवा करते हैं तो आगमरहस्य के दाता, शिष्य के अनन्त हित की अभिलाषा करने वाले आचार्य महाराज की तो बात ही क्या है? अर्थात् उनकी सेवा तो शिष्य को अवश्य ही करनी चाहिए, क्यों कि वे इस लोकमें फल देने वाली शिल्प आदि कलाओं के शिक्षक की अपेक्षा अत्यन्त उत्कृष्ट फल स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले हैं ॥१६॥

સાધુ અનન્તહિતકારક મોક્ષની અભિલાષા–કરે છે જિન ભગવાન દ્વારા ઉપદેશ કરાએલા આગમના મર્મના જીજ્ઞાસુ છે, તેમના માટે તો કહેવાનુંજ શું હોય? અર્થાત્-ઉપરના લૌકિક ન્યાયને જોતા તો વિનીત શિષ્યે ગુરૂ મહારાજની સેવા અવશ્ય કરવી જોઇએ એ કારણથી આચાર્ય-ગુરૂ મહારાજ જે કાંઇ આજ્ઞા કરે તેનું ઉલ્લંઘન શિષ્ય કદાપિ પણ કરી શકે નહિ

અથવા— જ્યારે રાજકુમાર આદિ, કેવલ આ લોકમા સુખ આપવા વાળી શિલ્પ કલા આદિના શિક્ષક-ગુરુની સેવા કરે છે તો આગમરહસ્યનું જ્ઞાન આપનાર, શિષ્યના અનન્ત હિત ની અભિલાષા કરવાવાળા આચાર્ય ગુરુ મહારાજની તો વાત જ શુ? અર્થાત્-તેમની સેવા તો શિષ્યે અવશ્ય કરવીજ જોઇએ કારણકે તે આ લોકમા ફળ આપવાવાળી શિલ્પ આદિ કલાઓના શિક્ષકની અપેક્ષા અત્યન્ત ઉત્કૃષ્ટ ફલ સ્વરૂપ મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવવા વાળા છે (૧૬)

अथ विनयप्रकारमाह—'नीय सिज्ज' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

नीयं सिज्जं गइं ठाणं, नीयं च आसणाणि य ।
नीयं च पाए वंदिज्जा, नीयं कुज्जा य अंजलिं ॥१७॥

॥ छाया ॥

नीचां शय्यां गतिं स्थानं नीचानि च आसनानि च ।
नीचं च पादौ वन्देत नीचं कुर्याच्च अञ्जलिम् ॥१७॥

॥ टीका ॥

शिष्यः, शय्याम्=पादौ प्रसार्य यत्र शय्यते सा शय्या, शरीरपरिमाणसंस्तारकरूपा दार्वादिनिर्मिता, तां नीचाम्=आचार्यरत्नाधिकशय्यापेक्षया द्रव्यभावभेदेन निम्नां कुर्यात्, इदं यथायोगं सर्वत्र संयोज्यम् । तथा गतिं=गमनं नीचां, स्थानम्=अवस्थानं नीचम्, आसनानि=फलकादीनि नीचानि, नीचम्=अवनतं शिरो यथा स्यात् तथा पादौ=चरणौ वन्देत=प्रणमेत्, अञ्जलिं=बद्धकरपुटं, नीचं=नम्रकायं यथा स्यात् तथा कुर्यात्, एवं कायविनयो विधेय इति भावः ॥१७॥

'नीयं' इत्यादि। शिष्य को चाहिए कि वह, अपनी शय्या, आचार्य तथा रत्नाधिक (दीक्षामें बड़े) मुनिराज की शय्या की अपेक्षा द्रव्य भावसे नीची रखें, द्रव्य से आचार्यादि की शय्या के प्रदेश से नीचे प्रदेश में रखे, भावसे अल्प मूल्य की शय्या रखे, तथा गति नीची रखे अर्थात् आचार्यादि के पीछे पीछे स्पर्श न करता हुआ चले, स्थान (बैठने का तथा खड़ा रहने का स्थल) नीचा रखे, नम्रतापूर्वक चरणों में वन्दना करे और नम्रकाय होकर दोनों हाथ जोडें ॥१७॥

'नीय' ઇત્યાદિ— શિષ્યે સમજી લેવું જોઇએ કે-પોતાની શય્યા-પથારી અથવા આસન, આચાર્ય મહારાજ તથા રત્નાધિક-દીક્ષામાં મોટા જે મુનિરાજ હોય તેમની-શય્યા-આસનની અપેક્ષા દ્રવ્ય-ભાવથી નીચી રાખવી દ્રવ્યથી આચાર્ય આદિની શય્યા નીચેના ભાગમાં રાખવી ભાવથી અલ્પ મૂલ્યની શય્યા રાખે તથા ગતિ નીચી રાખે અર્થાત્ આચાર્યાદિકના પાછળ પાછળ સ્પર્શ ન કરી ચાલે બેસવા અને ઉભા રહેવાનું સ્થાન પણ નીચે રાખે, નમ્રતા પૂર્વક ચરણોમાં વંદના કરે અને નમ્રકાય થઇને બે હાથ જોડે (૧૭)

कायविनयमुक्त्वा वाग्विनयमाह—'संघट्टइत्ता' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४
संघट्टइत्ता काएण, तहा उवहिणामवि।
८ ७ ६ १२ ९ १० ११
खमेह अवराह मे, वइज्ज न पुणुत्ति अ ॥१८॥

॥ छाया ॥

संघट्य कायेन तथा उपधिनाऽपि।
क्षमस्व अपराधं मे वदेत् न पुनरिति च ॥१८॥

॥ टीका ॥

कायेन=स्वशरीरेण तथा=एवम्, उपधिना=स्वकीयेन शाटकरजोहरणादिनाऽपि वा, संघट्य=आचार्यस्य रत्नाधिकस्य वा कायं शाटकादिकं वा कथञ्चित् संस्पृश्य, 'मे=मम, अपराधम्=अविनयं, क्षमस्व हे भदन्त! अद्यप्रभृति पुनर्नैव करिष्यामि' इति वदेत्=सवन्दनं प्रार्थयेदित्यर्थः ॥१८॥

काया का विनय बताकर अब वचन का विनय बताते हैं—"संघट्टइत्ता" इत्यादि।

यदि प्रमाद से भी आचार्य या रत्नाधिक (दीक्षामें बडे) का शरीर या उपधि अपने शरीर या रजोहरण आदि से संघट्टित (स्पृष्ट) हो जाय तो इस प्रकार कहे "हे भदन्त! मेरा अपराध क्षमा कीजिए, आज पीछे कभी ऐसा न करूंगा" ॥१८॥

કાયાનો વિનય બતાવીને હવે વચનનો વિનય બતાવે છે –'સંઘટ્ટઇત્તા' ઇત્યાદિ–

જો પ્રમાદથી આચાર્ય અથવા રત્નાધિક—દીક્ષામાં મોટા મુનિરાજના શરીર અથવા ઉપધીને પોતાના શરીર અથવા તો રજોહરણ આદિથી સ્પર્શ થઈ જાય તો આ પ્રમાણે કહે કે–હે ભદન્ત! મારો અપરાધ ક્ષમા કરો, હવે પછી આ પ્રમાણે નહિ કરૂં (૧૮)

दुर्बुद्धिशिष्यस्य विनयप्रकारमाह—'दुग्गाओ वा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

३ ४ १ २ ५ ६

दुग्गाओ वा पओएण, चोइओ वहइ रहं।

७ ८ ११ ९ १० १२

एवं दुब्बुद्धि किच्चाणं, वुत्तो वुत्तो पकुव्वइ ॥१९॥

॥ छाया ॥

दुर्गौरिव प्रतोदेन चोदितः वहति रथम्।
एवं दुर्बुद्धिः कृत्यानाम् उक्तः उक्तः प्रकरोति ॥१९॥

॥ टीका ॥

प्रतोदेन=दण्डादिना, चोदितः=प्रेरितः पुनःपुनर्भर्त्सितः, दुर्गौः=गलिवर्दः, इव=यथा, रथं=शकटं, वहति=नयति, एवम्=अनेन प्रकारेण, दुर्बुद्धिः=अविनीतः, शिष्यः, उक्त उक्तः=पुनः पुनः प्रेरितः, सन् कृत्यानाम्=आचार्यादीनां कार्यं प्रकरोति=निष्पादयति ॥१९॥

दृष्टान्तद्वारा दुर्बुद्धि शिष्य का विनय बताते हैं—'दुग्गाओ वा' इत्यादि।

जैसे गली (गलियार) बैल बारबार लकड़ी या बेंत की मार खा खा कर गाड़ी खींचता है, वैसे ही अविनीत शिष्य, बार-बार प्रेरणा करने पर आचार्य आदि का कार्य करता है ॥१९॥

દૃષ્ટાન્ત વડે દુર્બુદ્ધિ શિષ્યનો વિનય બતાવે છે – 'દુગ્ગાઓ વા' ઇત્યાદિ-
જેવી રીતે ગળીઓ બળદ વારંવાર લાકડીનો માર ખાઈને ગાડી ખેંચે છે, તેવી જ રીતે અવિનીત શિષ્ય વારંવાર પ્રેરણા કરવાથી આચાર્ય આદિનું કાર્ય કરે છે (૧૯)

सम्प्रति सुबुद्धिशिष्यस्य विनयप्रकारमाह-'आलवंते' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१ ३ २ ६ ५ ७
आलवंते लवते वा, न निसिज्जाइ पडिस्सुणे ।
९ ८ ४ १० ११
मुत्तूण आसण धीरो, सुस्सूसाए पडिस्सुणे ॥२०॥

॥ छाया ॥

आलपन्ति लपन्ति वा न निषद्यायां प्रतिशृणुयात्
मुक्त्वाऽऽसनं धीरः शुश्रूषया प्रतिशृणुयात् ॥२०॥

॥ टीका ॥

रत्नाधिकाः आलपन्ति=शिष्यं सम्बोध्य सकृदाख्यान्ति, वा=अथवा लपन्ति=असकृदाख्यान्ति, किंचित् कथयितुं समक्षमागच्छन्ति वा चेत् तदा धीरः=स्थिरस्वभावो विनीत इत्यर्थः शिष्यः निषद्यायाम्=आसने, आसने स्थित एवेत्यर्थः न प्रतिशृणुयात्=नाकर्णयेत् किन्तु-आसनं मुक्त्वा=परित्यज्य, शुश्रूषया=रत्नाधिकवाक्यश्रवणेच्छया प्राञ्जलिपूर्वकं विनयभावेन वा प्रतिशृणुयात्= आकर्णयेत् ॥२०॥

अब सुबुद्धि शिष्य के विनय का प्रकार कहते हैं-'आलवते' इत्यादि ।

रत्नाधिक, यदि शिष्य को सम्बोधन करके एक वार या वारम्वार बुलावें अथवा कुछ कहने के लिए सामने आवें तो विनयवान् धीर शिष्य, आसन पर बैठा बैठा न सुने किन्तु आसन त्यागकर आदर के साथ सुने ॥२०॥

हवे सुबुद्धि शिष्यना विनयना प्रकार कहे छे:-'आलवते' इत्यादि-
रत्नाधिक, जे शिष्यने संबोधन करीने एकवार अथवा वारवार बोलावे अथवा कांइ कहेवाने माटे सामे आवे तो ते विनयवान् धीर शिष्य, आसन पर बेठा-बेठा सांभळे नहि, परन्तु आसन उपरथी उभा थइ एटले के आसननो त्याग करी आदर सहित सांभळे (२०)

दुर्बुद्धिशिष्यस्य विनयप्रकारमाह—'दुग्गाओ वा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

३ ४ १ २

दुग्गाओ वा पओएण, चोइओ वहइ रहं।

७ ८ ११ ९ १० १२

एवं दुव्बुद्धि किच्चाण, वुत्तो वुत्तो पकुव्वइ ॥१९॥

॥ छाया ॥

दुर्गौरिव प्रतोदेन चोदितः वहति रथम्।
एवं दुर्बुद्धिः कृत्यानाम् उक्तः उक्तः प्रकरोति ॥१९॥

॥ टीका ॥

प्रतोदेन=दण्डादिना,चोदितः=प्रेरितः पुनःपुनर्भर्त्सितः, दुर्गौः=गलिवर्द्दः, इव=यथा, रथ=शकटं, वहति=नयति, एवम्=अनेन प्रकारेण, दुर्बुद्धिः= अविनीतः, शिष्यः, उक्त उक्तः=पुनः पुनः प्रेरितः, सन् कृत्यानाम्=आचार्यादीनां कार्यं प्रकरोति=निष्पादयति ॥१९॥

दृष्टान्तद्वारा दुर्बुद्धि शिष्य का विनय बताते हैं—'दुग्गाओ वा' इत्यादि।

जैसे गळी (गलियार) बैल वारवार लकडी या बेंत की मार खा खा कर गाड़ी खींचता है, वैसे ही अविनीत शिष्य, वार-वार प्रेरणा करने पर आचार्य आदि का कार्य करता है ॥१९॥

દૃષ્ટાન્ત વડે દુર્બુદ્ધિ શિષ્યનો વિનય બતાવે છે – 'दुग्गाओवा' ઇત્યાદિ-
જેવી રીતે ગળીઓ બળદ વારવાર લાકડીનો માર ખાઈને ગાડી ખેંચે છે, તેવી જ રીતે અવિનીત શિષ્ય વારવાર પ્રેરણા કરવાથી આચાર્ય આદિનું કાર્ય કરે છે (૧૯)

सम्प्रति सुबुद्धिशिष्यस्य विनयप्रकारमाह–'आलवंते' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

१ ३ २ ६ ५ ७
आलवंते लवते वा, न निसिज्जाइ पडिस्सुणे ।
९ ८ ४ १० ११
मुत्तूण आसण धीरो, सुस्सूसाए पडिस्सुणे ॥२०॥

॥ छाया ॥

आलपन्ति लपन्ति वा न निषद्यायां प्रतिश्रृणुयात्
मुक्त्वाऽऽसनं धीरः शुश्रूषया प्रतिश्रृणुयात् ॥२०॥

॥ टीका ॥

रत्नाधिकाः आलपन्ति=शिष्यं संबोध्य सकृदाख्यान्ति, वा=अथवा लपन्ति=असकृदाख्यान्ति, किंचित् कथयितु समक्षमागच्छन्ति वा चेत् तदा धीरः=स्थिरस्वभावो विनीत इत्यर्थः शिष्यः निषद्यायाम्=आसने, आसने स्थित एवेत्यर्थः न प्रतिश्रृणुयात्=नाकर्णयेत् किन्तु–आसनं मुक्त्वा=परित्यज्य शुश्रूषया= रत्नाधिकवाक्यश्रवणेच्छया प्राञ्जलिपूर्वकं विनयभावेन वा प्रतिश्रृणुयात् = आकर्णयेत् ॥२०॥

अब सुबुद्धि शिष्य के विनय का प्रकार कहते है—'आलवंते' इत्यादि ।

रत्नाधिक, यदि शिष्य को संबोधन करके एक वार या वारम्वार बुलावें अथवा कुछ कहने के लिए सामने आवें तो विनयवान् धीर शिष्य, आसन पर बैठा बैठा न सुने किन्तु आसन त्यागकर आदर के साथ सुने ॥२०॥

હવે સુબુદ્ધિ શિષ્યના વિનયના પ્રકાર કહે છે.–'આલવંતે' ઇત્યાદિ–

રત્નાધિક, જે શિષ્યને સંબોધન કરીને એકવાર અથવા વારવાર બોલાવે અથવા કાંઇ કહેવાને માટે સામે આવે તો તે વિનયવાન્ ધીર શિષ્ય, આસન પર બેઠા-બેઠા સાંભળે નહિ, પરન્તુ આસન ઉપરથી ઉભા થઇ એટલે કે આસનનો ત્યાગ કરી આદર સહિત સાંભળે (૨૦)

(मूलम्)

२　३　४　५　१
कालं, छंदोवयारं च, पडिलेहित्ताण हेउहिं ।
६　७　८　९　१०　११
तेण तेण उवाएण, तं तं संपडिवायए ॥२१॥

॥ छाया ॥

कालं छन्दोपचारं च प्रत्युपेक्ष्य हेतुभिः ।
तेन तेनोपायेन तत् तत् सम्प्रतिपादयेत् ॥२१॥

॥ टीका ॥

'काल' इत्यादि ।

शिष्यः हेतुभिः=यथायोग्यैः कारणैः, कालं=शरद्वसन्तादिलक्षणं छन्दोपचारं=छन्दो गुर्वादीनामभिप्रायः, तस्योपचारः=तदनुकूलपरिचर्यां तं च प्रत्युपेक्ष्य =अवबुध्य, तेन तेन उपायेन=दातृपरिणामसमावर्जनादिना, तद् तद् गुर्वादिहितं प्रियं च वस्तु संप्रतिपादयेत् = समानयेत् संपादयेदित्यर्थः, आचार्याभिप्रायानुकूलं वस्तुमानीय साधुसामाचार्या संपादनीयमिति भावः ॥२१॥

॥ मूलम् ॥

२　१　५　३　४
विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणियस्स य ।
८　६　७　९　१　१०　१२
जस्सेयं दुहओ नायं, सिक्खं से अभिगच्छइ ॥२२॥

'काल' इत्यादि। आचार्य आदि का अभिप्राय समझकर ऋतु के अनुसार उपाय करके उन गुरुओं के हितकारी तथा प्रिय, वस्तु ला देवें। अर्थात् आचार्य आदि का आशय समझकर साधुसामाचारीपूर्वक वस्तु लावें ॥२१॥

'काल' इत्यादि— આચાર્ય આદિનો અભિપ્રાય સમજીને ઋતુના અનુસાર યોગ્ય ઉપાય કરીને ગુરુઓને હિતકારક તથા પ્રિય વસ્તુ જે હોય તે લાવી આપે અર્થાત્-આચાર્ય આદિનો આશય સમજીને સાધુસામાચારીપૂર્વક વસ્તુ લાવે (૨૧)

॥ छाया ॥

विपत्तिरविनीतस्य संपत्तिर्विनीतस्य च ।
येनैतदुभयतो ज्ञात शिक्षा सः अभिगच्छति ॥२२॥

॥ टीका ॥

'विवत्ती' इत्यादि ।

अविनीतस्य=विनयविकलस्य विपत्तिः=ज्ञानादिगुणविलयः, च=पुन', विनीतस्य=विनयसकलस्य, संपत्तिः=ज्ञानादिगुणसमृद्धिर्भवति, इत्येतद् द्वयम्-उभयतः=विनयाविनयाभ्यामुद्भवतीति येन साधुना ज्ञातं भवेत् स शिक्षा=ग्रहणाऽऽसेवनलक्षणाम्, अभिगच्छति=प्राप्नोति ॥२२॥

अविनीतस्य फलमाह—'जे आवि' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

जे आवि चंडे मइइड्ढिगारवे, पिसुणे नरे साहस हीणपेसणे ।
अदिट्ठधम्मे विणए अकोविए, असंविभागी न हु तस्स मोक्खो ॥२३॥

॥ छाया ॥

यश्चापि चण्डो मतिऋद्धिगौरवः, पिशुनो नर' साहसिको हीनप्रेषणः ।
अदृष्टधर्मा विनयेऽकोविदः, असंविभागी न हु तस्य मोक्षः ॥२३॥

'विवत्ती' इत्यादि । जो विनयरहित होता है वह ज्ञान आदि गुणों को खोता है, जो विनयवान् होता है वह ज्ञानादि वैभववान् होता है । जो इन दोनों विषयों को भली भाँति जानलेता है वही ग्रहणी आसेवनी शिक्षा को प्राप्त करता है ॥२२॥

'विवत्ती' ઇત્યાદિ- જે વિનય રહિત હોય છે, તે જ્ઞાન આદિ ગુણોને ગુમાવે છે, અને જે વિનયવાન હોય છે તે જ્ઞાનાદિ વૈભવવાન હોય છે જે આ બન્ને વિષયોને યોગ્ય પ્રકારે જાણી લે છે તે ગ્રહણી આસેવની શિક્ષાને પ્રાપ્ત કરે છે (૨૨)

॥ टीका ॥

'जे आवि' इत्यादि।

यश्चापि नरः चण्डः=क्रोधनिष्पातहृदयः, मतिऋद्धिगौरवः=बुद्धिसमृद्ध्य भिमानी, पिशुनः=परगुणासहिष्णुतया प्रीतिं शून्यां करोतीति निरुक्त्या पिशुनः=प्रीतिभेदकः परनिन्दक इत्यर्थः, साहसिकः=अविमृश्यकारी, हीनप्रेषणः= विनष्टनिदेशः=गुर्वादिनिदेशबहिर्वर्ती, अदृष्टधर्मा = अज्ञातप्रवचनधर्मा, विनयेऽको विदः = विनयगुणानभिज्ञः, असंविभागी = आनीत मशस्तगत्वादिकमसंविभज्य= अन्यस्मै साधवे अदत्त्वा स्वयं तदुपभोगशीलः, तस्य क्रोधादिदुर्गुणयुक्तस्य ध्रु=निश्च- येन मोक्षो नास्ति=न भवति। 'चंडे' इति पदेन "खरतरकरनिकरकृशानुकीलाति शुष्ककेदारे शाल्यादिबीजवत् क्रोधकृशानुसंतप्तहृदये विनयादिगुणबीजं न प्र रोहति," इति सूचितम्

अविनीत का फल कहते हैं—'जे यावि' इत्यादि।

जो शिष्य क्रोधी, बुद्धिका अहङ्कार तथा पराई निन्दा करने वाला, विना सोचे विचारे कार्य करने वाला, गुरु आदि की आज्ञासे बाहर, जिनप्रवचन से अनजान, विनय से अनभिज्ञ तथा असंविभागी, अर्थात् लाया हुआ आहार आदि अन्य मुनियों को यथासंवि भाग करके नहीं देने वाला है उस दुर्गुणी शिष्य को निश्चय ही मोक्ष नहीं प्राप्त होता।

'चंडे' पदसे यह सूचित किया है कि जैसे मार्तण्ड (सूर्य) की प्रचण्ड किरणों से सर्वथा सूखी हुई क्यारी में बीज अंकुरित नहीं हो सकता, उसी प्रकार क्रोधाग्नि से संतप्त हृदय में विनय आदि गुण उत्पन्न नहीं हो सकते।

અવિનીતનું ફળ કહે છે –'જેયાવિ' ઇત્યાદિ–જે શિષ્ય ક્રોધી, બુદ્ધિનો અહં કાર તથા પારકી નિન્દા કરવાવાળા, પૂરો વિચાર કર્યા વિના કામ કરવા વાળા, ગુરુ આદિની આજ્ઞાથી બહાર, જિન પ્રવચનના અજાણ, વિનય ધર્મના અજાણ તથા અસંવિભાગી, અર્થાત્–આહાર આદિ જે લાવ્યા હોય તેમાંથી અન્ય મુનિઓને યથાસંવિભાગ કરીને નહીં આપવા વાળા એવા દુર્ગુણી શિષ્યને નિશ્ચયથી (નક્કી) મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી

'ચંડ' પદથી એ સૂચના કરી છે કે —જેવી રીતે સૂર્યના પ્રચંડ કિરણોથી એકદમ સૂકાઇ ગયેલી ક્યારીમાં પડેલું બીજ અંકુરિત થઇ શકતું નથી, તે પ્રમાણે ક્રોધાગ્નિથી સંતપ્ત હૃદયમાં વિનય આદિ ગુણ ઉત્પન્ન થઇ શકતા નથી

'महर्द्धिगारवे' इति पदेन मानान्धाना मुक्तिमार्गगमनानधिकारित्वं ध्वनितम्। 'पिसुणे' इति पदेन द्वितीयमहाव्रतभङ्गः सूचितः। 'साहस' इति पदेन विवेकवैधुर्यं, 'हीणपेसणे'-इत्यनेनाश्रुतप्रवचनत्वं, 'विणए अकोविए' इत्यनेन अधीतेऽपि सकलशास्त्रे विनयमन्तरेण आत्मकल्याणानवाप्तिमत्त्वम्, 'असविभागी, इत्यनेन च रसलोलुपत्वमावेदितम् ॥२३॥

पूर्वोक्तार्थमुपसंहरन् विनयफल कथयति—'निद्देसवित्ती' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

४ २ १ ३ ५ ६ ७

निद्देसवित्ती पुण जे गुरूण, सुअत्थधम्मा विणयंमि कोविआ,

१२ ८ ११ ९ १० १४ १३ १७ १६ १८ १९

तरित्तु ते ओघमिण दुरुत्तर, खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गय-त्तिबेमि ॥२४॥

॥ छाया ॥

निर्देशवर्तिनः पुनर्ये गुरूणा श्रुतार्थधर्मा विनये कोविदाः।
तीर्त्वा ते ओघमिदं दुरुत्तर क्षपयित्वा कर्म गतिमुत्तमा गताः, इति ब्रवीमि ॥२४॥

"महड्ढिगारवे"—पदसे यह प्रगट किया है कि अहकारी नर, मोक्षमार्ग में गमन करने का अधिकारी नहीं होता। "पिसुणे"—पदसे सत्य महाव्रत का भग "साहस" पदसे विवेक की विकलता, "हीणपेसणे"—पदसे उच्छृंखलता "अदिट्ठधम्मे" पदसे प्रवचन का मनन न करना, "विणए अकोविए" पदसे सकल शास्त्र पढ लेने पर भी विनय के बिना आत्मकल्याण की अप्राप्ति, और "असविभागी" पदसे रसमें लोलुपता प्रगट की है ॥२३॥

'महड्ढिगारवे' पदथी એ પ્રગટ કર્યુ છે કે —અહકારી માણસ મોક્ષ માર્ગમા ગમન કરવાના અધિકારી થતા નથી 'पिसुणे'-પદથી સત્ય મહાવ્રતનો ભગ, 'साहस' પદથી વિવેકની વિકલતા 'हीणपेसणे' આ પદથી ઉચ્છૃખલતા, 'अदिट्ठधम्मे' પદથી પ્રવચનનુ મનન નહી કરવુ તે, 'विणए अकोविए' પદથી સકલ શાસ્ત્રનો અભ્યાસ કરી વાળે તો પણ વિનય વિના આત્મકલ્યાણની અપ્રાપ્તિ અને 'असविभागी' પદથી રસમા લોલુપતા પ્રગટ કરી છે (૨૩)

अथ तृतीयोद्देशः ।

विनयाद्याचरणेन मुनिः पूज्यो भवतीति प्रदर्शयन् तृतीयोद्देशमाह—'आयरिय' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

४ २ ३ १ ५ ६
आयरिय अग्गिमिवाहिअग्गी, सुस्सूसमाणो पडिजागरिज्जा,
७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
आलोइअं इंगिअमेव नच्चा, जो छंदमाराहयई स पुज्जो ॥१॥

॥ छाया ॥

आचार्यम् अग्निमिवाहिताग्निः शुश्रूषमाणः प्रतिजागृयात् ।
आलोकितम् इङ्गितमेव ज्ञात्वा, यश्छन्दमाराधयति स पूज्यः ॥१॥

॥ टीका ॥

अहिताग्निः=अग्निहोत्री द्विजन्मा॒ऽग्निमिव=अग्निं सेवमानो यथा सावधानस्तथा यः शिष्यः आचार्य=गणिनं रत्नाधिकं वा शुश्रूषमाणः=सम्यक् सेवमानः

अथ तृतीयोद्देश.

'आयरिय' इत्यादि। जैसे अग्निहोत्री ब्राह्मण, अग्नि की आराधना करने में सावधान रहता है वैसे ही जो शिष्य, आचार्य की सेवा परिचर्या में मन को सावधान रखता है, तथा आचार्य आदि की आलोकित (दृष्टि) या इंगित (इशारा) को समझकर उस अभिप्राय की आराधना करने में सदा तैयार रहता है, अर्थात् –जिस जिस प्रकार आचार्य आदि का

અથ તૃતીયોદ્દેશ

આયરિય–ઇત્યાદિ–જેવી રીતે અગ્નિહોત્રી બ્રાહ્મણ, અગ્નિની આરાધના કરવામાં સાવધાન રહે છે, તેવીજ રીતે જે શિષ્ય આચાર્યની સેવા–પરિચર્યા કરવામાં મનને સાવધાન રાખે છે, તથા આચાર્ય આદિ દષ્ટિ તથા ઇશારો કરે તેને સમજીને તેમના અભિપ્રાય પ્રમાણે વ્યવહાર કરવામાં હમેશા તૈયાર રહે છે અર્થાત્ જેવી રીતે આચાર્ય આદિનો અભિપ્રાય હોય તે પ્રમાણે તેમની સેવાર્થે

प्रतिज्ञागृयात्=गुर्वादिपरिचर्यां कर्तुं सावधानमना भवेत् तथ—आचार्यादीनाम् आलोकितं=वीक्षितम् इङ्गितम् = कुशलधिषणावेद्यप्रवृत्तिनिवृत्तिज्ञापकमीषद्भ्रूशिरश्चालनम् । उपलक्षणं चैतद् आकारादीनामपि, तथा चोक्तम्—

"आकारैरिङ्गितैर्गत्या, चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च, ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनः" ॥१॥ इति ।

विज्ञाय छन्दम्=तदभिप्रायम् आराधयति, यथा यथा तेषामभिप्रायस्तथा तथा तत्सेवनपरो भवति स शिष्यः पूज्यो=लोकेऽर्चनीयो भवति । शीतागमे प्रावरण

अभिप्राय हो उस उस प्रकार से उनकी सेवामें तत्पर रहता है वह शिष्य लोकमें पूजनीय होता है, इस गाथामें 'आलोइय' और 'इंगिय' ये दोनों पद आकार आदिका भी उपलक्षण है। कहा भी है—

आकार (अंगविकृतिरूप आकृतिविशेष मुखरागादि), इंगित (सूक्ष्म बुद्धिके गम्य प्रवृत्ति निवृत्ति का बोधक जो थोडा थोडा भौंह आदि का चलाना) गति–(गमन), चेष्टा (हस्तादिव्यापार) भाषण (कथन) नेत्रविकार (दृष्टिपातका ढंग) और वक्त्रविकार (मुहका इशारा) इन के द्वारा हृदय का भाव जाना जाता है ॥१॥

अर्थात् उक्त प्रकार से उनका अभिप्राय जानकर गुरु की सेवा करने वाला शिष्य, पूज्य-लोकमान्य होता है । तात्पर्य यह है कि–शीत होने पर आचार्य, यदि प्रावरण–चद्दर

તત્પર રહે છે તે શિષ્ય જગતમાં પૂજનીય થાય છે આ ગાથામાં 'आलोइय' અને इंगिय આ બન્ને પદ આવવાથી તે આકાર આદિનું પણ ઉપલક્ષણ થાય છે કહ્યું છે કે –

આકાર– (અંગ વિકૃતિ રુપ આકૃતિવિશેષ મુખરાગાદિ) ઇંગિત (સૂક્ષ્મ બુદ્ધિ ગમ્ય પ્રવૃત્તિ નિવૃત્તિનું બોધક જે જે થોડી–થોડી મુખની ઇશારત , ગતિ, (ગમન) ચેષ્ટા, (હસ્તાદિ વ્યાપાર) ભાષણ, (કથન) નેત્રવિકાર, (દૃષ્ટિપાતનો ઢંગ) અને વક્ત્રવિકાર (મુખનો ઇશારો) આ તમામ સંજ્ઞા વડે હૃદયનો ભાવ જાણી શકાય છે (૧)

અર્થાત્–ઉપર કહેવા પ્રમાણે ગુરુના અભિપ્રાયને જાણીને ગુરુની સેવા કરવાવાળા શિષ્ય લોકમાન્ય થાય છે તાત્પર્ય એ છે કે શીત ઠંડી હોય તો આચાર્ય જો પાવરણ પર દૃષ્ટિ કરે તો તરત જ તે લાવીને તેમને અર્પણ કરે

मति न्ष्टिनिपाते सति शीघ्रमानीय तस्य समर्पणेन, श्लेष्मादिव्याधिवशतां विशोद शुण्ठ्याद्यौषधानयनादिना च गुरुसेवासावधान एव लोके पूजनीयो भवतीति भावः ॥१॥

॥ मूलम् ॥

६ ८ ७ १ ३ २
आयारमट्ठा विणय पउजे, सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं ।
४ ५ १० ९ ११ १२ १३
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरु च नासाययई स पुज्जो ॥२॥

॥ छाया ॥

आचारार्थं विनयं प्रयुङ्क्ते शुश्रूषमाणः परिगृह्य वाक्यम् ।
यथोपदिष्टमभिकाङ्क्षन् गुरुं च नाशातयति स पूज्यः ॥२॥

॥ टीका ॥

'आयारमट्ठा' इत्यादि ।

य साधुः शुश्रूषमाणः='किमाचार्यो वक्ष्यती'ति श्रोतुमिच्छन्, यद्वा आचार्यस्य गुर्वादेर्वा परिचर्यां कुर्वन्, तथा वाक्यम्=आचार्यादिभाषितं परिगृह्य=स्वीकृत्य,

---

पर दृष्टि डालें तो शीघ्र ही लाकर उन्हें अर्पण करे। चेष्टासे यदि कफ आदि का प्रकोप ज्ञात हो तो सोंठ आदि औषध लाकर देवे। इस प्रकार गुरु की सेवाम सावधान शिष्य ही समाज में सम्मानीय होता है ॥१॥

'आयारमट्ठा' इत्यादि ।

जो शिष्य सदा ऐसा सुनने के वास्ते सावधान रहता है कि-'गुरु महाराज क्या आदेश देंगे, अथवा गुरु महाराज की परिचर्या करता हुआ और आचार्य का कथन सुनक

કફ આદિના પ્રકોપ થવા તે પ્રમાણે જગ ઇશારત કરે ત્યારે સુંઠ આદિ ઔષધ લાવીને આપે, આ પ્રમાણે ગુરુની સેવામાં જે શિષ્ય સાવધાન હોય છે તેજ સંસારમાં સન્માન પામવા યોગ્ય થાય છે (૧)

'આયારમટ્ઠા' ઇત્યાદિ- જે શિષ્ય ગુરુ મહારાજ શું આજ્ઞા-હુકમ કરશે એ સાંભળવામાં સદાય સાવધાન રહે છે, અથવા ગુરુ મહારાજની પરિચર્યા કરતા થકા અને આચાર્યના વચન સાંભળતા જ તેનો સ્વીકાર કરીને નિર્મળ હૃદયથી

स्वच्छहृदयः सन् भक्त्या कर्तुमिच्छन् आचारार्थं=ज्ञानाचारादिमाप्तये विनय=पूर्व-प्रतिपादितलक्षण मयुङ्क्ते=करोति, च=पुनः, गुरुम्=आचार्यादिक नाशातयति=नावमानयति, गुर्वाद्याशातना न करोतीत्यर्थः, स साधु पूज्यो=लोकेऽर्चनीयो भवति ॥२॥

॥ मूलम् ॥

६ ७ ८ २ ३ ४ १
रायणिएसु विणय पउंजे, डहरा वि य जे परियायजेट्ठा।
९ १० ११ १२ १३ १४ १५
नीयत्तणे वट्टइ सच्चवाई, ओवायवं वक्करे स पुज्जो ॥३॥

॥ छाया ॥

रत्नाधिकेषु विनय मयुङ्क्ते, डहरा अपि ये पर्यायज्येष्ठाः।
नीचत्वे वर्तते सत्यवादी अवपातवान वाक्यकरः स पूज्यः ॥३॥

॥ टीका ॥

'रायणिएसु' इत्यादि।

ये डहरा अपि=बाला अपि स्वापेक्षया न्यूनवयस्का अपीत्यर्थः, किन्तु पर्यायजेष्ठाः=प्रव्रज्याज्येष्ठाः स्वकीयदीक्षापेक्षया प्राग्गृहीतदीक्षा इत्यर्थः, तेषु

हा उसे स्वीकार करता हुआ स्वच्छ हृदय से भक्तिपूर्वक उसका पालन करता है, इस प्रकार आचार की प्राप्ति के लिए-उत्कृष्ट चारित्रवान् बनने के लिये विनय करता है, उनकी कभी आशातना नहीं करता है वह लोकमें पूजनीय होता है ॥२॥

'रायणिएसु' इत्यादि। जो अल्पवयस्क (बालक) होने पर भी दीक्षामें बडे होते हैं, उन्हे ज्ञानादिरत्नत्रय की प्राप्ति का अधिक समय हुआ है, अत व (अल्पवयस्क) दीक्षामें

भक्ति पूर्वक तेनु पालन करे छे आ प्रमाणे आचारनी प्राप्ति माटे उत्कृष्ट चारित्र वान् थवा माटे विनय करे छे अने कोई प्रकारे आशातना करे नहि ते (शिष्य) जगतमा पूजनीय थाय छे (२)

'रायणिएसु' इत्यादि—जे बालक छताय दीक्षामा मोटा होय छे तेमने ज्ञानादि रत्नत्रयनी प्राप्तिनो समय विशेष थयो छे, ते कारणथी ते बालक दीक्षामा मोटा होवाथी तेमना करता मोटी उमर वाळा दीक्षितनी अपेक्षाए त थोए छे

रत्नाधिकेषु—ज्ञानादिभावरत्नत्रयमाप्तिकालाधिक्येन स्वापेक्षयाऽधिकेषु विनयम्= अभ्युत्थानाभिवादनादिलक्षणं प्रयुङ्क्ते = करोति विनयमेव प्रदर्शयति, तथा नीचत्वे वर्तते = पर्यायाधिकान् प्रति आसनादिना निम्नभावमाश्रयते, सत्यवादी = प्रियहितमितभाषणशील: तथा—अवपातवान्=वन्दनशील:, तथा वाक्यकर:=आज्ञाप्रमाणकः भवेत् स साधुः पूज्यो भवति।

'नीयत्तणे वट्टइ' इत्यनेन निरभिमानत्वं, 'सच्चवाई' इत्यनेन माया परिहारित्वम्, 'ओवायवं' इत्यनेन गुरौ सदा नम्रभावः, 'वक्ककरे' इत्यनेन स्वच्छन्दाचारपरिहारशीलत्वं सूचितम् ॥३॥

॥ मूलम् ॥

२ ७ ८ ४ ३ ६ ५ १
अन्नाय उञ्छं चरई विसुद्धं, जवणट्ठया समुयाणं च निच्चं।
९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६
अलद्धुयं नो परिदेवएज्जा, लद्धुं न विकत्थइ स पुज्जो ॥४॥

बड़े होने से बडी उम्र वालों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, जो उन रत्नाधिकों के प्रति, उनका आग मन होने पर खडा हो जाना आदि विनयभाव प्रदर्शित करता है, उनके आगे से अपना आसन नीचा रखता है, हितमित और प्रिय भाषा बोलता है, वन्दना करता है और आज्ञा पालन करता है वह शिष्य पूजनीय होता है। 'नीअत्तणे वट्टइ' इस पदसे निरभि मानता, 'सच्चवाई' पदसे मायाचाररहितता, 'ओवायवं' पदसे गुरु के प्रति नम्रता और 'वक्क- करे' पदसे स्वच्छन्द आचरण का निषेध सूचित किया है ॥३॥

એટલે રત્નાધિક-દીક્ષામાં મોટા હોય તે મુનિનું આવવું થતાં વિનય ભાવ બતાવવા માટે ઉભા થઇ જવું જોઇએ, અને તેમના આગળથી પોતાનું આસન નીચે રાખે છે થોડી અને હિતકારી ભાષા બોલે છે, વંદન કરે છે, અને આજ્ઞા પાલન કરે છે તે શિષ્ય પૂજનીય હોય છે 'नीअत्तणे वट्टइ' આ પદથી નિરભિમાનપણું, "सच्चवाई" પદથી માયાચાર-રહિતપણું 'ओवायवं' પદથી ગુરુપ્રતિ નમ્રતા અને 'वक्ककरे' પદથી સ્વચ્છન્દ આચરણનો નિષેધ સૂચિત કર્યો છે (૩)

॥ छाया ॥

अज्ञात उञ्छं चरति विशुद्ध, यापनार्थं समुदानं च नित्यम्।
अलब्ध्वा न परिदेवयेत, लब्ध्वा वा न विकत्थते स पूज्यः ॥४॥

॥ टीका ॥

'अन्नाय' इत्यादि।

(यः मुनिः) नित्य=सर्वदा अज्ञातः=अपरिचितः, गृहस्थैः सह परिचयमकुर्वन् यापनार्थ=संयमयात्रानिर्वाहार्थं, विशुद्धम्=आधाकर्मादिसकलदोषवर्जितं, च=तथा समुदानम्-उच्चावचकुलेभ्यो भिक्षया लब्धम्, उञ्छ-स्वभोजनपात्रे गृहस्थैः समुद्धृतम् अशनादिकं चरति=गृह्णन् विहरति। एतद्विषये मुनीनामभिग्रहः सूचितः। अलब्ध्वा=अप्राप्य अशनादिकं न परिदेवयेत्=न विषीदेत्-'हतभाग्योऽहं यतो न मया किञ्चिल्लब्ध'मिति, यद्वा 'कीदृशोऽयं दरिद्रो देशो यत्र भिक्षाऽपि न लभ्यते' इति खेदं न कुर्यादित्यर्थः। वा=अथवा, लब्ध्वा=प्राप्य न विकत्थते=न श्लाघां करोति 'अहो! अहमस्मि लब्धिमान, दाताऽप्यसौ परमोदार', धन्योऽयं देशो यत्रेदृश

'अन्नाय' इत्यादि। जो मुनि सदा गृहस्थों से परिचय न रखता हुआ संयम मार्ग में विचरता है, तथा संयमयात्रा के निर्वाह के लिए आधाकर्म आदि समस्त दोषों से रहित और अनेक प्रकार के कुलों से प्राप्त, 'हंडी आदि से गृहस्थ द्वारा अपने भाजन-पात्र में निकाला हुआ ओदनादि लूंगा, अन्यथा नहीं' इत्यादि प्रकार के अभिग्रह से मिले हुए अशनादि को न पाकर विषाद भी न करे अर्थात् 'हाय मैं कैसा अभागा हूँ जो मुझे भिक्षा नहीं मिली, यह देश कैसा दरिद्र है, जहां भिक्षा तक नहीं मिलती' इत्यादिरूप से खेद न करे अथवा (उक्त प्रकार की भिक्षा को) पाकर प्रशंसा भी न करे, अर्थात् 'अहा ! मैं

'अन्नाय' ઇત્યાદિ—જે મુનિ હમેશા ગૃહસ્થાશ્રમીઓનો પરિચય રાખતા નથી, અને સંયમ માર્ગમાં વિચરે છે, તથા સંયમ યાત્રાના પાલન માટે આધાકર્મ આદિ તમામ પ્રકારના દોષોથી રહિત અને અનેક પ્રકારના કુળમાંથી પ્રાપ્ત 'હાંડી આદિથી ગૃહસ્થ દ્વારા પોતાના ભોજન પાત્રમાં કાઢેલા ઓદન આદિ હું લઈશ, બીજુ લઈશ (વહોરીશ) નહિ'—ઇત્યાદિ પ્રકારના અભિગ્રહ પ્રમાણે ભોજન નહિ પામવાથી વિષાદ-શોક પણ કરે નહી અર્થાત્—હાય ! હું કેવો અભાગ્યવાન્ છું કે મને ભિક્ષા મળી નહિ આ દેશ કેવો દરિદ્ર છે ? કે જ્યાં ભિક્ષા પણ મળતી નથી, ઇત્યાદિ પ્રકારે ખેદ કરે નહિ, અથવા તો પોતાની ઉપર કહેલી ઇચ્છા પ્રમાણેની ભિક્ષાને પામીને પ્રશંસા-વખાણ પણ કરે નહિ, અર્થાત્ 'અહા' હું

भिक्षामीर्षयम्' इत्यादिनाऽऽत्मप्रशंसा दात्रादिप्रशंसां वा न प्रकटयति स पूज्यो भवतीति भावार्थः ॥४॥

॥ मूलम् ॥

संथारसिज्जासणभत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभे वि संते।
जो एवमप्पाणमभितोसइज्जा, संतोसपाहन्नरए स पुज्जो ॥५॥

॥ छाया ॥

संस्तारकशय्यासनभक्तपाने अल्पेच्छया अतिलाभेऽपि सति।
य एवमात्मानमभितोषयेत्, सन्तोषप्राधान्यरतः स पूज्यः ॥५॥

॥ टीका ॥

'संथार' इत्यादि।

यः साधुः अतिलाभेऽपि=गृहस्थानां सकाशात् प्रचुरमाप्तावपि संस्तारकशय्यासनभक्तपानेऽल्पेच्छया=अमूर्च्छया, आवश्यकाधिकपरिहारेण वा आत्मानमभितोषयेत्=सतोषपीयूषेण प्रीणयेत्, एवम्=अनया रीत्या सन्तोषप्राधान्यरतः=सन्तोषे प्राधान्येन रतः सतोषातिशयवान् भवेत् स पूज्यो भवतीत्यर्थः ॥५॥

लब्धिवाला हूँ और दाता भी बडा उदार है, धन्य है यह देश जहां इस प्रकार भिक्षा सुलभ है' इत्यादिरूप से अपनी तथा दाता आदि की श्लाघा न करे वह पूजनीय है ॥४॥

'संथार' इत्यादि। इस प्रकार जो साधु, गृहस्थ द्वारा संस्तारक, शय्या, आसन और भक्त—पान आदि अधिक मिले तो भी इच्छा को अल्प बनाये रखता है, ममत्व न रख कर अनावश्यक वस्तुओं का त्याग करता हुआ संतोषरूपी सुधा (अमृत) से संतुष्ट बना रहता है वह साधु संसार में पूजनीय होता है ॥५॥

લબ્ધિવાળો છુ અને દાન આપનાર દાતા પણ મહાન ઉદાર છે ધન્ય છે આ દેશ કે જ્યાં આવી ભિક્ષા સહેલાઇથી મળી શકે છે' આ પ્રમાણે પોતાની તથા દાતા-દાન આપનારની પ્રશંસા બધાપ કરે નહિ તે પૂજનીય છે (૪)

'સંથાર' ઇત્યાદિ— આ પ્રમાણે જે સાધુ ગૃહસ્થ દ્વારા સંસ્તારક, શય્યા આસન અને ભોજન પાન વિશેષ મળે તો પણ પોતાની ઇચ્છાનો નિરોધ કરી અલ્પ ઇચ્છા રાખે છે અનાવશ્યક (જરૂરી વિનાની) વસ્તુઓ ઉપરનો મમત્વ ત્યાગ કરીને સંતોષરૂપી અમૃતથી સંતુષ્ટ બની રહે છે તે સાધુ સંસારમાં પૂજનીય હોય છે (૫)

इन्द्रियवशीकारेण पूज्यत्वमाह—'सक्का' इत्यादि ।

(मूलम्)

सक्का सहेउ आसाइ कटया, अओमया उच्छहया नरेण ।
अणासए जो उ सहिज्ज कंटए, वइमए कन्नसरे स पुज्जो ॥६॥

॥ छाया ॥

शक्याः सोढुमाशया कण्टकाः अयोमयाः उत्सहमानेन नरेण ।
अनाशया यस्तु सहेत कण्टकान् वाङ्मयान् कर्णशरान् स पूज्यः ॥६॥

॥ टीका ॥

उत्सहमानेन=अर्थोद्यमं कुर्वता नरेण=मनुष्येण, आशया='इदं मे भविष्यती' त्याद्याकारिकया तृष्णया, अयोमयाः=लौहमयाः, कण्टकाः= तीक्ष्णाग्राः. सोढुं शक्याः=सह्या भवन्ति, तीक्ष्णाग्रलौहमयास्तरणशयनव्यथामर्थलिप्सवः केचित् सोढु शक्नुवन्तीत्यर्थः, किन्तु यः पुन कर्णशरान्=कर्णप्रवेशनो बाणानिव वाङ्मयान्=वचनमयान् कण्टकान् हृदयवेदनाजनकत्वात् अनाशया=विषयस्पृहाराहित्येन सहेत=क्षमेत जलदनिर्यातजलबिन्दुजालनिपाताघातेन पर्वत इव निशितशरविसरवर्षणाघातेन धृतकवचसमरशूर इव तादृग्वचनबाणाघातेन न किंचिद्

इन्द्रियों को वशमें करने से पूज्यता होता है वह प्रदर्शित करते हैं—सक्का इत्यादि ।

अर्थ उपार्जन करने का उद्योग करने वाला पुरुष आशा के वशमें लोहे के तीक्ष्ण काटों को खुशी के साथ सहन कर सकता है, जैसे जलका बून्दों की वर्षा से पर्वत में जरा भी विकार नहीं होता और कवचधारी योद्धा तीखे तावे तीरों का ताडना मे चिन्ता का

ઇન્દ્રિયોને વશ કરવાથી પૂજ્યતા મળે છે તે બતાવે છે –'સક્કા' ઇત્યાદિ

અર્થ -ધનાદિક મેળવવાનો ઉદ્યોગ કરવાવાળા માણસ, આશાને વશ થઇને લોઢાના તીખા કાંટાને ખુશીથી સહન કરી શકે છે, જેવી રીતે જલના ટીપાનો વરસાદ થવાથી પર્વતમાં જરાય વિકાર-અચલ સ્થિતિમાં ફેરફાર થતો નથી, અને કવચ ધારણ કરનારા યોદ્ધાઓ પોતાના ઉપર તીક્ષ્ણ બાણોનો માર પડે તો પણ ચિન્તા જરાય ગ્રહણ કરતા નથી તે પ્રમાણે જે સાધુ પોતાના કાનને બાણ જેવા

विकारमाद गेत, किन्तु सहजमसादमासादयता मानसेन भापेतेति भावः स साधुः पूज्यो भवति ॥६॥

एतदेव स्पष्टयति-'मुहुत्त०' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

मुहुत्तदुक्खा उ हवंति कंटया, अओमया तेवि तओ सुउद्धरा।
वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि, वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥७॥

॥ छाया ॥

मुहूर्तदुःखास्तु भवन्ति कण्टकाः, अयोमयास्तेऽपि ततः सूद्धराः।
वाग्दुरुक्तानि दुरुद्धराणि, वैरानुबन्धीनि महाभयानि ॥७॥

॥ टीका ॥

अयोमयाः=लोहनिर्मिताः कण्टकास्तु मुहूर्तदुःखाः,=अल्पकालिकदुःखकारकाः, वेधसमय एव प्रायेण वेदनोद्भवात्। तेऽपि=लोहमया अपि कण्टकाः ततः शरीरात् सूद्धराः=सुखेनोद्धर्तुं=बहिर्निःसारयितुं शक्या भवन्ति, परन्तु वैरानुबन्धीनि=वैरस्य-द्वेषस्यानुबन्धः=सम्बन्धो यत्र तानि इहलोके परलोके पापकानि

तनिक भी विचलित नहीं करता, उसी प्रकार जो साधु, कानों में बाणों के समान चुभने वाले मनोवेदनाजनक वचनों को निःस्पृह होकर सह लेता है, अपने मनमें तनिक भी विकार नहीं आने देता वही पूजनीय होता है ॥६॥

'मुहुत्तदुक्खा' इत्यादि। लोहे के कांटे, थोड़े समय तक ही दुःखदायी होते हैं क्योंकि, जब वे चुभते हैं तभी प्रायः वेदना होती है, तिस पर भी वे सरलता से शरीर से निकालकर अलग किये जासकते हैं परन्तु इस लोकमें वैर का अनुबंध करने वाले और

લાગે, અને મનમાં પીડા ઉત્પન્ન કરે એવાં વચનોને પણ નિઃસ્પૃહ થઈને સહન કરી લે છે અને પોતાના મનમાં જરાય પણ ખેદ પામતા નથી તેજ પૂજનીય થાય છે (૬)

'મુહુત્તદુક્ખા' ઇત્યાદિ—લોઢાનો કાંટો થોડા સમય સુધી પણ દુઃખકારક થાય છે, જ્યારે તે લાગે છે ત્યારેજ ઘણું કરીને દુઃખ થાય છે, તો પણ તે કાંટાને સરળતાથી શરીર બહાર કાઢી જૂદો કરવામાં આવે છે, પરન્તુ આ લોકમાં વેરનો

अत एव महाभयानि=परलोके नरकपातादिमहाभयनिदानस्वरूपाणि, वाग-दुरुक्तानि=कठोरवचनकण्टकानि, दुरुद्धराणि=दु सा यनिःसारणानि भवन्ति, हृदयमर्मनिखातस्य वाक्कण्टकस्य निस्सारण दुष्करमिति भावः ॥७॥

॥ मूलम् ॥

समावयता वयणाभिघाया, कन्नगया दुम्मणिअ जणाति ।
धम्मत्ति किच्चा परमग्गसूरे, जिइंदिए जो सहई स पुज्जो ॥८॥

॥ छाया ॥

समापतन्त' वचनाभिघाताः कर्णगताः दौर्मनस्य जनयन्ति ।
धर्म इति कृत्वा परमाग्रशूरः जितेन्द्रियो यः सहते स पूज्यः ॥८॥

॥ टीका ॥

'समावयंता' इत्यादि ।

वचनाभिघाताः=वाग्बाणप्रहाराः कर्णगताः=कर्णमार्गप्रविष्टा' समापतन्त' समीभूय हृदयाभिमुखमायान्त एव दौर्मनस्य=मनोमालिन्य जनयन्ति=उ पादयन्ति प्राणिनामितिशेषः । यस्तु जितेन्द्रिय =वशीकृतेन्द्रियगण. परमाग्रशूरः=अद्वितीय

परलोकमें नरक आदि कुगतियों में लेजाने वाले महाभयकर कठोर वचनरूपी कांटों का निकलना बहुत कठिन अर्थात् मर्मस्थान में छिदे हुए वचनरूपी कांटों का निकालना अत्यन्त दुष्कर है ॥७॥

'समावयता' इत्यादि। ये दुर्वचनरूपी प्रहार, कानों में प्रविष्ट होकर ज्योंहि हृदय की ओर आते है, त्योंहि मनमें दुष्ट विचारों का उत्पन्न कर देते ह । किंतु जो साधु

અનુબધ (ભણધ) કરવાવાળા અને પરલોકમા નરક આદિ કુગતિઓમા લઈ જવા વાળા મહા ભયકર કઠોર વચન રુપી કાટો નીકળનો તે બહુ કઠિન છે, અર્થાત મર્મ સ્થાનમા ઘા કરેલો વચન રૂપી કાટો નીકળવો અત્યત કઠિન છે (૭)

'સમાવયતા' ઇત્યાદિ— જે દુર્વચન-ખરાબ વચનો રૂપી પ્રહાર, કાનમા પ્રવેશીને મુદિત થઈને હૃદયની તરફ આવે છે, ત વખતે જ મનમા દુષ્ટ વિચારો ઉત્પન્ન કરે છે પરન્તુ જે સાધુ જિતેન્દ્રિય હોય છે, અદ્વિતીય શૂરવીર હોય છે

वीरः धर्म इति कृत्वा='क्षमाकरणं मम साधोर्धर्मः' इति मत्वा तान्=वचनाभिघातान् सहते=क्षमते, नाऽशस्त्रवचनाभिघातेन न ग्लायतीत्यर्थः स पूज्यो=जगति माननीयो भवति। वचनबाणाभिघातसहने तस्य न किंचिदर्थलिप्सादिकं हेतु किन्तु शिशुं जननीव सहनशीलतैव साधोः सकलश्रेयसां साधनमिति मत्वा मुनिर्माननीयो भवतीति भावः।

'परमग्गसूरे'–इत्यनेनान्तरङ्गरिपुविजयशील एव शूरप्रवरो नान्यः, मोक्षसाम्राज्याधिकारित्वादिति सूचितम्।

'जिइंदिये'–इत्यनेन वाग्विषमपि सुधाकारेण परिणमयितुं मुनेः शक्तिर्व्यज्यते॥८॥

जितेन्द्रिय होता है अद्वितीय शूरवीर होता है तथा क्षमा करना अपना धर्म समझता है, तेम वचन सुनकर खेद नहीं करता वही समार्गमें पूजनीय होता है।

भाव यह है कि वचनबाणों का सहन करने मे मुनिका किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं है, "जैसे माता ही शिशुका कल्याण करती है उसी प्रकार क्षमा ही साधुके सब प्रकार के कल्याण का कारण है" ऐसा समझ कर जो क्षमा करता है वही मुनि पूजनीय होता है।

'परमग्गसूरे' इस पदसे यह प्रगट किया है कि जो अंतरंग रिपुओं पर विजय प्राप्त करता है वही वीरवर हो सकता है, क्योंकि, वही मोक्षसाम्राज्य का अधिकारी होता है अन्य नहीं। 'जिइंदिये'–पदसे यह प्रगट होता है कि विष के समान कटुक वचनोंको साधु, सुधा (अमृत) के सदृश मधुर कर लेता है ॥८॥

તથા ક્ષમા કરવી તે પોતાનો ધર્મ સમજે છે, તે એવા વચનો સાંભળીને ખેદ કરતા નથી, તે સંસારમાં પૂજનીય થાય છે.

ભાવ એ છે કે -વાગ્બાણ (વચનરૂપી બાણ) સહન કરવામાં મુનિને કોઈ પ્રકારની ઇચ્છા (લિપ્સા) નથી "જેવી રીતે માતાજ પોતાના બાળકનું કલ્યાણ કરે છે, તે પ્રમાણે ક્ષમા જ સાધુનું સર્વ પ્રકારે કલ્યાણ કરી શકે છે" એમ સમજીને જે ક્ષમા કરે છે તેજ મુનિ પૂજનીય થાય છે.

'પરમગ્ગસૂરે' આ પદથી એ જણાવવામાં આવ્યું છે કે -જે અન્તરંગ શત્રુઓ પર વિજય પ્રાપ્ત કરે છે તેજ વીર પુરુષોમાં શ્રેષ્ઠ થઈ શકે છે કેમકે તેજ મોક્ષરૂપી સામ્રાજ્યના અધિકારી થાય છે અન્ય નહિ. 'જિઇંદિએ' પદથી એ પ્રગટ થાય છે કે - ઝેર જેવાં કડવાં વચનોને પણ સાધુ, અમૃત સમાન મીઠાં કરી લે છે (૮)

॥ मूलम् ॥

अवन्नवाय च परम्मुहस्स, पच्चक्खओ पडिणीअं च भासं ।
ओहारणिं अप्पिअकारणिं च, भासं न भासिज्ज सया स पुज्जो ॥९॥

॥ छाया ॥

अवर्णवादं च पराङ्मुखस्य प्रत्यक्षतः प्रत्यनीकां च भाषाम् ।
अवधारणीमप्रियकारिणीं च भाषां न भाषेत सदा स पूज्यः ॥९॥

॥ टीका ॥

'अवन्नवाय' इत्यादि ।

यः साधुः पराङ्मुखस्य=जनसम्मुखस्य परोक्षस्थितस्येत्यर्थः, प्रत्यक्षतः=समक्षस्थितस्य च अवर्णवादम्=अप्रशंसासन निन्दावचनमित्यर्थः यथा-'स दुःशीलः' इत्यादि, च=पुनः प्रत्यनीकाम्=अपकारिणीं भाषां यथा-'दण्डनीयोऽयं मम शत्रु'-रित्यादि न भाषेत=न वदेत्, तथा अवधारणीं=निश्चयबोधिकां यथा 'श्वस्तनावश्यं गन्तास्मी'त्यादि, अप्रियकारिणीं=दुःखोत्पादिकां यथा 'म्रियतां तव पुत्रः' इत्यादिकां भाषां सदा न भाषेत स पूज्यो भवति । निरवद्यभाषाभाषणतत्पर एव जगन्माननीयो भवतीति भावः ॥९॥

'अवन्नवाय च' इत्यादि । जो साधु, परोक्षमें या प्रत्यक्षमें किसीकी निन्दा नहीं करता अर्थात् किसीको दुराचारी आदि अपशब्द नहीं कहता, तथा अन्य का अपकार करने वाली भाषा नहीं बोलता, जैसे कि-"यह दण्डनीय है" इत्यादि, तथा "कल यहां अवश्य आऊंगा" इत्यादि प्रकार की निश्चयकारी भाषा नहीं बोलता, तथा "तेरा बेटा मरजाय" इत्यादि दुःख जनक भाषा नहीं बोलता वह पूजनीय होता है ।
तात्पर्य यह है कि निरवद्य भाषा बोलने वाला ही संसार में पूजनीय होता है ॥९॥

'अवन्नवाय च' ઇત્યાદિ-જે સાધુ, પરોક્ષમાં અથવા પ્રત્યક્ષમાં કોઇની નિન્દા કરતા નથી અર્થાત્ કોઇને દુરાચારી આદિ અપશબ્દ કહેતા નથી તથા અન્યનો અપકાર કરનારી ભાષા બોલતા નથી જેમકે "આ દંડ યોગ્ય છે" ઇત્યાદિ, તથા "હું કાલે ત્યાં અવશ્ય જઇશ" ઇત્યાદિ પ્રકારની નિશ્ચયકારી ભાષા બોલતા નથી તથા "તારો પુત્ર મરી જશે" આવી દુઃખ ઉત્પન્ન કરાવનારી ભાષા બોલતા નથી તે જ પૂજનીય થાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે-નિરવદ્ય ભાષા બોલવાવાળા જ સંસારમાં પૂજનીય થાય છે (૯)

॥ मूलम् ॥

अलोलुए अकुहए अमाई, अपिसुणे यावि अदीणवित्ती ।
नो भावए नोवि य भाविअप्पा, अकोउहल्ले य सया स पुज्जो ॥१०॥

॥ छाया ॥

अलोलुपः अकुहकः अमायी, अपिशुनः चापि अदीनवृत्तिः ।
नो भावयेत् नापि च भावितात्मा, अकौतूहलश्च सदा स पूज्यः ॥१०॥

॥ टीका ॥

'अलोलुए' इत्यादि ।

अलोलुपः = सरसाहारलोभशून्यः, अकुहकः=इन्द्रजालादिक्रियाविवर्जितः, अमायी=निष्कपटः, अपिशुनः = विद्वेषोत्पादकवृत्तिनिवेदनरहितः, अपिच अदीनवृत्तिः=भिक्षाया अलाभेऽपि दैन्यभावशून्यः, यः साधुः नो भावयेत्=अन्यद्वारा स्वप्रशंसा न कारयेत्, अपिच भावितात्मा=भावितः=प्रशंसितः आत्मा येन स तथाविधः= आत्मश्लाघी न भवेत्, च=पुनः अकौतुहलः=नटनाटकादिदर्शनोत्कण्ठारहितो भवेत् स पूज्यो भवति ।

'अलोलुए' इत्यादि । सरस आहार आदि में लोलुपता न करने वाला, इन्द्रजाल आदि क्रियाओं का त्यागी, निष्कपट, चुगली न खानेवाला अर्थात् इधर की बात उधर भिडाकर किसी को क्लेश न पहुँचाने वाला और भिक्षाका लाभ न होने पर भी दीनता न धारण करने वाला होता है, दूसरों से अपनी प्रशंसा नहीं कराता, स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करता, तथा नाटक आदि खेल देखने की उत्कण्ठा नहीं रखता वह पूजनीय होता है ।

'अलोलुए' इत्यादि-सरस आहार आदिमां लोलुपता नहि करवावाळा इन्द्रजाल आदि क्रियाओना त्यागी, निष्कपट चाडी नहि खानारा अर्थात् एकनी वात बीजाने भरावी भंभेरीने कोइने कलेश नहि पहोंचाडवावाळा अने भिक्षानो लाभ न मळे तो पण दीनता नहि धारण करवावाळा होय छे बीजा पासे पोतानी प्रशंसा कराववा नथी तेमज पोते पण पोतानी प्रशंसा करता नथी, तथा नाटक वगेरे खेल जोवानी उत्कंठा राखता नथी ते पूजनीय थाय छे

'अलोलुए' इत्यनेन रसनेन्द्रियविजेतृत्वम्, 'अकुहए' इत्यनेन अवञ्चकत्वम्, "अमाई" इत्यनेन स्फटिकमणिविमलमानसत्वम्, "अपिसुणे" इत्यनेन समदर्शित्वम्, "अदीणवित्ती" इत्यनेन यथालाभसन्तोषित्व, प्रवचनमहिमवेत्तृत्व च, 'अकोउहल्ले' इत्यनेन च कर्मनाटकचिन्तनेन लौकिकनाटकदर्शनोत्कण्ठाविरसत्वं चावेदितम् ॥१०॥

॥ मूलम् ॥

गुणेहिं[1] साहू[2] अगुणेहिऽसाहू[3], गिण्हाहि[4] साहूगुण[6] मुंचऽसाहू[5][8][7]।

वियाणिया[11] अप्पगमप्पएणं[10][9][1], जो[13] रागदोसेहिं[14] समो[15] स पुज्जो[16] ॥११॥

॥ छाया ॥

गुणैः साधुः अगुणैः असाधुः, गृहाण साधुगुणान् मुञ्च असाधून्,

विज्ञाय आत्मानमात्मना, यो रागद्वेषयोः समः स पूज्यः ॥११॥

॥ टीका ॥

'गुणेहिं' इत्यादि।

गुणैः=विनयादिभि सप्तविंशत्यनगारगुणैश्च साधुर्भवति, अगुणैरविनया-

---

"अलोलुए" पदसे रसना इन्द्रिय का विजय, 'अकुहए' पदसे धूर्तता—ठगाई नहीं करना, 'अमाई' पदसे स्फटिक के समान अन्तःकरण की स्वच्छता, 'अपिसुणे' पदसे समता 'अदीणवित्ती' पदसे सतोष और प्रवचन की महिमा का ज्ञान, 'अकोउहल्ले' पदसे कर्म रूपी नाटक का विचार करके लौकिक नाटक देखने की इच्छा का परित्याग सूचित किया है ॥१०॥

'अलोलुए' पदनी रसना ઇન્દ્રિયનો વિજય, 'अकुहए' પદથી ધૂર્તતા ઠગાઈ નહીં કરવી તે अमाई પદથી સ્ફટિકના પ્રમાણે અન્તઃકરણની સ્વચ્છતા 'अपिसुणे' પદથી સમતા, 'अदीणवित्ती' પદથી સંતોષ અને પ્રવચનના મહિમાનું જ્ઞાન 'अकोउहल्ले' પદથી કર્મરૂપી નાટકનો વિચાર કરીને લૌકિક નાટક જોવાની ઇચ્છાનો પરિત્યાગ સૂચવ્યો છે (૧૦)

दिभिरसाधुः=साधुत्वरहितो भवति, अतो हे शिष्य! साधुगुणान्-विनयादीन्, गृहाण, असाधून=असाधुगुणान् असाधुत्वकारकान् अविनयादीन्, मुञ्च=परित्यज। यद्वा-"गुणैः साधुः, अगुणैः साधुः, गृहाण साधो! गुणान् मुञ्च साधो!" इति च्छाया। तत्र-गुणैः=विनयादिभिः साधुर्भवति, अगुणैः=शब्दादिकामगुणवर्जनैश्च साधुर्भवति, अतः हे साधो! गुणान्=विनयादीन् गृहाण, तथा हे साधो! मुञ्च च शब्दादिकामगुणानिति भावः। इत्येवं तीर्थङ्करादीनामुपदेशेन आत्मनाऽऽत्मानं विनयादिगुणयुक्तं विज्ञाय=विधाय, यः साधुः-रागद्वेषयोः समः=रागद्वेषसाधनसमवधाने रागद्वेषराहित्येन निर्विकारस्तिष्ठेत् स पूज्यो भवति। गुर्वादिविनयेनैव रागद्वेषविजयो जायते, तद्विजयेन च पूजनीयतेति भावः ॥११॥

'गुणेहि' इत्यादि। विनय आदि सद्गुणों से साधु होता है और अविनय आदि दुर्गुणों से असाधु (साधुपन से रहित) हो जाता है, इसलिए हे शिष्य! विनय आदि गुणों को ग्रहण करो और असाधु बनाने वाले अविनय आदि दुर्गुणों को दूर करो। अथवा विनयादि गुणों के ग्रहण से और शब्दादि कामगुणों के वर्जन से साधु कहलाता है, इसलिये हे साधु! विनयादि गुणों को ग्रहण करो और शब्दादि कामगुणों का त्याग करो। तीर्थंकर और गणधर भगवान् का ऐसा उपदेश सुनकर जो साधु, अपने को विनय आदि गुणों से सपन्न बना लेता है और रागद्वेष के कारण उपस्थित रहने पर भी समभाव रखता है वही संसार में पूजनीय होता है। आशय यह है कि गुरु आदि का विनय करने से ही रागद्वेष पर विजय प्राप्त होता है ॥११॥

'गुणहिं' ઇત્યાદિ-વિનય આદિ સદ્‌ગુણોથી સાધુ હોય છે, અને અવિનય આદિ દુર્ગુણોથી અસાધુ (સાધુપણાથી રહિત) થઇ જાય છે એ માટે હે શિષ્ય! વિનય આદિ ગુણોને ગ્રહણ કરો, અને અસાધુ બનાવવા વાળા અવિનય આદિ દુર્ગુણોનો ત્યાગ કરો. અથવા વિનયાદિ ગુણોના ગ્રહણથી અને શબ્દાદિ કામ ગુણોના વર્જનથી સાધુ કહેવાય છે માટે હે મુનિ! તમે વિનયાદિ ગુણોને ગ્રહણ કરો અને કામાદિ ગુણોને મૂકો. તીર્થંકર અને ગણધર ભગવાનનો એવો ઉપદેશ સાંભળીને જે સાધુ પોતાને વિનય આદિ ગુણોથી સંપન્ન બનાવી લે છે અને રાગ-દ્વેષ થવાનું કોઇ કારણ ઉભું થાય તો પણ સમતા ભાવ રાખે છે તે સંસારમાં પૂજનીય થાય છે. આશય એ છે કે-ગુરુ આદિનો વિનય કરવાથી રાગ-દ્વેષ પર વિજય પ્રાપ્ત કરી શકાય છે (૧૧)

(मूलम्)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
तहेव डहरं च महल्लगं वा, इत्थी पुमं पव्वइयं गिहिं वा।
११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२
नो हीलए नोवि य खिसइज्जा, थंभं च कोहं च चए स पुज्जो ॥१२॥

॥ छाया ॥

तथैव डहरं च महल्लकं वा, स्त्रियं पुमांसं प्रव्रजितं गृहिणं वा,
नो हीलयति नापि च खिंसयति, स्तम्भं च क्रोधं च त्यजति, स पूज्यः ॥१२॥

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि।

तथैव=पूर्वोक्तप्रकारेण, डहरं=बालं, महल्लकं=वृद्धं वा, 'महल्लक' इति देशी शब्दः, स्त्रियं, पुमांसं, प्रव्रजितं=संयतं, गृहिणम्=असंयतम् वा न हीलयति=नावमानयति, न खिंसयति=न कोपयति साक्षेपवादादिना, स्तम्भम्=अभिमानं, क्रोधं च त्यजति=न करोति स पूज्यः=पूजनीयो भवति ॥१२॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ७ ५ ६ ८
जे माणिया सययं माणयंति, जत्तेण कन्नं व निवेसयंति।
९ १४ १० ११ १२ १३ १५ ६
ते माणए माणरिहे तवस्सी, जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो ॥१३॥

'तहेव' इत्यादि। इसी प्रकार जो साधु छोटा, बडा, स्त्री, पुरुष, संयत, असंयत, इनमें से किसी की भी अवहेलना (तिरस्कार) नहीं करता, किसी को कोपित नहीं करता, अहंकार और क्रोध का त्याग करता है वह पूजनीय होता है ॥१२॥

'तहेव' ઇત્યાદિ જે સાધુ નાના-મોટા, સ્ત્રી, પુરુષ, સંયત, અસંયત, એ સર્વ પૈકી કોઇની પણ અવહેલના-તિરસ્કાર કરતા નથી, કોઇને ક્રોધિત કરતા નથી, અહંકાર અને ક્રોધનો ત્યાગ કરે છે તે પૂજનીય હોય છે (૧૨)

दिभिरसाधुः=साधुत्वरहितो भवति, अतो हे शिष्य! साधुगुणान् विनयादीन्, गृहाण, असाधून्=असाधुगुणान् असाधुत्वकारकान् अविनयादीन्, मुञ्च=परित्यज। यद्वा-"गुणैः साधुः, अगुणैः साधुः, गृहाण साधो! गुणान् मुञ्च साधो!" इति च्छाया। तत्र-गुणैः=विनयादिभिः साधुर्भवति, अगुणैः=शब्दादिकामगुणवर्जनैश्च साधुर्भवति, अतः हे साधो! गुणान्=विनयादीन् गृहाण, तथा हे साधो! मुञ्च च शब्दादिकामगुणानिति भावः। इत्येवं तीर्थकरादीनामुपदेशेन आत्मना=स्वयम् आत्मानं विनयादिगुणयुक्तं विज्ञाय-विधाय, यः साधुः-रागद्वेषयोः सम=राग द्वेषसा(?)नसमवधाने रागद्वेषराहित्येन निर्विकारस्तिष्ठेत् स पूज्यो भवति। गुर्वादि विनयेनैव रागद्वेषविजयो जायते, तद्विजयेन च पूजनीयतेति भाव. ॥११॥

'गुणेहिं' इत्यादि। विनय आदि सद्गुणों से साधु होता है और अविनय आदि दुर्गुणों से असाधु (साधुपनसे रहित) हो जाता है, इसलिए हे शिष्य! विनय आदि गुणों को ग्रहण करो और असाधु बनाने वाले अविनय आदि दुर्गुणों को दूर करो। अथवा विनयादि गुणों के ग्रहण से और शब्दादि कामगुणों के वर्जन से साधु कहलाता है, इसलिये हे साधु! विनयादि गुणों को ग्रहण करो और शब्दादि कामगुणों का त्याग करो। तीर्थंकर और गणधर भगवान् का ऐसा उपदेश सुनकर जो साधु, अपने को विनय आदि गुणों से सपन्न बना लेता है और रागद्वेष के कारण उपस्थित रहने पर भी समताभाव रखता है वही ससार में पूजनीय होता है। आशय यह है कि गुरु आदि का विनय करने से ही रागद्वेष पर विजय प्राप्त होता है ॥११॥

'गुणहिं' ઇત્યાદિ-વિનય આદિ સદ્ગુણોથી સાધુ હોય છે, અને અવિનય આદિ દુર્ગુણોથી અસાધુ (સાધુપણાથી રહિત) થઇ જાય છે એ માટે હે શિષ્ય! વિનય આદિ ગુણોને ગ્રહણ કરો, અને અસાધુ બનાવવા વાળા અવિનય આદિ દુર્ગુણોનો ત્યાગ કરો. અથવા વિનયાદિ ગુણોના ગ્રહણથી અને શબ્દાદિ કામ ગુણોના વર્જનથી સાધુ કહેવાય છે માટે હે મુનિ! તમો વિનયાદિ ગુણોને ગ્રહણ કરો અને કામાદિ ગુણોને મૂકો તીર્થંકર અને ગણધર ભગવાનનો એવો ઉપદેશ સાભળીને જે સાધુ પોતાને વિનય આદિ ગુણોથી સંપન્ન બનાવી લે છે અને રાગ-દ્વેષ થવાનું કોઇ કારણ ઉભું થાય તો પણ સમતા ભાવ રાખે છે તે સંસારમાં પૂજનીય થાય છે આશય એ છે કે -ગુરુ આદિનો વિનય કરવાથી રાગ-દ્વેષ પર વિજય પ્રાપ્ત કરી શકાય છે (૧૧)

(मूलम्)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
तहेव डहरं च महल्लगं वा, इत्थी पुमं पव्वइयं गिहिं वा।
११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२
नो हीलए नोवि य खिंसइज्जा, थंभं च कोहं च चए स पुज्जो ॥१२॥

॥ छाया ॥

तथैव डहरं च महल्लकं वा, स्त्रियं पुमांसं प्रव्रजितं गृहिणं वा,
नो हीलयति नापि च खिंसयति, स्तम्भं च क्रोधं च त्यजति, स पूज्यः ॥१२॥

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि।

तथैव=पूर्वोक्तप्रकारेण, डहरं=बालं, महल्लकं=वृद्धं वा, 'महल्लक' इति देशी शब्दः, स्त्रियं, पुमांसं, प्रव्रजितं=संयतं, गृहिणम्=असंयतम् वा न हीलयति=नावमानयति; न खिंसयति=न कोपयति साक्षेपवादादिना, स्तम्भम्=अभिमानं, क्रोधं च त्यजति=न करोति स पूज्यः=पूजनीयो भवति ॥१२॥

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ७ ५ ६ ८
जे माणिया सययं माणयंति, जत्तेण कन्नं व निवेसयंति।
९ १४ १० ११ १२ १३ १५ १६
ते माणए माणरिहे तवस्सी, जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो ॥१३॥

'तहेव' इत्यादि। इसी प्रकार जो साधु छोटा, बडा, स्त्री, पुरुष, संयत, असंयत, इनमें से किसी की भी अवहेलना (तिरस्कार) नहीं करता, किसी का कोपित नहीं करता, अहंकार और क्रोध का त्याग करता है वह पूजनीय होता है ॥१२॥

'तहेव' ઇત્યાદિ જે સાધુ નાના-મોટા, સ્ત્રી, પુરુષ, સંયત, અસંયત, એ સર્વ પૈકી કોઇની પણ અવહેલના-તિરસ્કાર કરતા નથી, કોઇને કોપિત કરતા નથી, અહંકાર અને ક્રોધનો ત્યાગ કરે છે તે પૂજનીય હોય છે (૧૨)

॥ छाया ॥

ये मानिताः सततं मानयंति, यत्नेन कन्यामिव निवेशयन्ति।
तान् मानयति मानार्हान् तपस्वी, जितेन्द्रियः सत्यरतः स पूज्यः ॥१३॥

॥ टीका ॥

'जे माणिया' इत्यादि।

ये आचार्यादयः अभ्युत्थानाभिवादनादिनाऽन्तेवासिना मानिताः=सत्कृताः सन्तः सततं=निरन्तरम् अन्तेवासिनं मानयन्ति=सत्कुर्वते सद्गुणशिक्षया वर्द्धयन्तीत्यर्थः। तथा मातापितरौ कन्यामिव त शिष्य गुरवः यत्नेन=प्रयत्नेन निवेशयन्ति=आचार्यादिपदे स्थापयन्ति। यथा मातापितरौ कन्या वयसा गुणैश्च संवर्ध्य विविध वसनाभरणयानादिभिः सह प्रशस्तसद्मनि सुकृतशीले योग्ये भर्त्तरि स्थापयतः, तथैव गुरवोऽपि वयसा मूलोत्तरगुणैश्च संवर्ध्य लज्जावसनक्षमार्जवविनयसंतोषादि भूषणगणेन ज्ञानादिरत्नैश्च मानयित्वाऽऽचार्यपदे स्थापयन्ति। तान् मानार्हान्=पूजनीयाचार्यादीन् यः शिष्य तपस्वी=तपश्चर्यारतः जितेन्द्रियो=वशीकृतेन्द्रिय गणः, सत्यरतः=सत्यमहाव्रतपालनपरायण. मानयति=आचार्यपदलाभेऽपि पूर्व-

'जे माणिया' इत्यादि। शिष्य, जिन आचार्य आदि बडों, का विनय सत्कार करता है, वे आचार्यादिक, शिष्य का भी सम्मानित करते है—अर्थात् उसे सदगुणों की शिक्षा देकर उन्नत बनाते हैं। जैसे माता पिता कन्याको गुणों से और अवस्थासे बढाकर वस्त्र अलङ्कार सवारी आदि के साथ धर्मपरायण प्रशंसनीय धाम योग्य पति के साथ स्थापित कर देते हैं, वैसे ही गुरु भी, वय और मूलोत्तर गुणों से बढाकर लज्जारूपी वस्त्र से तथा क्षमा, आर्जव, विनय, सन्तोष आदि भूषणों से, ज्ञान आदि रत्नों से सम्मानित करके आचार्यपद पर

જે 'માણિયા' ઇત્યાદિ- શિષ્ય, જે આચાર્ય આદિ મોટાનો વિનય-સત્કાર કરે છે, તે આચાર્ય આદિ, શિષ્યનું સન્માન કરે છે અર્થાત્—તેને સદ્દગુણોનું શિક્ષણ આપીને ઉન્નત-ઉચ્ચ બનાવે છે જેવી રીતે માતા-પિતા પોતાની પુત્રીઓને (કન્યાઓને) ગુણ અને વયમા વધારીને મોટા થતા વસ્ત્ર ઘરેણા અને વાહન સાથે ધર્મપરાયણ વખાણવા લાયક ઘરમા યોગ્ય પતિને સોપે છે તેવીજ રીતે ગુરુ પણ, વય અને મૂલોત્તર ગુણથી વધારીને લજ્જારૂપી વસ્ત્ર, તથા ક્ષમા, આર્જવ, વિનય, સતોષ, આદિ ઘરેણાથી, જ્ઞાનઆદિ રત્નોથી સન્માન કરીને આચાર્ય પદ પર

मदभ्युत्थानाभिवादनादिना पर्यायज्येष्ठान् पूजयति स पूज्यो=जगत्समाननीयो भवति ॥१३॥

॥ मूलम् ॥

तेसिं गुरूणं गुणसागराणं, सोच्चाण मेहावि सुभासियाइं।
चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो, चउक्कसायावगए स पुज्जो ॥१४॥

॥ छाया ॥

तेषां गुरूणां गुणसागराणां श्रुत्वा मेधावी सुभाषितानि ।
चरेन्मुनिः पञ्चरतः त्रिगुप्तः चतुष्कषायापगतः स पूज्यः ॥१४॥

॥ टीका ॥

'तेसिं' इत्यादि ।

यः मेधावी=विशिष्टबुद्धिशाली मुनिः=साधुः तेषां=पाग्प्रतिपादितानां, गुणसागराणां, गुरूणाम्=आचार्याणां रत्नाधिकानां वा, सुभाषितानि=धर्मोपदेशवाक्यानि, श्रुत्वा=निशम्य, पञ्चरतः=पञ्चमहाव्रतपालनपरः, त्रिगुप्तः=मनोगुप्तिवाग्गुप्तिकायगुप्तियुक्तः, चतुष्कषायापगतः=क्रोधादिरहितः सन्, चरेत्=विचरेत्

प्रतिष्ठित कर देते हैं। जो तपस्वी, जितेन्द्रिय तथा सत्यपालक शिष्य, पूज्य आचार्य और अपने से बड़ों का सन्मान करता है, वही पूजनीय होता है ॥१३॥

'तेसिं' इत्यादि। जो साधु, उन गुणों के समुद्र आचार्य तथा रत्नाधिक के धर्मोपदेश वाक्य सुन कर पञ्चमहाव्रत के पालन में सावधान, मन वचन और काय, इन तीन गुप्तियों का आराधक, तथा क्रोध आदि चारों कषायों से रहित होता है वह पूजनीय होता है।

प्रतिष्ठित करे छे जे तपस्वी, जितेन्द्रिय, तथा सत्यपालक शिष्य पूज्य आचार्य अने पोताथी दीक्षामां मोटानुं सन्मान करे छे—तेज पूजनीय थाय छे (१३)

तेसिं' इत्यादि— जे साधु ते गुणोना समुद्र आचार्य तथा रत्नाधिकना धर्मोपदेशवाळां वाक्यो सांभळीने पांच महाव्रतोनुं पालन करवामां सावधान, मन, वचन अने काय आ त्रण गुप्तिओना आराधक तथा क्रोध आदि चार कषायोथी

स पूज्यो भवति। 'गुणसागराण' इति विशेषणपदेन तदीयसुभाषिते सकल सद्गुणप्रकाशकत्वमिति, तदुपदेशश्रवणमात्मकल्याणकरमिति च सूचितम्। 'मेहावि' इत्यनेन 'धारणाशक्तिसंपन्न एव उपदेशश्रवणसाफल्यं भूते' इत्यावेदितम्। 'मुणी' इतिपदेन गुर्वाज्ञाप्रमाणत्वं, 'पंचरए'– इत्यनेन सावद्यक्रियाभीरुत्व, 'तिगुत्तो' इतिपदेन आत्मनो विशुद्धाध्यवसायवत्त्वं, 'चउकसायावगए' इतिपदेन च आस्रवनिरोधित्वं ध्वनितम् ॥१४॥

उद्देशार्थमुपसंहरन्नाह—'गुरुमिह' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

३ २ ४ ५ १ ६ ७
गुरुमिह सययं पडियरिय मुणी, जिणमयनिउणे अभिगमकुसले।
१० ९ ८ १२ ११ १३ १४ १५ १६
धुणिय रयमलं पुरेकडं भासुरमउलं गइं गय ॥१५॥ त्तिबेमि॥

॥ छाया ॥

गुरुम् इह सततं परिचर्य मुनिः जिनमतनिपुणोऽभिगमकुशलः।
विधूय रजोमलं पुराकृतं भास्वरामतुलां गतिं गतः ॥१५॥ इति ब्रवीमि॥

"गुणसागराण"—इस विशेषण से यह प्रगट किया है कि उनका उपदेश, समस्त सद्गुणों का प्रकाशक तथा आत्मा के लिए परम कल्याण कारी है। "मुणी"—पदसे गुरु की आज्ञाका मानना, "पंचरए" पदमे सावद्य क्रिया से भय रखना "तिगुत्तो" पदसे आत्माका विशुद्ध अध्यवसाय, और "चउकसायावगए" पदसे आस्रवका निरोध प्रगट किया है ॥१४॥

રહિત હોય છે તે પૂજનીય થાય છે 'गुणसागराण' આ વિશેષણથી એ પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે કે તેમનો ઉપદેશ સમસ્ત સદ્‌ગુણોનો પ્રકાશક, તથા આત્માને પરમ કલ્યાણકારી છે, 'मुणी' પદથી ગુરૂની આજ્ઞાનું પાલન, पंचरए' પદથી સાવદ્ય ક્રિયાથી ભય રાખવો 'तिगुत्तो' પદથી આત્માનો વિશુદ્ધ અધ્યવસાય અને 'चउकसायावगए' પદથી આશ્રવનો નિરોધ પ્રગટ કર્યો છે (૧૪)

॥ टीका ॥

मुनिः=विनयवान् साधुः, इह=लोके, गुरुम्=आचार्यं रत्नाधिकं वा, सततं परिचर्य=विनयादिना निरन्तरं संसेव्य, जिनमतनिपुणः=निर्ग्रन्थप्रवचनतत्त्वाभिज्ञः, गुरुपरिचर्यैव शास्त्ररहस्यविज्ञानमूलमिति भावः, तथा अभिगमकुशलः=प्राघुणिकसाधुपादसेवाप्रवीणः सन् पुराकृतं=पूर्वभवोपार्जितं, रजोमलं=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं कर्म, विधूय=क्षयं नीत्वा, अतुलाम्=अनुपमां, भास्वरां=देदीप्यमानाम् अनन्तज्ञानादितेजःपुञ्जरूपत्वात्, गतिं=सिद्धिं, गतः=प्राप्तो भवति। "अभिगमकुसले"-इत्यनेन उत्कृष्टविनयित्वं सूचितम्। इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥१५॥

॥ इति विनयसमाधिनामनवमाध्ययने तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥९-३॥

उपसंहार करते हुए कहते हैं—'गुरुमिह' इत्यादि। मुनि, गुरु (आचार्य) तथा रत्नाधिक की सतत सेवा करके निर्ग्रन्थ प्रवचन का रहस्य समझकर अतिथिरूप से आयेहुए साधुओं का परीचर्या (सेवा) में प्रवीण होता हुआ पूर्व भव में उपार्जित ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का क्षय करके अनुपम, प्रकाशमान, अर्थात् अनन्त केवल ज्ञान रूपी तेज से दीप्त सिद्धगति को प्राप्त करता है। "अभिगमकुसले" पदसे उत्कृष्ट विनय सूचित किया है ॥१५॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं-हे जम्बू! भगवान् महावीरने जैसा कहा है वैसा ही मैंने तुमसे कहा है ॥

। इति विनयसमाधि-नामक नववा अध्ययन का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥९-३॥

ઉપસંહાર કરતા કહે છે —

'गुरुमिह'- ઇત્યાદિ-મુનિ, ગુરુ-આચાર્ય તથા રત્નાધિકની સતત સેવા કરીને નિર્ગ્રન્થ પ્રવચનનું રહસ્ય સમજીને અતિથિરૂપથી આવેલા સાધુઓની પરિચર્યા-સેવામાં પ્રવીણ થઇને પૂર્વભવમાં ઉપાર્જિત જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોનો ક્ષય કરીને અનુપમ પ્રકાશમાન અર્થાત્ અનન્ત કેવલજ્ઞાન રૂપી તેજથી પ્રકાશિત સિદ્ધગતિને પ્રાપ્ત કરે છે 'अभिगमकुसले' પદથી ઉત્કૃષ્ટ વિનય સૂચિત કર્યો છે (૧૫)

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે-હે જમ્બૂ! ભગવાન મહાવીરે જે પ્રમાણે કહ્યું છે તેવી રીતે મે તમને કહ્યું છે

ઇતિ વિનય સમાધિ નામક નવમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશક સમાપ્ત થયો

अथ चतुर्थोद्देशः ।

अथ चतुर्थोद्देशे विशेषरूपेण विनयमुपदर्शयन्नाह—'सुयंमे' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

७ ६ १ २ ३ ४ ५ १ २ ४ ३ ७
सुय मे आउस तेण भगवया एवमक्खायं इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि
५ ६ १ २ ३ ५ ४ ६ ७
विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता । कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणय
८ १ २ ३ ५ ४ ६ ७ ८
समाहिट्ठाणा पन्नत्ता । इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा
९ १ २ ३ ४ ५
पन्नत्ता । तंजहा–विणयसमाही, सुअसमाही, तवसमाही, आयारसमाही ॥१॥

॥ छाया ॥

श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम् । इह खलु स्थविरैर्भगव द्भिश्चत्वारि विनयसमाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि । कतमानि खलु तानि स्थविरैर्भगव-द्भिश्चत्वारि विनयसमाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि ? इमानि खलु तानि स्थविरैर्भगवद्भिश्-चत्वारि विनयसमाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि । तद् यथा–विनयसमाधिः, श्रुतसमाधिः, तपःसमाधिः, आचारसमाधिः ॥१॥

॥ टीका ॥

हे आयुष्मन् जम्बूः ! तेन=लोकत्रयप्रसिद्धेन, भगवता=वर्द्धमानस्वा-मिनाऽन्तिमतीर्थकरेण, एवं=वक्ष्यमाणरीत्या, आख्यातं=कथितं तन्मया

।चौथा उद्देश।

चौथे उदेशकमें विनय का विशेष स्वरूप कहते हैं–'सुय मे' इत्यादि।

सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं। हे आयुष्मन् ! जम्बू ! उन तीनलोकप्रसिद्ध अंतिम तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान स्वामीने ऐसा कहा है यह मैंने सुना है। इस

ચોથો ઉદ્દેશક

'સુય મે' ઇત્યાદિ— સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે–હે આયુષ્મન્ ! ત્રણ લોક પ્રસિદ્ધ અંતિમ તીર્થંકર ભગવાન્ વર્દ્ધમાન સ્વામીએ આ પ્રમાણે કહ્યું

श्रुतम्। इह=प्रवचने, खलु=निश्चयेन, भगवद्भिः=चतुर्ज्ञानचतुर्दशपूर्वरूपैश्वर्यादि-गुणयुक्तैः स्थविरैः चत्वारि विनयसमाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि=निरूपितानि, अयं भावः—भगवतः सकाशाद् विनयसमाधिस्थानानि यथा मया श्रुतानि तथैवा-परतीर्थङ्करेभ्यः श्रुत्वा तत्तद्गणधरा अपि चत्वारि विनयसमाधिस्थानानि तत्त-च्छासने प्रणीतवन्त इति। शिष्यः पृच्छति—कतराणि खलु तानीति?

आचार्यः समाधत्ते—इमानि खलु तानीति, तद् यथा—

विनयसमाधिरिति, विनयति = नाशयति चतुर्गतिपरिभ्रमणहेतुज्ञाना-वरणीयाद्यष्टविधं कर्म यः स विनयः=गुर्वाराधनालक्षणः अभ्युत्थानाभिवादन-

---

प्रवचन में परमऐश्वर्यवान् गुण-गण-गरिष्ठ स्थविर भगवानने विनयसमाधि के चार स्थान निरूपण किये हैं, अर्थात् भगवान् के बताये हुए चार विनयसमाधिके स्थान जैसे सुने थे वैसे ही गणधर भगवान ने निरूपण किये हैं।

शिष्य—हे भदन्त! स्थविर भगवान् द्वारा निरूपित विनयसमाधि के चार स्थान कौन कौन हैं?

आचार्य—हे शिष्य! स्थविर भगवान् द्वारा निरूपित विनय समाधि के चार स्थान ये हैं—(१) विनयसमाधि, (२) श्रुतसमाधि, (३) तपसमाधि, (४) आचारसमाधि।

છે તે ભગવાન પાસે જે સાંભળ્યું છે એ પ્રવચનમાં પરમઐશ્વર્યવાન્ ગુણ-ગણ-ગરિષ્ઠ સ્થવિર ભગવાને-વિનયસમાધિના ચાર સ્થાન નિરૂપણ કરેલા છે અર્થાત્ ભગવાનના બતાવેલા વિનયસમાધિના ચાર સ્થાન જેવી રીતે સાંભળ્યા છે તેવી જ રીતે ગણધર ભગવાને નિરૂપણ કર્યા છે

શિષ્ય—હે ભદન્ત! સ્થવિર ભગવાન દ્વારા નિરૂપિત વિનયસમાધિના ચાર સ્થાન કેણ-કેણ છે?

આચાર્ય—હે શિષ્ય! સ્થવિર ભગવાન દ્વારા નિરૂપિત વિનયસમાધિના ચાર સ્થાન આ પ્રમાણે છે (૧) વિનયસમાધિ, (૨) શ્રુતસમાધિ, (૩) તપસમાધિ, (૪) આચારસમાધિ

तन्मनोऽनुकूलप्रवृत्तितदाज्ञापुरस्सराहारविहारादिसकलकृत्याचरणलक्षण इत्यर्थः, समाधिः=चित्तस्वास्थ्यं, सुखमित्यर्थः, चित्तैकाग्रता वा, विनये, विनयाद् वा समाधिर्विनयसमाधिरिति विग्रहः, विनयजनितानन्दविशेष इत्यर्थः १।

श्रुतसमाधिरिति–श्रूयते यत्तत् श्रुतं, भव्यहिताय भगवतोपदिष्टं, गणधरैः श्रवणविषयीकृतम् आचाराद्यङ्गोपाङ्गादिलक्षणम्, श्रुते श्रुताद्वा समाधिः श्रुतसमाधि रिति विग्रहः, श्रुतजनिताऽऽनन्दविशेष इत्यर्थः २।

'विणए' इत्यादि। (१) चतुर्गति में परिभ्रमण कराने वाले ज्ञानावरणीय आठ कर्मों का जिससे नाश होता है, उसे विनय कहते हैं, गुरु की आराधना करना–अर्थात् उनके सम्मुख आते ही खड़ा हो जाना, अभिवादन (वन्दना) करना, उनके मनके अनुकूल प्रवृत्ति करना और उनकी आज्ञा के अनुसार आहार विहार आदि समस्त कार्य करना विनयका लक्षण है। चित्त की समता या एकाग्रता को समाधि कहते हैं। विनय से चित्त की समाधि (विनय से या विनय में होने वाले आनन्द) को विनय समाधि कहते हैं।

(२) भव्य जीवों के हित के लिए भगवान तीर्थंकर द्वारा उपदेश किये हुए और गणधर महाराज द्वारा सुने हुए आचाराङ्ग-आदि अङ्ग उपाङ्ग श्रुत हैं। श्रुतसे या श्रुत में होने वाली समाधि को श्रुतसमाधि कहते हैं।

'विणए' ઇત્યાદિ–(૧) ચાર ગતિમા પરિભ્રમણ કરાવનાર જ્ઞાનાવરણી આદિ આઠ કર્મોનો જેના વડે નાશ થાય છે તેને વિનય કહે છે ગુરુની આરાધના કરવી અર્થાત્–સામેથી ગુરુને આવતા જોઈને ઉભા થઈ જવુ, વદના કરવી, તેમના મનને અનુકૂલ પ્રવૃત્તિ કરવી અને તેમની આજ્ઞા પ્રમાણે આહાર વિહાર આદિ તમામ કાર્યો કરવા તે વિનયનુ લક્ષણ છે ચિત્તની સમતા અથવા એકાગ્રતાને સમાધિ કહે છે વિનયથી ચિત્તની સમાધિ (વિનયથી અથવા વિનયમા જે આનદ થાય છે તે આનદ)ને વિનયસમાધિ કહે છે

(૨) ભવ્ય જીવોના હિત માટે ભગવાન તીર્થંકર દ્વારા ઉપદેશ કરાએલા અને ગણધર મહારાજ દ્વારા સાભળેલા આચારાગ આદિ અગ ઉપાગ તે શ્રુત છે શ્રુતથી અથવા શ્રુતમા થવા વાળી સમાધિને શ્રુતસમાધિ કહે છે

तपःसमाधिरिति—तपति=दहति भस्मीकरोति अष्टविधं कर्मेति तपः, तपेरौणादिकोऽसुप्रत्ययः तच्चोनोदर्यादिद्वादशविधात्मकम्, तपसि तपसो वा समाधिः तपःसमाधिरिति विग्रहः, तपोजनितानन्दविशेष इत्यर्थः ३।

आचारसमाधिरिति—चरण चारः, आ=मर्यादया चारः=प्रवृत्तिः—आचारः=शास्त्रमर्यादाया आवर्जनेन—अभिमुखीकरणेन—मोक्षार्थानुष्ठानम्, शास्त्रोक्तविधिनैव समस्तक्रियाकरणम् इत्यर्थः, आचारे आचाराद् वा समाधिः = आचार समाधिः, आचारजनितानन्दविशेष इत्यर्थः ४। सू० १॥

विनयादीना फलमाह—'विणए' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

५ ६ ८ ७ ९ १० ३
विणए सुए य तवे, आयारे निच्च पंडिया।

१२ ११ १ ४ २
अभिरामयंति अप्पाण, जे भवंति जिइंदिया ॥१॥

॥ छाया ॥

विनये श्रुते च तपसि, आचारे नित्य पण्डिताः।
अभिरमयंति आत्मानं, ये भवन्ति जितेन्द्रियाः ॥१॥

---

(३) जो आठ कर्मों को भस्म करे सो तप है, उसके अनशन आदि बारह भेद हैं। तपसे या तपमें होने वाली समाधि को तपसमाधि कहते है।

(४) शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार किये जाने वाले अनुष्ठान (कार्य) को आचार कहते हैं आचार से या आचार में होने वाली समाधि को आचारसमाधि कहते है ॥सू १॥

---

(૩) જે આઠ કર્મોને ભસ્મ કરે તે તપ છે તેના અનશન આદિ બાર ભેદ છે તપથી અથવા તપમા થવાવાળી સમાધિને તપસમાધિ કહે છે

(૪) શાસ્ત્રોની મર્યાદા પ્રમાણે કરવામા આવતુ જે અનુષ્ઠાન–કાર્ય તેને આચાર કહે છે આચારથી અથવા આચારમા થવાવાળી સમાધિને આચારસમાધિ કહે છે (સૂ ૧)

॥ टीका ॥

ये साधवो जितेन्द्रियाः=वशीकृतेन्द्रियगणाः पण्डिताः=सदसद्विवेकज्ञान सफलीकृतजीवना भवन्ति ते विनये=गुर्वाराधनालक्षणे, श्रुते = तीर्थंकरगणधर भाषिते शास्त्रे, तपसि=ऊनोदर्यादिद्वादशविधे, च=पुनः, आचारे = शास्त्रमर्यादा नुलङ्घनपूर्वकाहारविहारादिकरणलक्षणे, नित्यं=निरन्तरम्, आत्मानं = स्वीयं परकीयं वा, अभिरमयन्ति=प्रवर्तयन्ति विनयाद्यनुष्ठानेन प्रसादयन्तीत्यर्थः।

'जिइंदिया'-इत्यनेन विनयाद्यनुष्ठानेऽनुद्विग्ना एव तत्साधयितुं शक्नुवन्तीति सूचितम्, 'पंडिया' इत्यनेन पापभीरुत्वमावेदितम् ॥१॥

विनयसमाधेर्भेदानुपदर्शयन् प्रथमं भेदमाह-'चउव्विहा' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
चउव्विहा खलु विणयसमाही हवइ, तंजहा-अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ १,

विनयादि का फल कहते हैं—'विणए' इत्यादि।

जो साधु जितेन्द्रिय—इन्द्रियों को वशमें करने वाले होते हैं, पण्डित—जिन्होंने सदसद्विवेक ज्ञान से अपने जीवन को सफल कर लिया है वे विनय, श्रुत, तप और आचार में स्व पर को निरन्तर लगाया करते हैं अर्थात् विनय आदि का आचरण करके स्व पर को सुखी बनाते हैं।

"जिइंदिए" पदसे यह सूचित किया है कि जो विनय आदि के आचरणमें खिन्न नहीं होते वेही उसका पालन कर सकते हैं। "पंडिया" पदसे पापभीरुता प्रगट की है ॥१॥

'विणए' इत्यादि—જે સાધુ ઇન્દ્રિયોને વશ કરવાવાળા છે તે વિનય, શ્રુત, તપ અને આચારમાં સ્વ-પરને નિરન્તર લગાડયા કરે છે અર્થાત્ વિનય આદિનું આચરણ કરીને સ્વ-પરને સુખી બનાવે છે એટલા માટે તે પંડિત એટલે સત અને અસતના વિવેકી છે, અને તે પોતાના મનુષ્ય ભવને સફલ કરે છે

'जिइंदिए' પદથી એ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે - જે વિનય આદિ આચરણમાં ખિન્ન થતા નથી તે જ એનું પાલન કરી શકે છે

'पंडिया' પદથી પાપભીરુતા પ્રગટ કરી છે (૧)

८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६
सम्म पडिवज्जइ, २, वेयमाराहइ, ३, न य भवइ अत्तसंपग्गहिए, ४, चउत्थं पय
१७ २१ १९ १८ २०
भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो॥ सू० २॥

॥ छाया ॥

चतुर्विधः खलु विनयसमाधिर्भवति, तद्यथा–अनुशास्यमानः शुश्रूषते १, सम्यक् प्रतिपद्यते २, वेदमाराधयति ३, न च भवति आत्मसंप्रगृहीतः ४, चतुर्थं पदं भवति, भवति च अत्र श्लोकः॥ सू० २॥

॥ टीका ॥

चत्वारि विनयसमाधिस्थानानि पूर्वं प्रतिपादितानि, तत्र प्रथमं विनयसमाधिनामकं स्थानं चतुर्विधम्। तच्च क्रमेण दर्शयति–"तद्यथा–(१) अनुशास्यमानः शुश्रूषते इति, गुरुणा यस्मिन् कस्मिंश्चित् कार्ये मृदुकर्कशवचनादिनाऽऽदिश्यमानः सत्तद्वचनं सादरं श्रोतुमिच्छतीत्यर्थः।

द्वितीयं विनयसमाधिं दर्शयति–(२) सम्यक् प्रतिपद्यते इति, गुरुणा

विनयसमाधि के चार स्थानों में प्रथम विनयसमाधि के भेद दिखाते हैं— "चउव्विहा" इत्यादि।

विनयसमाधि चार प्रकार की है। वह इस प्रकार– (१) गुरु, किसी भी कार्य के लिए कोमल या कर्कश वाक्यों से आदेश देवें तो उनके वचनों को आदर के साथ सुनने की इच्छा करना। (२) गुरुमहाराज जैसी आज्ञा देवें वैसा ही कार्य, प्रसन्नतापूर्वक करना।

વિનય સમાધિના ચાર સ્થાનોમાં પ્રથમ વિનયસમાધિના ભેદ બતાવે છે 'ચઉવ્વિહા' ઇત્યાદિ

વિનય સમાધિ ચાર પ્રકારની છે તે આ પ્રમાણે છે (૧) કોઇપણ કાર્ય માટે ગુરુ મીઠા શબ્દો અથવા તો કટુ-અપ્રિય શબ્દોથી કાંઇ પણ આજ્ઞા કરે તો તેમની આજ્ઞાના વચનોને આદરપૂર્વક સાંભળવાની ઇચ્છા કરવી, (૨) ગુરુ

यथाऽऽदिष्टो भवति तथैव कर्तुमनुमन्यते-इत्यर्थः। तृतीयं प्रदर्शयति-(३) वेद-माराधयतीति, वेत्त्यस्माद्-हेयोपादेयपदार्थसार्थमिति वेदः=श्रुतज्ञानम् तमारा धयति, प्रवचनविहितक्रियानुष्ठानेन श्रुतज्ञानं सफलयतीत्यर्थः। चतुर्थमाह-(४)-न च भवति आत्मसंप्रगृहीत -आत्मैव सम्यक् प्रकर्षेण गृहीतो येन स तथोक्तः, 'अहमेवोत्कृष्टोऽस्मि, विनीतोऽस्मि. इत्यादिभावैरात्मश्लाघी न भवति, चतुर्थं पद भवति=इदमत्र चतुर्थं पदं विनयसमाधिस्थानं भवतीत्यर्थः। च=पुनः, अत्र श्लोकः-'पेहेइ' इत्यादिचतुश्चरणात्मकः पद्यविशेषो भवति=अस्तीत्यर्थः ॥ सू० २॥

श्लोकमाह—'पेहेइ' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

७ ३ ४ ६ ५ ८ ९
पेहेइ हियाणुसासणं, सुस्सूसई तं च पुणो अहिट्ठए।
१० ११ १० १३ १ २
न य माणमएण मज्जइ, विणयसमाहि आयअट्ठिए ॥२॥

॥ छाया ॥

प्रेक्षते हितानुशासनं शुश्रूषते तच्च पुनः अधितिष्ठति।
न च मानमदेन माद्यति विनयसमाधौ आत्मार्थिकः ॥२॥

---

(३) हिताहित का वेद (ज्ञान) कराने वाले श्रुतज्ञान का आराधना करना, अथात् शास्त्रविहित आचरण करके श्रुतज्ञान को सफल करना। (४) "मैं ही उत्कृष्ट हूँ विनीत हूँ" इस प्रकार की आत्मप्रशंसा न करना, यही विनयसमाधिका चौथा स्थान (भेद) होता है। इसी वपयम "पेहेइ" इत्यादि श्लोक है ॥ सू ॥२॥

મહારાજ, જેવી આજ્ઞા કરે તેવુ જ કાર્ય, પ્રસન્નતાપૂર્વક કરવુ, (૩) હિત-અહિતનુ જ્ઞાન કરાવનારા શ્રુત જ્ઞાનની આરાધના કરવી, અર્થાત્ શાસ્ત્રવિહિત આચરણ કરીને શ્રુત જ્ઞાનને સફલ કરવુ (૪) હુ જ ઉત્કૃષ્ટ છુ, વિનીત છુ, એ પ્રમાણે પોતાની આત્મશ્લાઘા-પ્રશંસા કરવી નહિ, એ વિનય સમાધિનો ચોથો ભેદ છે તે વિષયમાં 'પેહેઇ' ઇત્યાદિ ગાથા છે (સૂ ૨)

॥ टीका ॥

विनयसमाधौ=विनयसमाधिविषये विनयसमाधिमधिकृत्येत्यर्थः आत्मार्थिकः=आत्मकल्याणाभिलाषुकः यद्वा–'आयतार्थी' इति छाया, मोक्षार्थी साधुः, हितानुशासनम्=उभयलोकोपकारकोपदेशवचनं शुश्रूषते=श्रोतुमिच्छति, एतेन प्रथमो विनयसमाधिर्दर्शितः, च=पुनः, तत्=श्रवणगोचरीकृतं हितानुशासनं मेक्षते=धातूनामनेकार्थत्वात् सम्यक् प्रतिपद्यते, इदं गुरूपदिष्टं समीचीनमिति कृत्वा. गुरुणा यथा यथाऽऽदिष्टस्तथा तथा कर्तुमुद्यमते इत्यर्थः, अनेन द्वितीयो विनय समाधिर्दर्शितः, पुनः अधितिष्ठति=गुरूपदिष्टं यथाविधि समाचरति, एतेन तृतीयो विनयसमाधिरुक्तः। अथ चतुर्थमाह–विनयसमाधिं प्राप्य तत्कृतेन मानमदेन=अहंकारात्मकेन मदेन च 'अहमस्मि महाविनयी'त्यभिमानेनेत्यर्थः न माद्यति=न चित्तसमुन्नतिं कुरुते ॥२॥

वह श्लोक इस प्रकार—'पेहेइ' इत्यादि।

विनयसमाधिद्वारा जो आत्मकल्याण का अभिलाषी है वह मुनि, आचार्य उपाध्याय आदि से उभय लोकमें उपकारी उपदेश की इच्छा करता है। इससे विनयसमाधि का पहला भेद प्रदर्शित किया। 'गुरुका उपदेश शुद्ध हृदय से ग्रहण करता है अर्थात् कार्यरूपमें परिणत करने के लिए उद्यत होता है' इससे दूसरा भेद दिखाया है। 'गुरुका उपदेश का विधिपूर्वक आचरण करता है'–इससे तीसरा भेद बताया है। और 'विनयसमाधिप्राप्त अहंकार नहीं करता' इससे चौथा भेद प्रगट किया है ॥२॥

તે ગાથા આ પ્રમાણે— 'पेहेइ' ઇત્યાદિ

આત્માર્થી અથવા મોક્ષાર્થી મુનિ, આચાર્ય ઉપાધ્યાય આદિ પાસેથી બન્ને લોકમાં ઉપકારી ઉપદેશની ઇચ્છા કરે છે એ વડે વિનય સમાધિનો પ્રથમ ભેદ પ્રદર્શિત કર્યો છે એટલે કે ગુરુનો ઉપદેશ શુદ્ધ હૃદયથી ગ્રહણ કરે છે અર્થાત્ કાર્યરૂપમાં પરિણત કરવા યોગ્ય સમજે છે એ વાક્યથી બીજો ભેદ બતાવ્યો છે ગુરુનો ઉપદેશ, તેનું વિધિપૂર્વક આચરણ કરે છે એ ત્રીજો ભેદ બતાવ્યો છે અને વિનયસમાધિ પ્રાપ્ત કરીને અહંકાર કરતા નથી એ વાક્યથી ચોથો ભેદ પ્રગટ કર્યો છે (૨)

अथ द्वितीय श्रुतसमाधिं दर्शयति–'चउव्विहा खलु सुयसमाही' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

३ २ १ ४ ५ ७ ६ ८ ९

चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ, तंजहा–सुयं मे भविस्सइत्ति अज्झाइअव्वं भवइ। एगग्गचित्तो भविस्सामित्ति अज्झाइअव्वयं भवइ। अप्पाणं ठावइस्सामित्ति अज्झाइअव्वयं भवइ। ठिओ परं ठावइस्सामित्ति अज्झाइअव्वयं भवइ, चउत्थं पयं

४ ८ १ ३

भवइ। भवइ अ इत्थ सिलोगो ॥ सू० ३॥

॥ छाया ॥

चतुर्विधः खलु श्रुतसमाधिर्भवति, तद्यथा (१) श्रुतं मे भविष्यतीति अध्येतव्यं भवति। (२) एकाग्रचित्तो भविष्यामीति अध्येतव्यं भवति। (३) आत्मानं स्थापयिष्यामीति अध्येतव्यं भवति। (४) स्थितः परं स्थापयिष्यामीति अध्येतव्यं भवति–चतुर्थं पदं भवति। भवति चात्र श्लोकः ॥ सू० ३ ॥

॥ टीका ॥

श्रुतसमाधिः=चतुर्विधविनयसमाधिस्थानान्तर्गतो द्वितीयो विनयसमाधिः खलु=निश्चयेन चतुर्विधः=चतुष्प्रकारो भवति=अस्तीत्यर्थः, तद्यथा–श्रुतं मे भविष्यति, आचाराङ्गादिद्वादशाङ्गं श्रुतं, तन्मम भविष्यति=प्राप्तं भविष्यति, इति हेतो: अध्येतव्यं=पठितव्यम् अभ्यसनीयं भवति=अस्तीत्यर्थः। अनेन–प्रथमः श्रुतसमाधिरुक्तः (१)॥ एकाग्रचित्तो भविष्यामि=स्थिरचित्तो भविष्यामि, नतु विक्षिप्तचित्त इति अध्येतव्यं भवतीति पूर्ववत्, अनेन द्वितीयः श्रुतसमाधिरुक्तः (२)॥

अब दूसरी श्रुतसमाधि कहते हैं—'चउव्विहा' इत्यादि।

विनय समाधि के चार भेदों में से दूसरी श्रुतसमाधि चार प्रकार की है—(१) आचाराङ्ग आदि शास्त्र मुझे प्राप्त होंगे, इसलिए उनका अध्ययन करना चाहिए। (२) मैं

હવે બીજી શ્રુતસમાધિ કહે છે–

'चउव्विहा' ઇત્યાદિ-વિનયસમાધિના ચાર ભેદોમાં જે બીજી શ્રુતસમાધિ તે ચાર પ્રકારની છે (૧) આચારાંગ આદિ શાસ્ત્ર મને પ્રાપ્ત થશે, એટલા માટે તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ (૨) હું એકાગ્ર-સ્થિર ચિત્ત વાળો થઈશ, મારૂં મન

आत्मानं स्थापयिष्यामि=अध्ययन कुर्वन् विज्ञातशास्त्ररहस्यः सन् संयममार्गे आत्मानं स्थिरीकरिष्यामि, इति हेतोः अध्येतव्यं भवतीतिपूर्ववत्। अनेन तृतीयः श्रुतसमाधिरुक्तः (३)॥ अथ चतुर्थमाह–स्थितः=संयममार्गे दृढः सन्, परम्=अन्यं स्थापयिष्यामि=स्थिरीकरिष्यामि, इतिहेतो. अध्येतव्यं भवतीति पूर्ववत्। इदं चतुर्थं पदं=श्रुतसमाधिस्थानं भवति=अस्तीत्यर्थः ४॥ भवति चात्र श्लोक इति=एतद्द्वयनिगदितार्थविषये 'नाण' इत्यादि पद्यमप्यत्र विद्यते इत्यर्थः ॥सू० ३॥

श्लोकमाह–'नाण' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

७ ८ १ ९ १० १२ ११
नाणमेगग्गचित्तो य, ठिओ य ठावई परं॥
२ ३ ४ ६ ५
सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुयसमाहिए ॥३॥

॥ छाया ॥

ज्ञानमेकाग्रचित्तश्च स्थितश्च स्थापयति परम्।
श्रुतानि चाधीत्य, रतः श्रुतसमाधौ ॥३॥

एकाग्र (स्थिर) चित्तवाला होऊंगा, मेरा मन इधर उधर नहीं जायगा, इसलिए शास्त्रों का अभ्यास करना चाहिए। (३) शास्त्रों का अध्ययन करके उन का रहस्य समझ कर आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थापित करूंगा, इसलिए शास्त्रों का अभ्यास करना चाहिए। (४) मैं संयम मार्ग में स्थिर रह कर दूसरों को भी स्थिर करूंगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए। यह श्रुतसमाधि का चौथा पद (भेद) होता है। इसी विषय में श्लोक है ॥सू ३॥

જ્યાં-ત્યાં જશે નહિ, એ માટે શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ (૩) શાસ્ત્રોનું અધ્યયન કરી તેનું રહસ્ય સમજીને આત્માને મોક્ષ માર્ગમાં સ્થાપિત કરીશ, એ માટે શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ (૪) હું સંયમ માર્ગમાં સ્થિર રહીને બીજાને પણ સ્થિર કરીશ, એ માટે અધ્યયન કરવું જોઈએ આ શ્રુતસમાધિનો ચોથો ભેદ છે આ વિષયમાં ગાથા છે (સૂ ૩)

॥ टीका ॥

यः श्रुतानि=आचाराङ्गादीनि अधीत्य=पठित्वा श्रुतसमाधौ श्रुतज्ञानजनिता नन्दविशेषे रतो=निमग्नो भवति, तस्य ज्ञानं भवति (१) स च स्वयमेकाग्रचित्तः= स्थिरचित्तः (२)। तथा स्थितो=दृढव्रतश्च भवति (३)। परम् अन्यं श्रुतमार्गे स्थापयति=स्थिरीकरोति चेत्यर्थः (४) ॥३॥

तृतीयं तपःसमाधिमाह—'चउव्विहा खलु तवसमाही' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ६ ७ ८
चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ, तं जहा—नो इहलोगट्ठयाए तव
९ १० ११ १२ १३ १४ १५
महिट्ठिज्जा। नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा। नो कित्तिवन्नसद्दसिलोगट्ठयाए
१६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २८ २६
तवमहिट्ठिज्जा। नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, चउत्थं पयं भवइ। भवइ य
२५ २७
इत्थ सिलोगो ॥ ४ ॥ मू० ॥

श्रुतसमाधि के विषयमें श्लोक कहते हैं—'नाण' इत्यादि।

(१) जो मुनि, आचाराङ्ग आदि शास्त्रों का अध्ययन करके श्रुतसमाधि में लीन हो जाता है उस सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति होती है। (२) उसका मन एकाग्र (स्थिर) हो जाता है। (३) वह अपनी आत्मा को संयम मार्ग में स्थिर करता है। (४) अन्य भव्य जीवों को धर्म मार्ग में स्थापित करता है ॥३॥

श्रुतसमाधि विषयनी गाथा—'नाणमेगग्गचित्तोय' इत्यादि— (१) जे मुनि आचारांग आदि शास्त्रोनु अध्ययन करीने श्रुतसमाधिमा लीन थई जाय छे, तेने सम्यग्ज्ञाननी प्राप्ति थाय छे (२) तेनु मन एकाग्र-स्थिर थई जाय छे (३) ते पोताना आत्माने संयम मार्गमा स्थिर करे छे (४) अने बीजा भव्य जीवोने धर्म मार्गमा स्थापित करे छे (३)

॥ छाया ॥

चतुर्विधः खलु तपःसमाधिर्भवति। तद्यथा—नेह लोकार्थताये तपोऽधितिष्ठेत्। न परलोकार्थताये तपोऽधितिष्ठेत्। नो कीर्ति–वर्ण–शब्द–श्लोकार्थताये तपोऽधितिष्ठेत्। नान्यत्र निर्जरार्थतायाः तपोऽधितिष्ठेत्, चतुर्थं पदं भवति। भवति चात्र श्लोकः ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

तपःसमाधिः= विनयसमाधेस्तृतीयो भेदः खलु=निश्चयेन चतुर्विधो भवतीत्यन्वयः। तद्यथा—'नेहलोकार्थताये' इत्यादिषु सर्वत्र स्वार्थे तल्। इह लोकार्थताये=लब्ध्यादिप्राप्त्यर्थं तपः=अनशनादिलक्षणं, नाधितिष्ठेत्=न कुर्यात्, अनेन प्रथमस्तपःसमाधिरुक्तः। परलोकार्थताये=भवान्तरे देवादिसुखप्राप्त्यर्थं तपो न कुर्यादिति द्वितीयस्तपःसमाधिः। कीर्ति='अहो अयं पुण्यभागी'–त्यादिसर्वव्यापिसाधुवादः, वर्णः=एकदिग्व्यापिसाधुवादः, शब्दः=अर्धदिग्व्यापिसाधुवादः, श्लोकः=तत्रैव गुणवर्णनम्, एवं च कीर्त्यादिकामनया तपो नाधितिष्ठेत्=न कुर्यात्, इति तृतीयस्तपःसमाधिः। अथ चतुर्थमाह–'नान्यत्रे' त्यादि। निर्जरार्थताया अन्यत्र=निर्जरानिमित्तं मुक्त्वा अन्यनिमित्तमधिकृत्य तपो नाधिति-

---

तीसरी तपसमाधि कहते हैं—'चउव्विहा' इत्यादि।

विनयसमाधि का तीसरा भेद तपसमाधि है। उसके चार भेद हैं—(१) इहलोक सम्बन्धी लब्धि आदि की प्राप्ति की इच्छा से तप न करे। (२) परलोक में स्वर्ग आदि के काम भोगों की वाञ्छा से तप न करे। (३) 'अहो! यह बड़ा पुण्यात्मा है' इस प्रकार सर्वत्र फैलने वाले यश को कीर्ति कहते हैं, एक दिशा में फैले हुए यश को वर्ण कहते हैं; आधी दिशा में फैले हुए यश को शब्द कहते हैं तथा जहां यह नहीं [illegible]

'चउव्विहा' इत्यादि–विनयसमाधिनो त्रीजो भेद तपसमाधि छे [illegible] भेद छे (१) आ लोक सम्बन्धी लब्धि वगेरे प्राप्तिनी इच्छाथी तप करे नहि. (२) परलोकना स्वर्ग आदिना कामभोगोनी वाञ्छनाथी तप करे नहि (३) अहो! आ महान् पुण्यात्मा छे, आ प्रमाणे सर्वत्र [illegible] कीर्ति कहे छे, एक दिशामां फेलायेला यशने वर्ण कहे छे, अर्धी दिशामां फेलायेला यशने शब्द कहे छे, तथा [illegible]

त्वेन, इति चतुर्थं पदं भवति, इद चतुर्थं स्थानं तपःसमाधेर्भवतीत्यर्थः। 'भवति चात्रे'-ति अत्रार्थे श्लोकः='विविहगुणे'-त्यादि पद्यं च भवति=अस्तीत्यर्थः ॥सू०४॥

श्लोकमाह–'विविहगुण' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

विविहगुणतवोरए, निच्चं भवइ निरासए निज्जरट्टिए।
तवसा धुणइ पुराणपावगं, जुत्तो सया तवसमाहिए ॥४॥

॥ छाया ॥

विविधगुणतपोरतः, नित्यं भवति निराशकः निर्जरार्थिकः।
तपसा धुनोति पुराणपापकं, युक्तः सदा तपःसमाधौ ॥४॥

॥ टीका ॥

तपःसमाधौ=तपःसमाधिविषये सदा=नित्यं युक्तः=मनोवाक्काययोगवान् साधुः विविधगुणतपोरतः=विविधाः=रत्नावल्यादिरूपा अनेकविधाः शास्त्रोक्ताः गुणा यस्मिन् तद् विविधगुणं, तच्च तत्तप इति विविधगुणतपः, तस्मिन् रतः= संलग्नो भवति न तु लब्ध्याद्यर्थं तपः करोतीति भावः १। नित्यं=सदा निराशकः=

कहते हैं। इन सब की अभिलाषा से तप न करे। (४) केवल कर्मों की निर्जरा के अभिप्राय के सिवाय अन्य निमित्त से तप नहीं करे। इसी विषय में श्लोक है ॥४॥

श्लोक कहते हैं—'विविहगुण' इत्यादि।

तपसमाधि में निरन्तर मन वचन काया के योग को लगाने वाला मुनि लब्धि आदि की वांछा को छोड़कर रत्नावली आदि शास्त्रोक्त अनेक गुण वाले तपमें तत्पर रहता है १।

અભિલાષાથી તપ કરે નહિ (૪) કેવલ કર્મોની નિર્જરા કરવાના અભિપ્રાયથી જ તપ કરે અન્ય નિમિત્તથી કરે નહિ આ વિષયમા ગાથા છે (૮)

'વિવિહ ગુણ ઇત્યાદિ-તપસમાધિમા મન વચન કાયાના યોગને લગાવવાવાળા સાધુ લબ્ધિ આદિની વાંછાને મૂકીને રત્નાવલી કનકાવલી આદિ શાસ્ત્રોક્ત અનેક ગુણવાળા તપમા લીન રહે છે (૧) પરલોક સબંધી દેવાદિ સુખોની આશા કરવા

पारत्रिकदेवादिसुखाशारहितो भवति। 'भवति' इत्यस्य देहलीदीपकन्यायेन पूर्वम् अग्रे च सम्बन्धः २। निर्जरार्थिकः=कर्मनिर्जरार्थी भवति न तु कीर्तिवर्ण-शब्दश्लोकार्थीति भावः ३। स तपसा=तपश्चर्यया पुराणपापकम्=अनेकभवोपार्जितं पापराशिं धुनोति=भक्षपयति कर्मनिर्जरार्थमेव तपः करोतीति भावः ४। तथा च तपःसमाधौ सदा युक्त एव विषयवितृष्णो निर्जरार्थी तपश्चरणेन पुरातनपापमपोहितुं प्रभवति, न तु कदाचित् कदाचित् कीर्त्यादिकामुकस्तपश्चरन्नपीत्याशयः ॥४॥

अथाचारसमाधिं प्रदर्शयति–'चउव्विहा खलु आयार०' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

चउव्विहा खलु आयारसमाही भवइ–तंजहा–नो इहलोगट्ठयाए आयार-महिट्ठिज्जा। नो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा। नो कित्तिवन्नसद्दसिलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा। नन्नत्थ आरहंतेहिं हेउहिं आयारमहिट्ठिज्जा, चउत्थं पय भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो ॥५॥

परलोक सम्बन्धी देवादि सुखों की आशा नहीं रखता है २। कीर्ति वर्ण शब्द श्लोक–की आशा को अर्थात् लोक में यश फैलाने की वाछा को त्यागकर केवल कर्मोंका निर्जरा चाहने वाला हाता है ३। वह तपस्या से अनेक भवोपार्जित पापराशिको खपाता है ४। तात्पर्य यह कि–तपसमाधि में निरन्तर सलग्न विषयतृष्णा रहित कर्मनिर्जराका अभिलाषी मुनि ही तपश्चर्या से पुराने अनेक भवों के पापो को खपाने में समर्थ होता हे किन्तु कभी कभी कीर्त्ति आदिकी इच्छा से तप करने वाला कर्मो को नहीं खपा सकता ॥४॥

નથી (૨) કીર્તિ વર્ણ શબ્દ શ્લોકની આશાને અર્થાત્ લોકમા જશ ફેલાવવાની ઇચ્છાને મૂકી કેવળ કર્મોની નિર્જરાને ઇચ્છે છે (૩) તે તપશ્ચર્યાથી અનેક ભવોની પાપ રાશિને ખપાવે (૪) તાત્પર્ય એ છે કે તપસમાધિમા સદા સલગ્ન, વિષય તૃષ્ણા રહિત, કર્મનિર્જરાના અભિલાષી મુનિજ તપ વડે અનેક ભવોના પાપોને ખપાવવામા સમર્થ હોય છે પરન્તુ કોઇ કોઇ વાર કીર્તિઆદિની ઇચ્છાથી તપ કરનાર કર્મોને નહીં ખપાવી શકે (૪)

॥ छाया ॥

चतुर्विधः खलु आचारसमाधिर्भवति । तद्यथा–नेहलोकार्थमाचारमधितिष्ठेत् । न परलोकार्थमाचारमधितिष्ठेत् । न कीर्तिवर्णशब्दश्लोकार्थमाचारमधितिष्ठेत् । नान्यत्र आर्हतेभ्यो हेतुभ्य आचारमधितिष्ठेत् चतुर्थं पदं भवति। भवति चात्र श्लोकः ॥ ५ ॥

॥ टीका ॥

आचारसमाधिः=विनयसमाधिभेदचतुष्टयघटकश्चतुर्थः खलु चतुर्विधः= चतुष्प्रकारो भवति । तद्यथा–नेहलोकार्थमित्यादि, अयं प्रथमः । न परलोकार्थमित्यादि, अयं द्वितीयः। न कीर्त्याद्यर्थमित्यादि, अयं तृतीयः। चतुर्थमाचारसमाधिमाह–आर्हतेभ्यः=आर्हतसिद्धान्तानुयायिभ्यो हेतुभ्यः अन्यत्र=आर्हतसिद्धान्तोक्तहेतून् मुक्त्वाऽन्यहेतुमाश्रित्येत्यर्थः, आचार=क्रियाकलापं नाऽधितिष्ठेत्=नाऽऽचरेत्, जिनोक्तत्त्वगममिमुखीकृत्यैव संयमं पालयेदिति भावः । इदमेव चतुर्थं पदम्= आचारसमाधेस्तुरीयं स्थानं भवति= अस्तीत्यर्थः। अत्र आचारसमाधिविषये श्लोकः– ' जिणवयण ' इत्यादिरूपं पद्यं च भवति = अस्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥

अब चौथी आचारसमाधि कहते हैं—'चउव्विहा' इत्यादि ।

विनयसमाधि का चौथा भेद आचारसमाधि है। उसके भी चार भेद हैं–(१) इस लोक में कीर्ति आदि के लिए आचार का पालन न करे। (२) परलोक के विषय सुखों की अभिलाषा से आचार का पालन न करे। (३) कीर्ति आदि की कामना करके आचार का पालन न करे। (४) आगम में प्रतिपादित प्रयोजन के लिए ही मूलोत्तर गुण रूप आचार का पालन करे। अन्य निमित्त से न करे। यही चौथा पद आचारसमाधि का चौथा भेद है। इस विषय में श्लोक है—'जिणवयण' इत्यादि ॥५॥

હવે ચોથી આચારસમાધિ કહે છે –'ચઉવ્વિહા' ઇત્યાદિ-

વિનય સમાધિનો ચોથો ભેદ તે આચારસમાધિ છે અને તેના પણ ચાર ભેદ છે (૧) આ લોકની કીર્તિ મેળવવાની આશાથી આચારનું પાલન કરે નહિ, (૨) પરલોકના વિષય સુખો મેળવવાની અભિલાષાથી આચારનું પાલન કરે નહિ, (૪) આગમમાં પ્રતિપાદિત પ્રયોજન માટે જ મૂલોત્તરગુણરૂપ આચારનું પાલન કરે બીજા નિમિત્તથી કરે નહિ આ ચોથું પદ તે આચારસમાધિનો ચોથો ભેદ છે આ વિષયમાં ગાથા છે –'જિણવયણ ઇત્યાદિ (૫)

श्लोकमाह—' जिणवयण ' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

जिणवयणरए अतिंतिणे, पडिपुन्नाययमाययट्ठिए ।
आयारसमाहिसंवुडे, भवइ य दंते भावसंधए ॥ ५ ॥

॥ छाया ॥

जिनवचनरतः अतिन्तिणः, प्रतिपूर्णः आयतमायतार्थिकः
आचारसमाधिसंवृतः, भवति च दान्तो भावसन्धकः ॥५॥

॥ टीका ॥

आचारसमाधिसंवृत=आचारे समाधिः आचारसमाधिः, तेन संवृतः=आचारसमाधिना निरुद्धास्रवद्वारः साधुः जिनवचनरतः=प्रवचनतत्परः, अतिन्तिणः=भिक्षाप्रभृतेरलाभेऽपि किञ्चिदप्यभाषी। यद्वा कटुवचनैः केनाऽपि कथितः सन् बडबड-शब्देन वदति स तिन्तिणः, न तिन्तिणोऽतिन्तिण । तथा प्रतिपूर्ण सूत्रादिना । आयतमायतार्थिकः=अत्यन्त मोक्षाभिलाषी । दान्तो=जितेन्द्रियः । भावसन्धको=गुर्वाद्यभिप्रायवर्ती विनयीत्यर्थः भवति=सपद्यते । आचारसमाधि

श्लोक कहते हैं--'जिणवयणरए' इत्यादि ।

आचारसमाधि के द्वारा आस्रव के द्वार को रोकने वाला साधु, प्रवचन में लीन भिक्षा आदि का लाभ न होने पर भी तन तनाट शब्द न करने वाला, अथवा किसी ने कटुक वाक्य कह भी दिया हो तो पीछा कुछ भी नही बोलने वाला, सूत्रादि से परिपूर्ण और विनयी होता है । तात्पर्य यह कि आचारसमाधि में तत्पर मुनि, अनेक गुण प्राप्त कर लेता है ।

'जिण' इत्यादि आचारसमाधि द्वारा आश्रव द्वारने रोकनारा साधु प्रवचनमां लीन होय छे अने भिक्षा वगेरेनो लाभ न मळे तो पण क्रोधवाळो शब्द बोलता नथी अथवा कोइए कडवा वचनो कह्या होय तो पण कोइवार तेना पर रोष नहि करवावाळा सूत्रोना ज्ञानथी परिपूर्ण अने विनयी होय छे तात्पर्य ए छे के - आचार-समाधिमां तत्पर मुनि अनेक गुण प्राप्त करी लीए छे

तत्पराणामेते गुणाः संपद्यन्ते इति भावः । ' जिणवयणरए ' इत्यनेन वीतरागवचनव्यतिरिक्तस्वीकरणम् आत्महिताय न भवतीति सूचितम् । ' अतितिणे '– इतिपदेन गाम्भीर्यवत्त्व, जिनवचनाऽरघुत्वं च व्यञ्जितम् ।

' पडिपुन्न '–इत्यनेन सम्यग्ज्ञानक्रियावत्त्वम्, ' आययट्ठिए ' इत्यनेन पौद्गलिकसुखानभिलाषित्व, ' दन्ते '–इत्यनेन इन्द्रियदमनाभावे आचारपालनाऽसामर्थ्यम्, ' भावसन्धए '– इत्यनेन च गुरुतात्पर्यप्रतिकूलस्यात्मकल्याणं न भवतीत्यावेदितम् । पूर्वप्रतिपादितश्चतुर्थ आचारसमाधिर्विधिरूपतया सर्वानर्थनिवारकत्वेन सकलसमीहितसाधकत्वेन च–अभ्यर्हितत्वात् प्रथमं 'जिणवयणरए' इतिपदेन श्लोके प्रदर्शितः । अन्ये त्रयो भेदास्तु कामनानिषेधपराः ' अतितिणे ' इत्यादिनाऽनेकपदेन पद्यगतेन प्रतिपादिताः, इति ध्येयम् ॥ ५

"जिणवयणरए" पदसे यह प्रगट किया है कि–वीतराग के सिवाय अन्य के वचनों से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता " अतितिणे" पदसे सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र "आययट्ठिए" पदसे बिना इन्द्रियों का दमन किये आचार पालन का असामर्थ्य, और "भावसधए" पदसे गुरुके अभिप्राय से विमुख व्यक्तिका आत्मकल्याण न होना प्रगट किया है । पहले कहा हुई आचारसमाधि, विधिरूपसे समस्त अनर्थों का निवारण करनेवाली, तथा सर्व मनोरथों को साधने वाली है इसलिए प्रधानीय होने के कारण 'जिणवयणरए' पदसे पहले कहा गई है। किसी प्रकार की कामना के बिना किये जाने वाले तीन भेद 'अतितिणे' इत्यादि अनेक पदों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं ॥५॥

'जिणवयणरए' पदथी ओ प्रगट कर्युं छे के –वीतरागना वचनो विना बीजाना वचनोथी आत्मानुं कल्याण थई शकतुं नथी 'अतिंतिणे' पदथी सम्यग्ज्ञान अने सम्यक् चारित्र 'आययट्ठिए' पदथी इन्द्रियोना दमन विना आचार पालनमां असमर्थता अने भावसधए' पदथी गुरुना अभिप्रायथी विमुख व्यक्तिनुं आत्म कल्याण थतुं नथी ओ प्रगट कर्युं छे प्रथम कहेली आचारसमाधि, विधिरूपथी समस्त अनर्थोनुं निवारण करवा वाळी, तथा सर्व मनोरथोने सिद्ध करवा वाळी, छे, ओ माटे श्रेष्ठ होवाना कारणे 'जिणवयणरए' पदथी प्रथम कहेवामां आवी छे कोई पण प्रकारनी कामना विना करवामां आवता त्रण भेद 'अतिंतिणे' इत्यादि अनेक पदो द्वारा प्रतिपादित करवामां आव्या छे (५)

सर्वसमाधिफलं प्रदर्शयति—' अभिगम ' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

६ ४ १ १ २
अभिगम चउरो समाहिओ, सुविसुद्धो सुसमाहिअप्पओ ।
८ ९ १२ १० १५ ११ ३ १४ १३ ७
विउल हिअ सुहावहं पुणो, कुव्वइ अ सो पय खेममप्पणो ॥६॥

॥ छाया ॥

अभिगम्य चतुरः समाधीन, सुविशुद्धः सुसमाहितात्मा ।
विपुल हित सुखावह पुनः, करोति च स पदं क्षेममात्मन. ॥६॥

॥ टीका ॥

सुविशुद्धः=मनसा वचनेन कायेन च परिपूतः सुसमाहितात्मा=सप्तदशप्रकारे संयमे स्थिरचित्तः स साधुः चतुर' समाधीन=विनयसमाधि–श्रुतसमाधि–तप'–समाध्या–चारसमाधीन् अभिगम्य=विदित्वा आत्मन.=स्वस्य, विपुल=महाफल-जनकत्वान्महत्, हितम्=आनन्ददायकं, पुन. सुखावह=परमशर्मजनक, क्षेमं=सकल-कर्मविघ्नशून्य पदं=स्थानं मोक्षरूपं करोति=साधयति ।

' सुविसुद्धो '–इत्यनेन मुने रागद्वेषपरिनिर्मुक्तत्वं, ' सुसमाहिअप्पआ' इत्यनेन अखण्डितसमाधिमण्डितत्वं सूचितम् ।

अब सब समाधियोका फल दिखातेहैं–'अभिगम' इत्यादि । मन वचन काय स शुध्य सत्तरह प्रकार के स यम मे मनको स्थिर रखनेवाला साधु, विनयसमाधि, श्रुतसमाधि, तपसमाधि और आचारसमाधि को जानकर महान् फल का जनक होने से महान, हितकारी, सुखदायक, तथा सकल कर्मो से रहित मोक्षरूप पदको प्राप्त करता है अथात् अपनी आत्माको मुक्त बना लेता है । 'सुविसुद्धो पदसे मुनिकी रागद्वेषरहित वृत्ति,' सुसमाहि-

---

હવે સર્વ સમાધિઓના ફળને બતાવે છે – 'अभिगम' ઇત્યાદિ મન, વચન અને કાયાથી શુદ્ધ સત્તર પ્રકારના સંયમમાં મનને સ્થિર રાખવા વાળા સાધુ, વિનયસમાધિ, શ્રુતસમાધિ, તપસમાધિ અને આચારસમાધિને જાણી મહાન્ ફળને ઉત્પન્ન કરનાર હોવાથી મહાહિતકારી, સુખદાયક, તથા સકલ કર્મોથી રહિત મોક્ષરૂપ પદને પ્રાપ્ત કરે છે અર્થાત્ પોતાના આત્માને મુક્ત બનાવે છે. 'सुविसुद्धो' પદથી મુનિની રાગ-દ્વેષ રહિત વૃત્તિ 'सुसमाहिअप्पआ' પદથી અખંડ

'विउल' इति विशेषणेन मोक्षस्याऽनन्तचतुष्टयवत्त्वं, 'हिय'-मित्यनेन मुमुक्षुणामभिलषणीयत्व 'सुहावहं' इत्यनेन दुःखोच्छेदस्वरूपतम्। 'खेमं'-इत्यनेन सकलोपाधिरहितत्वमावेदितम् ॥ ६ ॥

एतदेव स्पष्टीकरोति-'जाइमरणाओ' इत्यादि ।

॥ सूत्रम् ॥

१ ४ ६ ३ ६ ५
जाइमरणाओ मुचइ, इत्थथ च चएइ सव्वसो ।
९ ७ १० ८ १४ ११ १२ १३ १५
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए ॥ त्तिबेमि ॥७॥

॥ छाया ॥

जातिमरणान्मुच्यते, इत्थंस्थं च त्यजति सर्वशः ।
सिद्धो वा भवति शाश्वतो, देवो वा अल्परजा महर्धिकः॥ इतिब्रवीमि ॥७॥

॥ टीका ॥

असौ विनयसमाधिसमाराधकः साधुः, जातिमरणात्=जातिश्च मरणं चेति समाहारद्वन्द्वः, तस्मात्=तथोक्तात् जन्मबन्धान्मृत्युबन्धाच्च मुच्यते=मुक्तो भवति। च= पुनः, इत्थंस्थं=इत्थम्=अनेन प्रकारचतुष्टयेन तिष्ठतीति इत्थंस्थ तत्, नरनारकादि-

---

अप्पया' से अगद समाधि सूचित की है 'विउल' विशेषण से मोक्षमें अनन्तचतुष्टय, 'हिय' से मोक्षार्थियोंकी अभिलषणीयता 'सुहावह' से दुःखोंका सर्वथा नाश, 'खेम' से सब उपद्रवोंसे रहितता प्रगट की है ॥६॥

'जाइमरणाउ' इत्यादि । विनयसमाधि की आराधना करनेवाला साधु, जन्म और मरण के बंधन से मुक्त होजाता है । नर, नारक आदि कर्मजन्य पर्यायोंका त्याग देता है

સમાધિની સૂચના કરવામાં આવી છે 'વિઉલ' વિશેષણથી મોક્ષમાં અનન્તચતુષ્ટય, 'હિય' પદથી મોક્ષાર્થિઓનું અભિલાષાપણું, 'સુહાવહ' પદથી દુઃખોનો સર્વથા નાશ 'ખેમ' પદથી સકલ ઉપદ્રવોથી રહિતપણું પ્રગટ કર્યું છે (૬)

'જાઇમરણાઉ' ઇત્યાદિ વિનયસમાધિની આરાધના કરવાવાળા સાધુ, જન્મ અને મરણના બંધનથી મુક્ત થઈ જાય છે નરનારકી આદિ કર્મજન્ય પર્યાયોને ત્યજી દે છે અને કર્મોનો નાશ કરી, પુનરાગમનરહિત મોક્ષને પ્રાપ્ત થઈ

नामगोत्र वर्णसंस्थानादि, सर्वशः=सर्वथा, त्यजति=मुञ्चति। वा=निश्चयेन, शाश्वतः= पुनरागमनवर्जितः, सिद्धो भवति, सकलकर्मक्षयादिति भावः। वा अथवा अवशिष्टे सति कर्मणि, अल्परजाः=अवशिष्टाल्पकर्ममलः सन् मृत्वा महर्द्धिकः अनुत्तरोऽनुत्तर-वैमानिकादिरित्यर्थः देवो भवति। इतिब्रवीमीति पूर्ववत्।।७।।

इति विनयसमाधिनामनवमाध्ययने चतुर्थ उद्देशः समाप्त ॥

इति श्री विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापकप्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–शाहू
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित कोल्हापुर-
राजगुरु बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलाल–व्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्याया व्याख्याया-
नवम विनयसमाधिनामकमध्ययन
समाप्तम् ॥९॥

★

और कर्मों के नाश पुनरागमनरहित मोक्षको प्राप्त होकर सिद्ध हो जाता है, अथवा कुछ कर्म शेष रह जाने पर उपशान्तकामविकार वाला ऋद्धिधारी अनुत्तर वैमानिक देव होता है ॥७॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं–हे जम्बू! भगवान्से मैंने जैसा सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं ॥

इति विनयसमाधिनामक नववाँ अध्ययनका चौथा उद्देश समाप्त हुआ ॥४॥

। इति नववा अध्ययन समाप्त।

★

સિદ્ધ થઇ જાય છે અથવા થેડા કર્મ શેષ રહી જતા ઉપશાન્તકામવિકાર વાળા ઋદ્ધિધારી અનુત્તર વૈમાનિક દેવ થાય છે (૭)

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે–હે જમ્બૂ! ભગવાન પાસેથી મેં જેવુ સાભળ્યુ તે તેવુ જ તને કહુ છે

ઇતિ વિનયસમાધિનામક નવમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત થયો

ઇતિ નવમુ અધ્યયન સમાપ્ત થયુ

॥ अथ दशमाध्ययनम् ॥

॥ आचारमणिमञ्जूषा ॥

नवमाध्ययने विनयसमाधिर्वर्णितः चतुर्विधविनयसमाधियुक्त एव भिक्षु-शब्दमतिपाद्यो भवतीत्याह, अथवा–

प्रागुक्तनवमाध्ययनप्रतिपादिताऽऽचारनिचयानुष्ठाननिरत एव भिक्षुपद-व्यवहार्यतामृच्छतीत्याह–'निक्खम्म' इत्यादि,

॥ मूलम् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
निक्खम्ममाणाइ अ बुद्धवयणे, निच्चं चित्तसमाहिओ हविज्जा।
१० ११ १२ ८ १३ १४ १५ १६ १ १७ १८
इत्थीण वसं न आवि गच्छे, वंतं नो पडिआयइ जे स भिक्खू॥१॥

॥ अथ दसवां अध्ययन ॥

नवमें अध्ययन में विनयसमाधि का वर्णन किया, जो विनयसमाधिवान् होते हैं वे ही भिक्षु कहलाते हैं, अथवा–

नवों अध्ययनों मे प्रतिपादित आचार के पालन करने में तत्पर ही भिक्षु कहलाता है, इसलिए इस दशवें अध्ययन में भिक्षु के गुण बताते हैं—'निक्खम्म' इत्यादि।

दशमुं अध्ययन

नवमा अध्ययनमां विनयसमाधिनुं वर्णन कर्युं जे विनयसमाधिवाळा बने छे तेज भिक्षु कहेवाय छे अथवा–

नवे अध्ययनोमां प्रतिपादित आचारनुं पालन करवामां तत्पर भिक्षु कहेवाय छे, तेथी आ दशमा अध्ययनमां भिक्षुना गुणो बतावे छे – निक्खम्म. इत्यादि

॥ छाया ॥

निष्क्रम्य आज्ञया बुद्धवचने, नित्यं चित्तसमाहितो भवति ।
स्त्रीणां वशं न चापि गच्छति, वान्तं न प्रत्यादयाति यः स भिक्षुः॥१॥

॥ टीका ॥

यः साधुः, आज्ञया=तीर्थङ्करगणधरादिनिर्देशेन प्रवचनोपदेशेनेत्यर्थः निष्क्रम्य=प्रव्रज्य, बुद्धवचने सर्वज्ञवचसि जिनागमे इत्यर्थः, नित्यं=निरन्तरं, चित्तसमाहितः=प्रसन्नचेतसा प्रवचनपरायणो भवति, अपिच स्त्रीणां=वशम्=अधीनतां, न गच्छति=न याति। तथा वान्तं=परित्यक्तं विषयरसं, न प्रत्याद-दाति=न पुनः सेवते स भिक्षुः 'भिक्षु'-शब्दप्रतिपाद्यो भवति ॥१॥

॥ मूलम् ॥

२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११
पुढविं न खणे न खणावए, सीओदगं न पिए न पियावए।
१६ १३ १४ १२ १५ १७ १८ १९ २० १ २१ २२
अगणिं सत्थं जहा सुनिसिअं, तं न जले न जलावए जे स भिक्खू ॥२॥

॥ छाया ॥

पृथिवीं न खनति न खानयति, शीतोदकं न पिबति न पाययति।
अग्निं शस्त्रं यथा सुनिशितं, तं न ज्वलयति न ज्वालयति यः स भिक्षुः ॥२॥

जो, तीर्थङ्करों और गणधरों के आदेश के अनुसार घर छोड कर दीक्षा ग्रहण करके सर्वज्ञकथित जिनागम में निरन्तर मन लगाते हैं, प्रवचन के अनुसार प्रवृत्ति करते हैं, जो स्त्री के वशमें नहीं रहते तथा त्यागे हुए विषय भोगों का फिर सेवन नहीं करते वे भिक्षु कहलाने योग्य होते हैं ॥१॥

જે, તીર્થંકરો અને ગણધરોના આદેશને અનુસાર ઘર છોડીને દીક્ષા ગ્રહણ કરીને સર્વજ્ઞે કહેલા જિનાગમમાં નિરંતર મન લગાડે છે, પ્રવચનને અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરે છે, સ્ત્રીને વશ રહેતા નથી તથા ત્યાગેલા વિષયભોગોનું ફરી સેવન કરતા નથી તેઓ ભિક્ષુ કહેવાવાને યોગ્ય બને છે (૧)

॥ टीका ॥

'पुढविं' इत्यादि।

यः साधुः पृथिवीं=भूमिं न खनति=न विदारयति स्वयम्, न खानयति परेण, खनन्तमन्यं नानुजानाति इदं च सर्वत्र योज्यम्, तथा शीतोदकं सचित्त-जलं न पिबति, न पाययति परेण, तथा सुनिशितं=सम्यक्तीक्ष्णीकृतं शस्त्रं यथा= शस्त्रमिव शस्त्रसदृशमित्यर्थः तं=सुतीक्ष्णशस्त्रसदृशत्वेन विश्रुतम् अग्निं च न ज्वलयति न च परेण ज्वालयति स भिक्षुः ॥२॥

मूलम् ॥

२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११
अनिलेण न वीए न वीयावए, हरियाणि न छिंदे न छिंदावए।
१२ १३ १४ १५ १६ १ १७ १८
बीआणि सया विवज्जयंतो, सचित्तं नाहारए जे स भिक्खू ॥३॥

॥ छाया ॥

अनिलेन न वीजयति, न वीजयति हरितानि न छिनत्ति न छेदयति।
बीजानि सदा विवर्जयन् सचित्तं नाहारयति यः स भिक्षुः ॥३॥

'पुढविं' इत्यादि। जो स्वयं भूमिको नहीं खोदते, दूसरे से नहीं खुदवाते, खोदते हुए को भला नहीं जानते, स्वयं सचित्त जल नहीं पीते, दूसरे से नहीं पिलाते, पीते हुए को भला नहीं जानते, तीक्ष्ण शस्त्र के समान अग्निको स्वयं नहीं जलाते, दूसरे से नहीं जलवाते और न जलाते हुए को भला जानते हैं वे भिक्षु हैं ॥२॥

पुढविं० ઇત્યાદિ જેઓ પોતે ભૂમિને ખોદતા નથી અને બીજા પાસે ખોદાવતા નથી, ખોદનારને ભલો જાણતા નથી, પોતે સચિત્ત જળ પીતા નથી, બીજાને પીવડાવતા નથી, પીનારને ભલો જાણતા નથી, તીક્ષ્ણ શસ્ત્રની સમાન અગ્નિને પોતે બાળતા નથી, બીજા પાસે બળાવતા નથી, અને બાળનારને ભલો જાણતા નથી, તેઓ ભિક્ષુ છે (૨)

॥ टीका ॥

'अनिलेण' इत्यादि।

य साधुः, अनिलेन=अनिलोत्पादकेन=पवनोदीरकेण वस्त्रव्यजनादिना न वीजयति स्वयम्, तथा परेण न वीजयति, न वाऽन्य वीजयन्तमनुमोदयति, इद च सर्वत्र योज्यम्। तथा हरितानि=हरितकायान तरुलतागुल्मादीन् न छिनत्ति, नापि परेण छेदयति, तथा वीजानि=शालिगोधूमादीनि सदा निरन्तर विवर्जयन् सचित्ताना तेषा सघट्टनमर्दनादिकमकुर्वन्, सचित्त शस्त्रापरिणतमन्नादिकं नाहारयति=न भुङ्क्ते न भोजयते च स भिक्षुः ॥३॥

औद्देशिकाद्याहारस्य दोषानाह 'वहणं' इत्यादि,

॥ मूलम् ॥

३ २ ४ १

वहण तसथावराण होइ, पुढवीतणकट्ठनिस्सिआण ।

५ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ६ १५ १६

तम्हा उद्देशिअ न भुंजे, नो वि पए न पयावए जे स भिक्खू ॥४॥

'अनिलेण' इत्यादि। जो वायुकाय का उत्पन्न करने वाले वस्त्र, अथवा व्यजन (पखे) से स्वय वायु को उत्पन्न नहीं करते, दूसरे से उत्पन्न नहीं कराते और उत्पन्न करते हुए को भला नहीं जानते, तथा तरु लता आदि वनस्पतिकायको स्वय नहीं छेदते, दूसरे से छेदन नहीं कराते, और छेदन करते हुए को भला नहीं जानते, एव शालि गेहूँ आदि बीजों के संघटका सदा त्याग करते हुए सचित्त आहार नहीं करते, दूसरोंसे सचित्त आहार नहीं कराते, और सचित्त आहार करने वालेको भला नहीं जानते वे भिक्षु कहलाने योग्य हैं ॥३॥

અનિલેણ૦ ઇત્યાદિ જેઓ વાયુકાયની ઉત્પત્તિ કરનાર વસ્ત્ર યા વીંજ ણાથી પોતે વાયુને ઉત્પન્ન કરતા નથી, બીજા પાસે ઉત્પન્ન કરાવતા નથી અને ઉત્પન્ન કરનારને ભલો જાણતા નથી, તથા તરૂ લતા આદિ વનસ્પતિકાયને પોતે છેદતા નથી, બીજા પાસે છેદાવતા નથી અને છેદનારને ભલો જાણતા નથી, તેમજ શાલિ, ઘઉં આદિ બીજોના સંઘટ્ટનનો સદા ત્યાગ કરતા સચિત્ત આહાર કરતા નથી, બીજા પાસે સચિત્ત આહાર કરાવતા નથી અને સચિત્ત આહાર કરનારને ભલો જાણતા નથી તેઓ ભિક્ષુ કહેવાને યોગ્ય છે (૩)

॥ छाया ॥

वधनं त्रसस्थावराणां भवति, पृथिवीतृणकाष्ठनिश्रितानाम्।
तस्मादौद्देशिकं न भुङ्क्ते, नापि पचति न पाचयति य स भिक्षुः॥४॥

॥ टीका ॥

यतः औद्देशिकादौ पृथिवीतृणकाष्ठनिश्रितानां = भूमितृणकाष्ठसंस्थितानां त्रसस्थावराणां-त्रसानां द्वीन्द्रियादीनां स्थावराणां=पृथिव्यादीकेन्द्रियाणां वधनं-वधो = घातो भवति, तस्माद् हेतोः औद्देशिकं = साधुमुद्दिश्य कृतमाहारं न भुङ्क्ते, तथा न भोजयते, नापि भुञ्जानं परमनुमोदयति, तथा न किमप्यन्नादिकं पचति, न पाचयति च, पचमानमन्यं वा नानुजानाति स भिक्षुः ॥४॥

॥ मूलम् ॥

रोइअ नायपुत्तवयणे, अत्तसमे मन्निज्ज छप्पि काए।
पंच य फासे महव्वयाइं, पंचासवसंवरे जे स भिक्खू ॥५॥

औद्देशिक आदि आहार के दोष बताते हैं—'वहण' इत्यादि।

औद्देशिक आदि आहार करने में पृथिवी इन्धन और लकड़ी आदि को आश्रय करके स्थित त्रस तथा स्थावर प्राणियोंका घात होता है इसलिए जो औद्देशिक आहार को नहीं करते, दूसरों से नहीं कराते तथा करते हुए को भला नहीं जानते, एवं अन्नादिको स्वयं नहीं पकाते, दूसरों से नहीं पकवाते, पकानेवालेको भला नहीं जानते, वे भिक्षु कहलाने योग्य हैं ॥४॥

ઔદ્દેશિક આદિ આહારના દોષ બતાવે છે वहण० ઇત્યાદિ

ઔદ્દેશિક આદિ આહાર કરવાથી, પૃથિવી ઈંધન અને લાકડાં આદિનો આશ્રય કરીને રહેલા ત્રસ તથા સ્થાવર પ્રાણીઓનો ઘાત થાય છે, તેથી જેઓ ઔદ્દેશિક આહારનો ભોગ નથી કરતા, બીજા પાસે નથી કરાવતા તથા કરનારને ભલો નથી જાણતા, તેમજ અન્નાદિને પોતે પકાવતા નથી, બીજા પાસે પકાવરાવતા નથી, પકાવનારને ભલો જાણતા નથી. તેઓ ભિક્ષુ કહેવાવાને યોગ્ય છે (૪)

॥ छाया ॥

रोचयित्वा ज्ञातपुत्रवचनम्, आत्मसमान् मन्यते षडपि कायान्।
पंच च स्पृशति महाव्रतानि, पंचास्रवसंवृतो यः स भिक्षुः ॥५॥

॥ टीका ॥

' रोइअ ' इत्यादि ।

यः साधुः ज्ञातपुत्रवचनं = वर्धमानस्वामिवचनं, रोचयित्वा=यथाविधि गुरोः सकाशाद् गृहीत्वा–अमन्दादरेण हृदये निधाय, षडपि कायान्=पृथिव्यादीन् षड् जीवनिकायान्, आत्मसमान् = आत्मतुल्यान् मन्यते आत्मरक्षणवत् तद्रक्षणपरायणो भवतीत्यर्थः, तथा पचमहाव्रतानि=अहिंसादीनि स्पृशति=आराधयति, तथा पचास्रवसंवृतः=पंचेन्द्रियनिग्रही भवति स भिक्षुः ॥ ५ ॥

॥ मूलम् ॥

२ ५ ४ ३ ७ ८ ६
चत्तारि वमे सया कसाए, धुवजोगी हविज्ज वुद्धवयणे।
९ १० ११ १२ १ १३ १४
अहणे निज्जायरूवरयए, गिहिजोगं परिवज्जए जे स भिक्खू ॥६॥

'रोइअ' इत्यादि । जो श्रमण, भगवान् महावीर के वचनों में रुचि रखकर उन वचनोंको गुरु महाराज से सम्यक् प्रकार समझकर, अतिआदर पूर्वक हृदयमें धारण करके षड्जीवनिकाय को आत्मसमान समझते हैं अर्थात् आत्मरक्षाके समान उनकी रक्षा करने में तत्पर रहते हैं, पाच महाव्रतोंकी आराधना (सेवन) करते हैं और पाच इन्द्रियोंका निग्रह करते हैं वे भिक्षु कहलाने योग्य है ॥५॥

રોઇઅ૦ ઇત્યાદિ જે શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીરના વચનોમા રુચિ રાખીને એ વચનોને ગુરૂમહારાજ પાસેથી સમ્યક્ પ્રકાર સમજીને, અતિ આદર પૂર્વક હૃદયમા ધારણ કરીને સર્વ જીવનિકાયને આત્મસમાન સમજે છે, અર્થાત્ આત્મ રક્ષાની સમાન એમની રક્ષા કરવામા તત્પર રહે છે, પચ મહાવ્રતોની આરાધના (સેવન) કરે છે અને પાચ ઇંદ્રિયોનો નિગ્રહ કરે છે તે ભિક્ષુ કહેવાવાને યોગ્ય છે (૫)

॥ छाया ॥

चतुरः वमति सदा कषायान्, ध्रुवयोगी भवति बुद्धवचने।
अधनो निर्जातरूपरजतो, गृहियोगं परिवर्जयति यः स भिक्षुः ॥६॥

॥ टीका ॥

'चत्तारि' इत्यादि।

यः साधुः चतुरः कषायान्=क्रोधादीन सदा वमति = परित्यजति बुद्धवचने = आर्हतागमे ध्रुवयोगी = निश्चलभावेन वाचनादिपञ्चविधस्वाध्याययोगवान् निर्जातरूपरजतः=जातरूप=सुवर्णं च रजतं = रूप्यं चेति द्वन्द्वः–जातरूपरजते, निर्गते जातरूपरजते यस्मादिति विग्रहः, सुवर्णरूप्यादिधनशून्य. अकिञ्चन इत्यर्थः। तादृशश्च सन् गृहियोगं=गृहिणा गृहस्थपरिचयं परिवर्जयति= परित्यजति स भिक्षुः ॥६॥

॥ मूलम् ॥

सम्मद्दिट्ठी सया अमूढे, अत्थि हु नाणे तवे संजमे य।
तवसा धुणइ पुराणपावगं, मणवयकायसुसंवुडे जे स भिक्खू ॥७॥

॥ छाया ॥

सम्यग्दृष्टिः सदाऽमूढः अस्ति हु ज्ञाने तपसि संयमे च।
तपसा धुनोति पुराणपापकं मनोवचनकायसुसंवृतो यः स भिक्षुः ॥७॥

'चत्तारि' इत्यादि। जो, चार कषायों का सदा त्याग करते हैं, अर्हन्त भगवान् के प्ररूपित सर्वोत्तम सूत्रों का श्रद्धा के साथ वाचना आदि स्वाध्याय और तदनुसार क्रिया करने में तत्पर रहते हैं, सोना चांदी आदि सब प्रकार के धन से रहित होते हैं तथा गृहस्थ के साथ परिचय नहीं रखते वे भिक्षु हैं ॥६॥

चत्तारि० इत्यादि जेओ चार कषायोनो सदा त्याग करे छे, अर्हन्त भगवाने प्ररूपेला सर्वोत्तम सूत्रोनी श्रद्धा साथे वाचना आदि स्वाध्याय अने तदनुसार क्रिया करवामां तत्पर रहे छे सोना चांदी आदि सर्व प्रकारना धनथी रहित रहे छे तथा गृहस्थनी साथे परिचय राखता नथी, तेओ भिक्षु छे (६)

॥ टीका ॥

'सम्मद्दिट्ठी' इत्यादि।

यः साधुः सम्यग्दृष्टिः=सम्यग्दर्शनवान् सन ज्ञाने= मत्यादिपंचविधे, तपसि = अनशनादिलक्षणे द्वादशविधे, संयमे=सावद्यव्यापारविरतिलक्षणे सप्तदशविधे, हु = निश्चयेन, सदा=निरन्तरम्, अमूढः = व्यामोहरहितः भ्रान्तिप्रमादादिशून्यतया यथार्थोपयोगवानित्यर्थः, अस्ति=भवति, तथा मनोवचनकायसुसंवृतः=मनोवाक्कायेषु सम्यगुपयुक्तः सन तपसा=तपश्चर्यया, पुराणपापकं=प्राक्तनपापराशिं धुनोति=क्षपयति स भिक्षुः ॥७॥

॥ मूलम् ॥

२ ४ ५ ७ ३ ६ ८
तहेव असणं पाणगं वा, विविहं खाइमसाइमं लभित्ता।
१३ १२ ९ १० ११ १४ १५ १६ १७ १८ १ १९ २०
होही अट्ठो सुए परे वा, तं न निहे न निहावए जे स भिक्खू ॥८॥

॥ छाया ॥

तथैव अशनं पानकं वा, विविधं खाद्यं स्वाद्यं लब्ध्वा।
भविष्यति अर्थः श्वः परश्वो वा, तद् न निधत्ते न निधाप-
यति यः स भिक्षुः ॥८॥

'सम्मद्दिट्ठी' इत्यादि। जो सम्यग्दृष्टि होते हुए मति, श्रुत, आदि पाँच ज्ञानों में, अनशन आदि बारह प्रकार के तपमें, सत्तरह प्रकार के संयम में, प्रमाद भ्रान्ति आदि से रहित होने के कारण यथार्थ उपयोगवान् होते हैं, तथा मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति का पालन करते हुए तपश्चर्या द्वारा पूर्वोपार्जित पापों का विनाश करते हैं वे ही भिक्षु हैं ॥७॥

सम्मद्दिट्ठी० ઇત્યાદિ જેઓ સમ્યગ્દૃષ્ટિ બનીને મતિ, શ્રુતિ, આદિ પાંચ જ્ઞાનોમાં, અનશન આદિ બાર પ્રકારના તપમાં, સત્તર પ્રકારના સંયમમાં, પ્રમાદ ભ્રાન્તિ આદિથી રહિત હોવાને કારણે યથાર્થ ઉપયોગવાન્ બને છે, તથા મનોગુપ્તિ, વચનગુપ્તિ અને કાયગુપ્તિનું પાલન કરતા તપશ્ચર્યા દ્વારા પૂર્વોપાર્જિત પાપનો વિનાશ કરે છે, તેઓજ ભિક્ષુ છે (૭)

॥ टीका ॥

'तहेव इत्यादि ।

यः साधुस्तथैव=तद्वत्, विविधम्=अनेकप्रकारम्, अशनम् = अन्नादिकं, पानं=द्राक्षातक्रादिजलं, खाद्यम् = अचित्तनारिकेलखर्जूरद्राक्षादिकं, स्वाद्य=प्रासुकैलालवङ्गादिकं, लब्ध्वा=प्राप्य, अस्याशनादेः श्वः परश्वो वा=अनागते द्वितीयेऽह्नि तृतीयेऽह्नि वा, इदमुपलक्षणं तथा च-अन्येषु, अर्थः=प्रयोजनं भविष्यति, इति हेतोः तद् अशनादिकं न निधत्ते=न स्थापयति, न वा निधापयति=परेण वा न स्थापयति, स्थापयन्तमन्यं वा नानुमोदयति स भिक्षुरित्यर्थः ॥८॥

॥ मूलम् ॥

तहेव असणं पाणगं वा, विविहं खाइमसाइमं लभित्ता ।

छंदिअ साहम्मिआण भुंजे, भुच्चा सज्झायरए जे स भिक्खू ॥९॥

॥ छाया ॥

तथैव अशनं पानकं वा, विविधं खाद्यं स्वाद्यं लब्ध्वा ।

छन्दित्वा सार्धर्मिकान् भुंक्ते, भुक्त्वा स्वाध्यायरतो यः स भिक्षुः ॥९॥

'तहेव' इत्यादि । जो अन्न आदि अशन, दाख या छाछ का धोवन आदि पान, अचित्त नारियल खजूर दाख आदि खाद्य, तथा प्रासुक सुपारी लौंग आदि स्वाद्य पदार्थों का लाभ करके दूसरे तीसरे दिन या और कभी के लिए नहीं बचाते=संग्रह नहीं करते, दूसरों से नहीं कराते, तथा करते हुए का अनुमोदन नहीं करते वे भिक्षु हैं ॥८॥

'तहेव'० ઇત્યાદિ જેઓ અન્ન આદિ અશન દ્રાક્ષ યા છાશનું ધોવણ આદિ પાન, અચિત્ત નારીએળ, ખજુર, દ્રાક્ષ આદિ ખાદ્ય તથા પ્રાસુક સોપારી લવિંગ આદિ સ્વાદ્ય પદાર્થોનો લાભ કરીને (મેળવીને) બીજે-ત્રીજે દિવસે યા બીજા કોઈ વખતને માટે બચાવતા નથી સંગ્રહતા નથી, બીજા પાસે સંગ્રહાવતા નથી તથા સંગ્રહ કરનારને અનુમોદતા નથી તેઓ ભિક્ષુ છે (૮)

॥ टीका ॥

'तहेव' इत्यादि ।

यः साधुस्तथैव=पूर्ववत् विविधमशनादिक लब्ध्वा=प्राप्य, साधर्मिकान्=एकसामाचारीपालकान्, स्वगच्छाधिवासिन इत्यर्थः, साधून् छन्दित्वा=निमन्त्र्य मण्डले समाहूय, भुङ्क्ते=अभ्यवहरति, भुक्त्वा च स्वाध्यायरतः=वाचनादिपंचविधस्वाध्यायपरो भवति स भिक्षुरित्यर्थः ॥९॥

॥ मूलम् ॥

न य वुग्गहियं कहं कहिज्जा, न य कुप्पे निहुइंदिए पसंते ।
संजमधुवजोगजुत्ते, उवसंते अविहेडए जे स भिक्खू ॥१०॥

॥ छाया ॥

न च व्युद्ग्राहिकीं कथां कथयति, न च कुप्यति निभृतेन्द्रियः प्रशान्तः ।
संयमध्रुवयोगयुक्तः, उपशान्त अविहेटक यः स भिक्षुः ॥१०॥

॥ टीका ॥

'नय' इत्यादि ।

यः साधुः व्युद्ग्राहिकीं=विग्रहसंबन्धिनीं कलहोत्पादिनी कथां न कथयति=

'तहेव' इत्यादि । जो विविध अशन पान आदि का प्राप्त करके एक सामाचारी के पालक अपने गच्छ के साधुओं को आमन्त्रित करके-बुलाकर आहार करते हैं और आहार करके स्वाध्याय में लीन हो जाते है वे भिक्षु हैं ॥९॥

'नय' इत्यादि । जो किसासे कलहकारिणी कथा नहीं करते, कभी किसी पर क्रोध

तहेव० ઇત્યાદિ જેઓ વિવિધ અશન પાન આદિ પ્રાપ્ત કરીને એક સામાચારીના પાલક પોતાનાજ ગચ્છના સાધુઓને આમન્ત્રિત કરીને બોલાવીને આહાર કરે છે, અને આહાર કરીને સ્વાધ્યાયમા લીન બની જાય છે, તેઓ ભિક્ષુ છે (૯)

નય૦ ઇત્યાદિ જેઓ કોઇની સાથે કલહકારિણી કથા કરતા નથી, કદાપિ

कस्मैचिन्न ब्रूते, च=पुनः, न कुप्यति=न क्रुध्यति कस्मैचिदिति शेषः अपितु निभृतेन्द्रियः=सुवशीकृतेन्द्रियः, प्रशान्तः=प्रकृष्टोपशमयुक्तः रागद्वेषरहित इत्यर्थः, तथा संयमध्रुवयोगयुक्तः = संयमे सप्तदशविधे ध्रुवयोगः=निश्चयजा मनोवाक्काय-प्रवृत्तिः, तया युक्तः संयमरक्षणसावधान इत्यर्थः। उपशान्तः=निराकुलः अव्यग्र इत्यर्थः 'इयद्भिर्दिवसैस्तपःसंयमाचरणेऽपि न काचित् सिद्धिरुपलब्धे'ति कृत्वा तपःसंयमादितश्चलितचित्तो न भवतीति भावः, तथा अविहेटकः=स्वकर्तव्य-संयमादिक्रियाकलापानुपेक्षकः स भिक्षुः ॥१०॥

॥ मूलम् ॥

जो सहइ हु गामकंटए, अक्कोसपहारतज्जणाओ य।
भयभेरवसद्दसप्पहासे, समसुहदुक्खसहे य जे स भिक्खू ॥११॥

॥ छाया ॥

यः सहते हु ग्रामकण्टकान्, आक्रोशप्रहारतर्जनाश्च।
भयभैरवशब्दसप्रहासे, समसुखदुःखसहश्च यः स भिक्षुः ॥११॥

नहीं करते, किंतु इन्द्रियों को वशमें करके शान्त रहते हैं, तथा संयम की रक्षा करने में मन, वचन, काय से सदा सावधान रहते हैं-कभी व्याकुल नहीं होते अर्थात् 'इतने दिन तप करते और संयम पालते हुए होगये परन्तु कुछ भी लब्धि आदि की सिद्धि नहीं हुई' ऐसा विचार कर संयमादि से विचलित नहीं होते और अपने आचार में सदा सावधान रहते हैं वे भिक्षु हैं ॥१०॥

કોઈ પર ક્રોધ કરતા નથી, પરંતુ ઇંદ્રિયોને વશ રાખીને શાન્ત રહે છે, તથા સંયમની રક્ષા કરવામાં મન, વચન, કાયાથી સદા સાવધાન રહે છે કદી વ્યાકુળ થતા નથી, અર્થાત્ 'આટલા દિવસ તપશ્ચરણ કરતા અને સંયમ પાળતા થયા છતાં કાંઈ પણ લબ્ધિ આદિની સિદ્ધિ થઈ નહિ' એવો વિચાર કરીને સંયમાદિથી વિચલિત થતા નથી, અને પોતાના આચારમાં સદા સાવધાન રહે છે તેઓ ભિક્ષુ છે (૧૦)

॥ टीका ॥

'जो सहइ' इत्यादि।

यः साधुः ग्रामकण्टकान्=ग्रामः=इन्द्रियसमुदायस्तस्य कण्टकाः=कण्टकसदृशत्वाद् दुःखदायकास्तान् हस्तपादादिमोटनेन नेत्रादौ धूल्यादिप्रक्षेपेण इन्द्रियवेदनावहानित्यर्थः। तथा आक्रोशप्रहारतर्जनाः = आक्रोशो=जुगुप्सावचनं प्रहाराः=वेत्रकशादिभिस्ताडनानि तर्जना=असूयादिभिर्भर्त्सनं तांश्च, सहते=क्षमते, परेण कष्टदशां नीतोऽपि न ग्लायतीत्यर्थः। यश्च पुनः भयभैरवशब्दसप्रहासे=भयभैरवाः भयाद्=भयरूपात् कारणाद् भैरवाः=भयङ्कराः, अथवा बिभेत्येभ्य इति भयाः=भयहेतवः, ते च भैरवाश्च=भयङ्कराश्चेति भयभैरवाः=महाभयावहाः दुःश्रवणा इत्यर्थ, वस्तुतः-भयभैरवा भयङ्करा इत्यर्थ 'विशिष्टवाचकपदाना'मिति न्यायेन भयपदस्य नो वैयर्थ्यम्। भयभैरवा शब्दाः=नादाः सप्रहासा यत्र स्थाने, तत्र भूतवैतालादिकृतमहानादाट्टहासस्थाने श्मशानादावित्यर्थः। समसुखदुःखसहः=समं=समतया सुखदुःखे सहते इति, तथा सुखदुःखयोः समभावं भजते=सामायिकभावं न परित्यजति स भिक्षुः ॥११॥

'जो सहइ' इत्यादि।

जो हाथ पाव को मरोड देने, आखों मे धूल भर देने आदि से होनेवाली इन्द्रियों की पीडा को सहन करते है, तथा निन्दा, बेंत या कोडे की मार, एवं भर्त्सना को बिना खेद के सहन कर लेते हैं अर्थात् दूसरों द्वारा दुःख दिये जाने पर भी जो दुःखी नहीं होते, तथा जहा पर भूत वेताल आदि भयकर अट्टहास और शब्द करते हैं उन श्मशान आदि स्थानों में सुख और दुःख को समान समझ कर सहन करते हैं अर्थात् भूतों के अट्टहास आदि से समता भाव का परित्याग नहीं करते वे भिक्षु हैं ॥११॥

जो सहइ० इत्यादि જેઓ હાથ પગ મરડાઇ જવા, આખોમા ધૂળ ભરાઇ જવી, ઇત્યાદિથી વનારી ઇંદ્રિયોની પીડાને સહન કરે છે, તથા નિંદા, નેતર યા ચાબુકનો માર, તથા ભર્ત્સનાને ખેદ વિના સહન કરી લે છે, અર્થાત્ બીજાઓ તરફથી દુઃખ દેવામા આવે તો પણ જેઓ દુઃખી નથી થતા, તથા જ્યા ભૂત વેતાલ આદિ ભયકર અટ્ટહાસ અને શબ્દ કરે છે તેવા શ્મશાન આદિ સ્થાનોમા સુખ અને દુઃખને સમાન સમજીને સહન કરે છે, અર્થાત્ ભૂતોના અટ્ટહાસ આદિથી સમતા ભાવનો ત્યાગ કરતા નથી તેઓ ભિક્ષુ છે (૧૧)

॥ छाया ॥

हस्तसंयतः पादसंयतः वाक्संयतः संयतेन्द्रियः
अध्यात्मरतः सुसमाहितात्मा, सूत्रार्थं च विजानाति यः स भिक्षुः ॥१५॥

॥ टीका ॥

'हत्थसंजए' इत्यादि।

हस्तसंयत=हस्ते=हस्तव्यापारे संयतः=यतनायुक्तः कारणविशेषमन्तरेण हस्तप्रसारणादिव्यापारशून्य इत्यर्थः, एवं पादसंयतो वाक्संयत इत्यपि व्याख्येयम्। संयतेन्द्रिय.=श्रोत्रादीन्द्रियेषु संयतः=यतनावान् इष्टानिष्टशब्दादिविषयेषु रागद्वेषरहित इत्यर्थ.। अध्यात्मरतः = सम्यग्धर्मध्यानादियुक्तः, सुसमाहितात्मा = ऋद्धिवर्द्धने समृद्धिमानिव संयमसंपदि सततं सावधानः, सूत्रार्थम् = आचाराङ्गादिसूत्रं तत्प्रतिपाद्यमर्थं च विजानाति=यथावदवगच्छति यः स भिक्षुः ॥१५॥

'हत्थसजए' इत्यादि। विना प्रयोजन हाथों को न फैलाना आदि हस्तसयम कहलाता है। निरर्थक पैर न फैलाना-चलाना आदि पादसयम कहलाता है। शब्दादि विषयों में राग द्वेष न करना इन्द्रियसयम है। इन सब के सयम को पालन वाले धर्म ध्यान आदि में लीन, जैसे ऐश्वर्यवान् अपने ऐश्वर्य को बढाने का सदा उद्योग करते है उसी प्रकार जो सयमरूपी सपत्ति की वृद्धि में सावधान हैं और आचाराङ्ग आदि सूत्र तथा उनके अर्थों क ज्ञाता हैं वे भिक्षु कहलाते हैं ॥१५॥

हत्थसजए० इत्यादि प्रयोजन विना હાથ લાંબા પહોળા ન કરવા તે ...સ્તસયમ કહેવાય છે નિરર્થક પગ ન પસારવા-હલાવવા ચલાવવા આદિ ...યમ કહેવાય છે શબ્દાદિ વિષયોમા રાગદ્વેષ ન કરવો તે ઇંદ્રિયસયમ ...ા સયમને પાળનારા, ધર્મધ્યાન આદિમા લીન, જેમ ઐશ્વર્યવાન ... વધારવાને સદા ઉદ્યોગ કરે છે તેમ જે સયમરૂપી સપત્તિની ...હે છે અને આચારાગ આદિ સૂત્ર તથા તેના અર્થોના જ્ઞાતા છે, (૧૫)

॥ मूलम् ॥

२ ३ ४ ५ ६
उवहिंमि अमुच्छिए अगिद्धे, अन्नायउंछं पुलनिप्पुलाए।
७ ८ १० ९ १ ११ १२
कयविक्कयसंनिहिओ विरए, सव्वसंगावगए अ जे स भिक्खू ॥१६॥

॥ छाया ॥

उपधौ अमूर्छितः अगृद्धः अज्ञातउञ्छः पुलनिष्पुलाकः।
क्रयविक्रयसंनिधितो विरतः सर्वसगापगतश्च यः स भिक्षुः ॥१६॥

॥ टीका ॥

'उवहिंमि' इत्यादि।

यः साधुः उपधौ=वस्त्रपात्राद्यात्मके अमूर्छितः=मूर्छारहितः, तथा अगृद्धः=अलोलुपः, अज्ञातउञ्छः=अज्ञातकुले स्वल्पस्वल्पभिक्षाग्राही 'उंछ' इति प्राकृतत्वान्नपुंसकम्, पुलनिष्पुलाकः = सयममालिन्यकारकदोषवर्जितः, क्रय-विक्रयसनिधितो विरतः, क्रयविक्रयौ प्रतीतौ, सनिधिश्च=औषधार्थमपि दुग्ध-घृतादिकस्य रात्रौ संचयकरणं, च=पुनः, सर्वसगापगतः=द्रव्यभावसगवर्जितः, तत्र द्रव्यतः सुवर्णादेः, भावतः क्रोधादेरिति विवेकः, स भिक्षुः ॥१६॥

'उवहिंमि' इत्यादि। जो वस्त्र पात्र आदि उपधिमें मूर्छा रहित, लोलुपता रहित, सयम को मलिन करने वाले दोषों के त्यागी, क्रय विक्रय के लिए सग्रह न करने वाले अथवा क्रय विक्रय और सग्रह के त्यागी अर्थात रात्रिमें औषध आदि के लिए घृतादि का भी सग्रह न करने वाले, द्रव्य भाव परिग्रह से मुक्त अथात् द्रव्यसे सुवर्ण आदि का और भाव से राग आदि का परिग्रह न रखने वाले होते हैं, तथा अज्ञात कुलों से थोडी थोडी भिक्षा ग्रहण करते हैं वे भिक्षु हैं ॥१६॥

उवहिंमि० ઇત્યાદિ જેઓ વસ્ત્ર-પાત્ર આદિ ઉપધિમા મૂર્છા રહિત, લોલુપતા રહિત, સયમને મલિન કરનારા દોષોના ત્યાગી, ક્રય વિક્રયને માટે સગ્રહ ન કરનારા અથવા ક્રય વિક્રય અને સગ્રહના ત્યાગી અર્થાત રાત્રિમા ઔષધ આદિને માટે ઘી આદિનો પણ સગ્રહ ન કરનારા દ્રવ્ય ભાવ પરિગ્રહથી મુક્ત અર્થાત દ્રવ્યથી સુવર્ણ આદિનો અને ભાવથી રાગ આદિનો પરિગ્રહ ન રાખનારા હોય છે, તથા અજ્ઞાત કુળોમાથી થોડી થોડી ભિક્ષા ગ્રહણ કરે છે, તેઓ ભિક્ષુ છે (૧૬)

॥ मूलम् ॥

१ १ २ २ ४ १० ११ ५
अलोल भिक्खू न रसेसु गिद्धे, उंछ चरे जीविअनाभिकंखी
१३ १२ १३ १४ १५ १६ ६ ७ ८ १०
इड्ढि च सक्कारण पूअण च, चए ठिअप्पा अणिहे जे स भि

॥ छाया ॥

अलोलो भिक्षुः न रसेषु गृद्ध उञ्छ चरति जीवितानभिकाङ्क्षी।
ऋद्धिं च सत्कार पूजन च त्यजति स्थितात्मा अनीहः यः स

॥ टीका ॥

'अलोल' इत्यादि।

अलोलः = द्रव्यभावचापल्यरहितः, रसेषु = मधुरादिषु, लोलुपः तथा जीवितानभिकाक्षी = असंयमजीवितवाञ्छारहितः ज्ञानादिरत्नत्रये स्थिरमानसः, अनीहः=निःस्पृहः, यद्वा नि०-नि अस्निहः=रागरहितः, अथवा अनिभः=असदृशः न संसारिसदृशः, यो भिक्षुः उञ्छ=स्तोकं स्तोकं भिक्षान्नादिकं चरति, = गृह्णाति च- लब्ध्यादि, सत्कार=वस्त्रपात्रादिलाभं, पूजन=स्वस्तुतिं, त्यजति स भिक्षुः ॥१७॥

'अलोल' इत्यादि। जो द्रव्य भाव से चचलता रहित, मधुर रस न रखने वाले, असयम रूप जीवन की आकाक्षा से रहित, ज्ञानादि रत्न रखने वाले, तथा मायाचार के त्यागी होते हैं, जो थोडी थोडी भिक्षा करते हैं, जो लब्धि, वस्त्र, पात्र, का लाभ तथा स्तुति नहीं चाहते वे भिक्षु

अलोल० ઇત્યાદિ જેઓ દ્રવ્ય ભાવથી ચચળતા રહિ આદિમા લોલુપતા ન રાખનાર, અસયમ રૂપ જીવનની જ્ઞાનાદિ રત્નત્રયમા મનને સ્થિર રાખનારા તથા માયાચારના ત્યાગી થોડી થોડી ભિક્ષા અનેક ઘરોમાથી ગ્રહણ કરે છે. જેઓ લબ્ધિ, વસ્ત્ર તથા સ્તુતિ ચાહતા નથી તેઓ ભિક્ષુ છે (૧૭)

॥ मूलम् ॥

५ २ ६ ३ ४ ८ ७ ९ ११ १० १२
न परं वइज्जासि अयं कुसीले, जेण च कुप्पिज्ज न तं वइज्जा।
१५ १३ १४ १६ १७ १८ १
जाणिअ पत्तेअं पुन्नपावं, अत्ताण न समुक्कसे जे स भिक्खू ॥१८॥

॥ छाया ॥

न परं वदेत् अयं कुशीलः येन च कुप्यति न तद् वदेत्।
ज्ञात्वा प्रत्येकं पुण्यपापम् आत्मानं न समुत्कर्षयेद् यः स भिक्षुः ॥१८॥

॥ टीका ॥

'न परं' इत्यादि।

यः साधुः परम् अन्यं प्रति 'अयं कुशीलः=अयं दुश्चारित्रः' इति न वदेत्। च=पुनः, येन वचसा, परः कुप्यति तत्=तादृशं वचो न वदेत्=न कथयेत्। तथा प्रत्येकं=एकैकस्य पुण्यपापम्=पुण्यं पापं च ज्ञात्वा='आत्मा यदा पुण्यप्रकृतिं बध्नाति तदा पुण्यफलम्, एवं यदा पापप्रकृतिं बध्नाति तदा पापफलं भुनक्ति' इति विचार्य आत्मानं न समुत्कर्षयेत् = 'अहं सकलगुणगरिष्ठोऽस्मी'ति गर्वं न कुर्यात् स भिक्षुः ॥१८॥

'न पर' इत्यादि। जो दूसरों के प्रति 'यह दुराचारी है' इत्यादि भाषा का प्रयोग नहीं करते, क्रोध को उत्पन्न करने वाले वचनों का उच्चारण नहीं करते तथा "जब आत्मा, पुण्य प्रकृतिका वन्ध करती है तब पुण्य का फल भोगती है, जब पाप प्रकृति का वन्ध करती है तब पापका फल भोगती है," ऐसा जान कर भी आत्मप्रशंसा नहीं करते वे भिक्षु हैं ॥१८॥

न पर० ઇત્યાદિ જેઓ બીજાઓ પ્રત્યે 'આ દુરાચારી છે' ઇત્યાદિ ભાષાનો પ્રયોગ કરતા નથી, ક્રોધને ઉત્પન્ન કરનારા વચનોનું ઉચ્ચારણ કરતા નથી, તથા "જ્યારે આત્મા પુણ્ય પ્રકૃતિનો બંધ કરે છે ત્યારે પુણ્યનું ફળ ભોગવે છે, જ્યારે આત્મા પાપ પ્રકૃતિનો બંધ કરે છે ત્યારે પાપનું ફળ ભોગવે છે" એવું જાણીને કદી આત્મપ્રશંસા કરતા નથી, તેઓ ભિક્ષુ છે (૧૮)

॥ मूलम् ॥

१ ९ ३ २ ४ १० ११ ५
अलोल भिक्खू न रसेसु गिद्धे, उंछ चरे जीविअनाभिकंखी।
१३ १२ १३ १४ १५ १६ ६ ७ ८ १७ १८
इड्ढि च सक्कारण पूअण च, चए ठिअप्पा अणिहे जे स भिक्खू ॥१७॥

॥ छाया ॥

अलोलो भिक्षुः न रसेषु गृद्धः उछ चरति जीवितानभिकाङ्क्षी।
ऋद्धिं च सत्कार पूजनं च त्यजति स्थितात्मा अनीहः यः स भिक्षुः ॥१७॥

॥ टीका ॥

'अलोल' इत्यादि।

अलोलः = द्रव्यभावचापल्यरहितः, रसेषु = मधुरादिषु, न गृद्धः = न लोलुपः तथा जीवितानभिकाङ्क्षी = असयमजीवितवाञ्छारहितः स्थितात्मा = ज्ञानादिरत्नत्रये स्थिरमानसः, अनीहः=निःस्पृहः, यद्वा अनिहः=निष्कपटः। यद्वा अस्निहः=रागरहितः, अथवा अनिभः=असदृशः न संसारिसदृशः, त्यागीत्यर्थः। यो भिक्षुः उञ्छ=स्तोकं स्तोकं भिक्षान्नादिकं चरति, = गृह्णाति च=पुनः, ऋद्धि= लब्ध्यादि, सत्कार=वस्त्रपात्रादिलाभं, पूजन=स्वस्तुतिं, त्यजति = नाभिलषति स भिक्षुः ॥१७॥

'अलोल' इत्यादि। जो द्रव्य भाव से चचलता रहित, मधुर रस आदि में लोलुपता न रखने वाले, असयम रूप जीवन की आकाक्षा से रहित, ज्ञानादि रत्न त्रयमें मन स्थिर रखने वाले, तथा मायाचार के त्यागी होते हैं, जो थोडी थोडा भिक्षा अनेक घरों से ग्रहण करते हैं, जो लब्धि, वस्त्र, पात्र, का लाभ तथा स्तुति नहीं चाहते वे भिक्षु हैं ॥१७॥

અલોલ૦ ઇત્યાદિ જેઓ દ્રવ્ય ભાવથી ચચલતા રહિત, મધુર રસ આદિમા લોલુપતા ન રાખનાર, અસયમ રૂપ જીવનની આકાક્ષાથી રહિત, જ્ઞાનાદિ રત્નત્રયમા મનને સ્થિર રાખનાર તથા માયાચારના ત્યાગી હોય છે, જેઓ થોડી થોડી ભિક્ષા અનેક ઘરોમાથી ગ્રહણ કરે છે, જેઓ લબ્ધિ, વસ્ત્ર પાત્રનો લાભ તથા સ્તુતિ ચાહતા નથી તેઓ ભિક્ષુ છે (૧૭)

॥ मूलम् ॥

५ २ ६ ३ ४ ८ ७ ९ ११ १० १२
न परं वइज्जासि अयं कुसीले, जेण च कुप्पिज्ज न तं वएज्जा।
१५ १३ १४ १६ १७ १८ १
जाणिअ पत्तेअं पुन्नपावं, अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू ॥१८॥

॥ छाया ॥

न परं वदेत् अयं कुशीलः येन च कुप्यति न तद् वदेत्।
ज्ञात्वा प्रत्येकं पुण्यपापम् आत्मानं न समुत्कर्षयेद् यः स भिक्षुः ॥१८॥

॥ टीका ॥

'न पर इत्यादि।

यः साधुः परम् अन्यं प्रति 'अयं कुशीलः=अयं दुश्चारित्रः' इति न वदेत्। च=पुनः, येन वचसा, परः कुप्यति तत्=तादृश वचो न वदेत्=न कथयेत्। तथा प्रत्येकं=एकैकस्य पुण्यपापम्=पुण्यं पापं च ज्ञात्वा='आत्मा यदा पुण्यप्रकृतिं बध्नाति तदा पुण्यफलम्, एवं यदा पापप्रकृतिं बध्नाति तदा पापफलं भुनक्ति' इति विचार्य आत्मानं न समुत्कर्षयेत् = 'अहं सम्यग्गुणगरिष्ठोऽस्मी'ति गर्वं न कुर्यात् स भिक्षुः ॥१८॥

'न पर' इत्यादि। जो दूसरों के प्रति 'यह दुराचारी है' इत्यादि भाषा का प्रयोग नहीं करते, क्रोध को उत्पन्न करने वाले वचनों का उच्चारण नहीं करते तथा "जब आत्मा, पुण्य प्रकृतिका बन्ध करती है तब पुण्य का फल भोगती है, जब पाप प्रकृति का बन्ध करती है तब पापका फल भोगती है," ऐसा जान कर भी आत्मप्रशंसा नहीं करते वे भिक्षु हैं ॥१८॥

न पर० ઇત્યાદિ જેઓ બીજાઓ પ્રત્યે 'આ દુરાચારી છે' ઇત્યાદિ ભાષાનો પ્રયોગ કરતા નથી, ક્રોધને ઉત્પન્ન કરનારા વચનોનું ઉચ્ચારણ કરતા નથી, તથા "જ્યારે આત્મા પુણ્ય પ્રકૃતિનો બંધ કરે છે ત્યારે પુણ્યનું ફળ ભોગવે છે, જ્યારે આત્મા પાપ પ્રકૃતિનો બંધ કરે છે ત્યારે પાપનું ફળ ભોગવે છે" એવું જાણીને કદી આત્મપ્રશંસા કરતા નથી, તેઓ ભિક્ષુ છે (૧૮)

॥ मूलम् ॥

२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
न जाइमत्ते न य रूवमत्ते, न लाभमत्ते न सुएण मत्ते।
१२ ११ १३ १४ १ १५ १६
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता, धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू ॥१९॥

॥ छाया ॥

न जातिमत्तो न च रूपमत्तो न लाभमत्तो न श्रुतेन मत्तः।
मदान् सर्वान् विवर्ज्य धर्मध्यानरतो यः स भिक्षुः ॥१९॥

॥ टीका ॥

'न जाइमत्ते' इत्यादि।

यः साधुः, न जातिमत्तः=न जात्या क्षत्रियत्वादिना मत्तः=गर्वितः 'अहमुत्कृष्टजातिमानस्मी'त्यादिभावनाविरहित इत्यर्थः। तथा च रूपमत्तः= रूपेण सौन्दर्यादिना न मत्तः=न गर्वितः, 'अहमस्मि सौन्दर्यशाली'त्यादि पूर्ववत्। न लाभमत्तः=लाभेन=वस्त्रपात्रादिप्राप्त्या, न मत्तः=न मदवान्–'विद्यते च प्रशस्ततरं मे वस्त्रादिकम्, अथवा मया यादृशमुत्कृष्टं भिक्षादि लभ्यते तथा नान्यै'-रितिभावनाविरहितः। तथा न श्रुतेन मत्तः=श्रुतेन=शास्त्रज्ञानेन न मत्तः, 'न कोऽप्यस्ति मादृशः आचाराङ्गादिशास्त्रतत्त्वावज्ञाता, अथवा स्वसमयपरसमय-

'न जाइमत्ते' इत्यादि। जो साधु–'मैं क्षत्रिय हूँ' इस प्रकार जाति का अभिमान नहीं करते, 'मैं सबसे अधिक सुन्दर हूँ' इस प्रकार, रूप का अभिमान नहीं करते, वस्त्र पात्र आदि के लाभ का घमण्ड नहीं करते अर्थात् 'मुझे जैसी सर्वोत्कृष्ट भिक्षा तथा वस्त्र मिलता है वैसा किसी को नहीं मिलता' ऐसा लाभका अभिमान नहीं करते, आचाराङ्ग आदि

नजाइमत्ते० ઇત્યાદિ જે સાધુઓ 'હું ક્ષત્રીય છું' એમ જાતિ અભિમાન કરતા નથી, 'હું બધામાં વધારે સુંદર છું' એમ રૂપનું અભિમાન કરતા નથી, વસ્ત્ર પાત્ર આદિના લાભનો ઘમંડ કરતા નથી અર્થાત "મને જેવી સર્વોત્કૃષ્ટ ભિક્ષા તથા વસ્ત્ર મળે છે તેવા કોઇને મળતા નથી" એમ લાભનું અભિમાન કરતા નથી, "આ આચારાંગ આદિ શાસ્ત્રોના જ્ઞાતા મારા જેવા કોઇ નથી' એમ

मर्मविज्ञानवानहमेवास्मी'त्यादिभावनावर्जितः। एवम्=अनेन प्रकारेण सर्वान्=सर्वप्रकारान्, मदान्=स्वोत्कर्षाभिमानान् जात्याद्यष्टविधेषु मदेषु चत्वारो मूले प्रोक्ताः, अवशिष्टाश्चतुरः कुल बल-तप ऐश्वर्य-मदानित्यर्थः, विवर्ज्य=परित्यज्य, धर्मध्यानरतः=धर्म-ध्यानाख्ये ध्यानविशेषे, रतः=तत्परो भवेत् स भिक्षु रित्यर्थः ॥१९॥

॥ मूलम् ॥

४ ३ २ ५ ६ ८ ७
पवेअए अज्जपयं महामुणी, धम्मे ठिओ ठावयइ परंपि ।
९ ११ १० १३ १४ १५ १६ १७ १ १८ १९
निक्खम्म वज्जिज्ज कुसीललिंगं, न यावि हासंकुहए जे स भिक्खू ॥२०॥

॥ छाया ॥

प्रवेदयति आर्यपदं महामुनिः धर्मेस्थितः स्थापयतिपरमपि ।
निष्क्रम्य वर्जयेत कुशीललिंग, न चापि हास्यं कुहय त स भिक्षुः ॥२०॥

॥ टीका ॥

'पवेअए' इत्यादि ।

यो महामुनिः=प्रवचनतत्त्वमननशीलेषुवर्यः आर्यपदम्=पद्यते = गम्यते

शास्त्रों क ज्ञाता मेरे समान कोइ नहीं है, इस प्रकार शास्त्र का अभिमान नहीं करते, अथवा 'मैं ही स्वसमय परसमय का ज्ञाता हूं' इस प्रकार श्रुत का मद नहीं करते तथा कुल, बल, तप, ऐश्वर्य का भी मद नहीं करते, और सदा धर्मध्यानमें लीन रहते हैं वे भिक्षु है ॥१९॥

'पवे अए' इत्यादि। जो महामुनि, भव्य जीवों को जिनेन्द्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट

શાસ્ત્રનું અભિમાન કરતાજ નથી, અથવા "હું સ્વસમય પરસમયનો જ્ઞાતા છું" એમ શ્રુતનો મદ કરતા નથી, તથા કુળ, બળ, તપ, ઐશ્વર્યનો પણ મદ કરતા નથી, અને સદા ધર્મ ધ્યાનમા લીન રહે છે તેઓ ભિક્ષુ છે (૧૯)

પવેઅએ૦ ઇત્યાદિ જે મહામુનિઓ ભવ્ય જીવોને જીનેન્દ્ર ભગવાને ઉપ

प्राप्यते मोक्षोऽनेनेति पदं धर्मः, आर्यस्य=जिनेन्द्रस्य पदम्-आर्यपदं जिनोपदिष्ट धर्म-मित्यर्थः प्रवेदयति=प्रकर्षेण बोधयति धर्मे=श्रुतचारित्रलक्षणे, स्थितः=स्वय निश्चलः सन , परमपि=अन्यमपि, स्थापयति=स्थिरकरोति विचलितचित्तमपि विचिकित्सादिनिवारणेनेति भावः, निष्क्रम्य=गृहात् प्रव्रज्य, कुशीलिङ्गम्=आरम्भ समारम्भलक्षण गृहस्थचेष्टा वर्जयति = परित्यजति, अपिच न हास्य न कुहयति= न कारयति, विस्मयमुत्पाद्य जनान नहासयति विकृताकारवाग्वेषादिचेष्टा कृत्वा हास्य नोत्पादयतीत्यर्थः स भिक्षु रिति ॥२०॥

भिक्षुधर्माराधन फलमाह—

॥ मूलम् ॥

३ ६ ४ ५ ७ ८ १
तं देहवास असुइं असासयं, सया चए निच्चहि अट्ठिअप्पा।
११ ९ १० १३ २ १२ १४ १५
छिंदित्तु जाईमरणस्स बंधण, उवेइ भिक्खू अपुणागमंगइतिबेमि ॥२१॥

धर्म का बोध करते हैं, श्रुत चारित्र रूप धर्म में स्थिर रहकर दूसरों को स्थिर करते हैं, अर्थात् धर्म से डिगते हुए जीवों को ससार की असारता तथा शरीर की अनित्यता समझा-कर निश्चल कर देते हैं, दीक्षित होकर-आरम्भ समारम्भ रूप गृहस्थ की क्रिया परित्याग कर देते हैं, जो हास्योत्पादक चेष्टा नहीं करते, अर्थात् बनावटी बोली बोलकर विचित्र प्रकार का वेष बनाकर असद् वस्तु को सद् वस्तु जैसी बना कर नहीं दिखाते वे भिक्षु हैं ॥२०॥

દેશેલા ધર્મનો બોધ આપે છે, શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મમા સ્થિર રહીને બીજાઓને સ્થિર કરે છે; અર્થાત્ ધર્મમાથી ડગતા જીવોને સસારની અસારતા તથા શરીરની અનિત્યતા સમજાવીને નિશ્ચલ બનાવે છે, દીક્ષિત થઇને આરભ સમારભ રૂપ ગૃહસ્થની ક્રિયાઓનો પરિત્યાગ કરે છે, જેઓ હાસ્યોત્પાદક ચેષ્ટા કરતા નથી, અર્થાત બનાવટી બોલી બોલીને વિચિત્ર પ્રકારનો વેશ બનાવીને, તથા અસદ્ વસ્તુને સદ્ જેવી બનાવીને દેખાડતા નથી તેઓ ભિક્ષુ છે (૨૦)

॥ छाया ॥

तं देहवासम् अशुचिम् अशाश्वतं, सदात्यजति नित्यहित स्थितात्मा।
छित्वा जाति मरणस्य बन्धनम्, उपैति भिक्षुः अपुनरागमां गतिम्,
इति ब्रवीमि ॥२१॥

॥ टीका ॥

'त देहवासं' इत्यादि।

यो भिक्षु नित्यहितस्थितात्मा—नित्यहिते=मोक्षलाभोपकारजनकत्वाज्ज्ञान दर्शनचारित्रलक्षणेमोक्षमार्गे, स्थितः = वर्तमानः आत्मायस्य स तथोक्तः अहिंसा सयम तपः स्वरूपे उत्कृष्टमङ्गलात्मकेधर्मेनिहितचित्त इत्यर्थः, भिक्षु = साधुः, तं=प्रसिद्धम्, अशुचिम् = अमेध्यं, शुक्रशोणितसमुद्भवत्वात्, मलमूत्रश्लेष्मादि-संभृतत्वाच्च, एव सत्यपि अशाश्वतम् = अनियतस्थितिं, देहवासं=शरीर ममत्वं सदा = नित्यंत्यजति=जहाति स जातिमरणस्यबन्धन जन्ममरणात्मक बन्धनं छित्वा=संछिद्य 'अभेदार्थे षष्ठी' यद्वा जातिमरणस्य=चतुर्गतिभ्रमणस्य बन्धन= कारण ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मस्वरूप, छित्वा=क्षपयित्वा, अपुनरागमाम् =

भिक्षु धर्म के आराधन का फल कहते हैं—

'त देह वास' इत्यादि। जिन की आत्मा, मोक्ष रूपी हितमें निरन्तर स्थित रहती है अर्थात् अहिंसा, सयम, तप स्वरूप उत्कृष्ट मङ्गलमय धर्म में चित्तको लीन रखते हैं व भिक्षु, रज वीर्य से उत्पन्न होने के कारण और मलमूत्र आदि अशुचि पदार्थों से भरा हुआ होने से अपवित्र विनश्वर शरीर को त्यागकर जन्म मरण के बन्धन को छेदकर ससार

હવે ભિક્ષુ ધર્મના આરાધનનું ફળ કહે છે—

त देहवास० ઇત્યાદિ જેમનો આત્મા મોક્ષરૂપી હિતમા નિરંતર સ્થિત રહે છે; અર્થાત અહિંસા, સયમ, તપ સ્વરૂપ ઉત્કૃષ્ટ મંગળમય ધર્મમા ચિત્તને લીન રાખે છે, તે ભિક્ષુઓ રજ વીર્યથી ઉત્પન્ન થવાને કારણે અને મળ મૂત્ર આદિ અશુચિ પદાર્થોથી ભરેલુ હોવાને કારણે અપવિત્ર એવા વિનશ્વર શરીરને ત્યાગીને, જન્મ મરણના બંધનને છેદીને, સસાર ભ્રમણના કારણરૂપ જ્ઞાના

अपुनरावर्तिनी, यत्रगत्वाऽऽत्मा न पुनः परावर्तते तादृशीं गतिं = मोक्षलक्षणा सिद्धिगतिम्, उपैति=प्राप्नोति इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२१॥

इति श्री विश्वविख्यात–जगत्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापकप्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–शाहू-
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुर-
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलाल–व्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्याया व्याख्याया दशम
भिक्षुनामकमध्ययन समाप्तम् ॥१०॥

समाप्तमिद संस्कृत–हिन्दी–गुर्जर–भाषासमलङ्कृत
श्री दशवैकालिक सूत्रम्.

★

भ्रमण के कारण ज्ञानावरणीय आदि अष्टकर्म रूप बन्धन को तोडकर जिससे लौटकर फिर संसार भ्रमण नहीं करना पडता ऐसी सर्वोत्कृष्ट सिद्धि गति को प्राप्त करते हैं ॥२१॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि हे जम्बू! भगवान् महावीर जैसा कहा है वैसा ही मैं तुझ प्रति कहता हूँ ॥

श्री दशवैकालिक सूत्र की आचारमणिमञ्जूषा नामक संस्कृत टीका के अनुवाद में दशवाँ अध्ययन समाप्त हुवा ॥

॥ इति दशवैकालिक सूत्र की आचारमणिमञ्जूषा टीका का
हिन्दी भाषानुवाद समाप्त ॥

★

वरणीय आदि आठ कर्म रूपी બધનોને તોડીને જેમાંથી પાછા ફરીને પાછું સંસાર ભ્રમણ કરવું ન પડે એવી સર્વોત્કૃષ્ટ સિદ્ધિ ગતિને પ્રાપ્ત કરે છે. (૨૧)

શ્રી સુધર્માસ્વામી જંબૂસ્વામીને કહે છે કે-હે જંબૂ! ભગવાન્ મહાવીરે જેવું કહ્યું છે તેવું જ હું તને કહું છું.

ઇતિ દશમું અધ્યયન સમાપ્ત